₹ 50

हिन्दी भाषियों की मासिक पत्रिका

क्रान्ति

अक्टूबर 2015

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और मुसलमान

विशेषांक



HINDUSTAN
Pavers & Blocks
Group

Established Since 1977

Anwar Khan
+91 9822427700
Akbar Khan
+91 9822497700

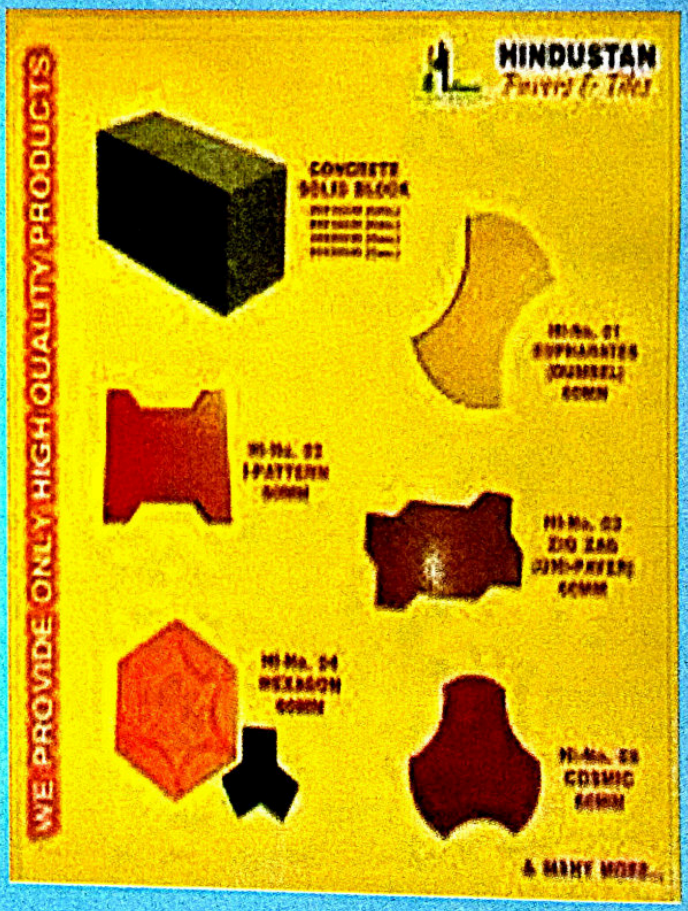

HINDUSTAN INDUSTRIES

Your Lifestyle Paving Company

Manufacturers Of Solid Concrete Blocks,
Interlocking Pavers, Tiles &
Allied Concrete Products

Colvale IDC, Colvale, Mapusa-Goa
Phone : 0832 2257700, 0832 2257900
Email : hindustanindustriesgoa@gmail.com

www.hindustangroupgoa.com

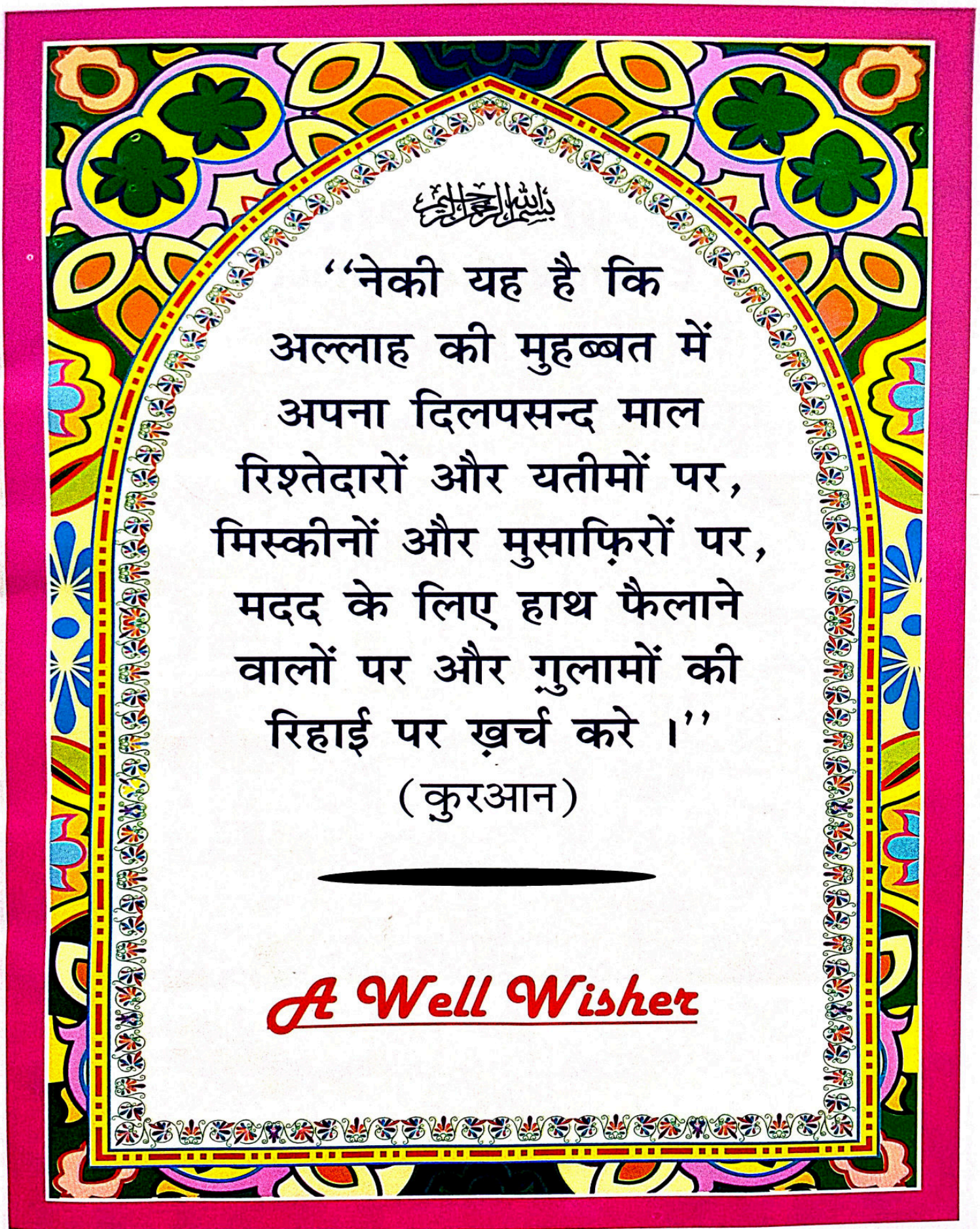
بسم الله الرحمن الرحيم
''नेकी यह है कि
अल्लाह की मुहब्बत में
अपना दिलपसन्द माल
रिश्तेदारों और यतीमों पर,
मिस्कीनों और मुसाफ़िरों पर,
मदद के लिए हाथ फैलाने
वालों पर और ग़ुलामों की
रिहाई पर ख़र्च करे ।''
(कुरआन)
A Well Wisher

Er. Md. Saifullah

(9431531308

Dream Home Consultancy

Engineer & Architect

Deals in Building Designing (As Per Vaastu)

Estimate & Supervision



ADDRESS :

first Floor, Hyundai Showroom, Noora,
Indrapuri Chowk, Hazaribagh-825301
(JHARKHAND)



ऐ लोगो जो ईमान लाए हो,
(अल्लाह के आगे) झुको
और सजदा करो, और अपने
रब की बन्दगी करो, और
अच्छे कर्म करो, इसी से
उम्मीद की जा सकती है कि
तुमको सफलता प्राप्त हो ।

–क़ुरआन

A Well Wisher
Topsia, Kolkata

NIDAN HEALTH CARE & RESEARCH CENTER
(NIDAN NURSING HOME)

Near Lohsigna Maidan, Kallu Chowk, Hazaribagh,
Jharkhand, Pin-825301



ADVANCED PEDIATRIC CENTRE

SPECIAL FACILITIES FOR CRITICALLY ILLNEW BORN

Facilities :

- Ventilator SLE 2000.
- C-PAP.
- Hi-Flow Oxygen.
- Radiant Warmers.
- LED Phototherapy
- Infusion Pumps.
- Central Oxygen Supply.
- Multipara Monitor.

GERIATRIC/ADULT CARE UNIT, ICU/EMERGENCY

Specialize Services are Diabetes and Complication. Heart/Cardiac Problems, Respiratory Problems like Asthma And COPD, Malaria Specially Cerebral Malaria, Sleep Disorders-OSA, Insomnia & Others.

Contact for Inquiry :

Mobile (Office) : 08409727837, Manager : 09934585303
Website : www.nidanhealthcare.org, Email : info@nidanhealthcare.org

उनको इसके सिवा
कोई आदेश नहीं दिया गया
था कि अल्लाह की बन्दगी करें
अपने दीन को उसके लिए ख़ालिस
करके, बिल्कुल एकाग्र होकर
और नमाज़ क़ायम करें
और ज़कात दें ।
(क़ुरआन)

A Well Wisher
Dilkhush Street, Kolkata

AL-HUDA PUBLIC HIGH SCHOOL & AL-HUDA INTER COLLEGE

At.-Banha, P.O.-Nawada, Distt. Hazaribagh, Pin : 825301
JHARKHAND, INDIA

Under Managed BY :

Al-Manar Educational Foundation, Ranchi



School Campus





Urgent Required :

1. Computer Lab 2. Science Lab 3. Library

آپ سے مخلصانہ درخواست ہے کہ اسکول کے اس اہم پروجیکٹ میں فراخ دلی سے تعاون فرمائیں۔ اور اجر عظیم کے مستحق ہوں۔ والسلام

Your contribution may be forwarded to "Al-Huda Public High School", Union Bank of India, Pelawal Branch (Hazaribagh), A/c No. : 410502010692403, IFSC Code : UBIN0541052, PILAVAL

President
Md. Aslam
Mob. : 9931579552

Secretary
Md. Maqbool
Mob. : 7209719135

Principal
Md. Hashmi
Ph. : 06546-210554

आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब

हिन्दी भाषियों की मासिक पत्रिका

कान्ति

वर्ष 25 अंक 4 अक्तूबर 2015

बेशक अल्लाह अपने बन्दों के हाल की ख़बर रखता है और हर चीज़ पर निगाह रखने वाला है। –क़ुरआन

संपादक

डॉ० मुहम्मद अहमद

अपने विचार, लेख, रचनाएं भेजने एवं संपादकीय मामलों के लिए लिखें–

संपादक, 'कान्ति' मासिक

डी-314, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव

जामिया नगर, नयी दिल्ली–110 025

ई मेल editorkanti@yahoo.com

* * *

ख़रीदार बनने, एजेंसी लेने, प्रचार-प्रसार एवं प्रबंधकीय मामलों के लिए लिखें–

प्रबंधक, 'कान्ति' मासिक

डी-314, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव

जामिया नगर, नयी दिल्ली–110 025

* * *

फ़ोन संपादकीय एवं प्रबंधकीय

011-26949430, 09818799223

सहयोग राशि

एक प्रति रु० 20/- विशेषांक रु० 50/-

वार्षिक रु० 220/-, दो वर्ष 425/-

पांच वर्ष 1000/-, आजीवन रु० 5000/-

सऊदी अरब और खाड़ी के देशों से–100 रियाल

यूरोप व अमेरिका से–35 US डॉलर

वेब : **www.kanti.in**

चेक / ड्राफ्ट **'मासिक कान्ति'** के नाम से बनवाएं

संदेश



यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'कान्ति' (हिन्दी मासिक) 'भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और मुसलमान' शीर्षकान्तार्गत विशेषांक प्रकाशित कर रहा है। यह ऐतिहासिक तौर पर स्वयंसिद्ध है कि देश की आज़ादी की लड़ाई में सभी समुदाय के लोगों के साथ मुसलमानों का अपनी जनसंख्या की दृष्टि से बड़ा योगदान है, वहीं यह सच है कि उनकी भूमिका का उतना उल्लेख नहीं हो पाता, जितना होना चाहिए। ऐसा भी देखा गया है कि स्वाधीनता-संघर्ष में मुसलमानों की भूमिका को जान-बूझकर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है'। वास्तविकता यह है कि देश में अंग्रेज़ी सत्ता स्थापित होने के बाद अधिकांश मुस्लिम देश प्रेमियों ने ही अंग्रेज़ी सत्ता के ख़िलाफ़ जिद्दोजहद की थी और अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर भारत को स्वतंत्र कराने की भरसक कोशिश की थी।

यह वह समय था, जब अन्य समुदाय के लोगों में स्वतंत्रता-प्राप्ति की स्वस्थ चेतना नहीं पैदा हुई थी। मुसलमानों द्वारा जगायी गयी चेतना के कारण ही अन्य समुदायों के लोगों की भी इस आन्दोलन में उल्लेखनीय भागीदारी हुई, लेकिन इस एकता का कुपरिणाम यह निकला कि 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की विफलता के बाद अंग्रेज़ों ने मुसलमानों को अपना प्रथम शत्रु मान लिया और उन पर घोर अमानुषिक अत्याचार किये। हज़ारों मुस्लिम क्रांतिकारियों को शहीद कर दिया गया और असंख्य को गिरफ़्तार कर लिया गया। अनेक मुसलमानों को ज़िन्दा जलवा दिया गया और मुस्लिम क्रांतिकारियों वाली बस्तियों में ज़बरदस्त तोड़फोड़ और आगज़नी की गयी। इन अत्याचारों के बावजूद मुसलमानों के हौसले पस्त नहीं हुए और वे अंग्रेज़ों के दमन का डटकर मुक़ाबला करते रहे।

मुझे आशा कि 'कान्ति' के इस विशेषांक में देश के स्वाधीनता आन्दोलन में मुसलमानों के उल्लेखनीय योगदानों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जाएगा और इस प्रकार यह विशेषांक देश में शांति और सद्भाव को बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होगा। अल्लाह से दुआ है कि 'कान्ति' का यह प्रयास एक स्तरीय दस्तावेज़ के रूप में पाठकों तक पहुंचे और हर दृष्टि से उपयोगी एवं लाभकारी हो।

सैयद जलालुद्दीन उमरी

चेयरमैन, दावत ट्रस्ट, दिल्ली



कहां क्या है ?

संदेश		9
मुस्लिम सेनानियों की उपेक्षा क्यों (संपादकीय)		11
स्वाधीनता संग्राम और मुसलमान	–राम पुनियानी	13
अंग्रेज़ और मुसलमान	–अब्दुल मुनअम अन-निम्र	17
असहयोग आन्दोलन, गांधी जी और मुसलमान	–अब्दुल मुनअम अन-निम्र	23
भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता का सवर्णिम काल	–अब्दुल मुनअम अन-निम्र	29
आज़ादी के दीवाने मौलवी बरकतुल्लाह	–संपादन प्रभाग	33
पत्रकारिता के मैदान के एक महान योद्धा	–सलमान फ़ैसल	35
1857 में विदिशा की भूमिका	–विपिन कुमार त्रिपाठी	37
पीर अली की ललकार	–डॉ॰ एस॰ एल॰ नागौरी	39
इस तरह भी मदद की गयी	–भरत राम भट्ट	41
स्वतंत्रता आन्दोलन और ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां	–संपादन प्रभाग	43
देश के स्वतंत्रता संघर्ष में मुसलमानों का योगदान	–मुहम्मद मुश्ताक़ बेग	47
मौलवी बाक़र की क्रान्तिकारी पत्रकारिता	–मुहम्मद इलियास हुसैन	67
शहीद अशफ़ाकुल्लाह ख़ां	–इरशाद अली आज़मी	73
मुस्लिम उलमा और योद्धा	–संपादन प्रभाग	79
अद्भुत क्रान्तिकारी मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी	–संपादन प्रभाग	89
'क्रान्तिदूत अज़ीमुल्लाह ख़ां	–संपादन प्रभाग	91
गुमनाम नायक मौलवी अहमद शाह	–संपादन प्रभाग	93
अंग्रेज़ों के ख़ूनी आतंक का गवाह कूचा चेलान	–संपादन प्रभाग	97
मुहम्मद बख़्त ख़ां	–संपादन प्रभाग	100
वलीदाद ख़ां	–संपादन प्रभाग	101
हसरत मोहानी, इक़बाल और आज़ाद	–ज़हीर ललितपुरी	103

संपादकीय

मुस्लिम सेनानियों की उपेक्षा क्यों ?

यह बड़े अफ़सोस और चिंता की बात है कि देश के स्वतंत्रता संग्राम के मुस्लिम सेनानियों का किसी भी रूप में उल्लेख तक नहीं किया जाता । जबकि ऐसी अनगिनत मुस्लिम हस्तियां और विभूतियां इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं, जिन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय व बहुमूल्य योगदान किया ! ब्रिटिश राज की नींव हिला दी और उन्हें भारत छोड़ने के लिए विवश किया । अनेक मुस्लिम क्रांतिकारियों, कवियों और लेखकों ने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी, हज़ारों की संख्या में इन्हें शहीद किया गया । मगर हमने इन्हें भुला दिया या यूं कहें, जान-बूझकर इनके योगदानों को भुला दिया गया ! प्रख्यात समाजसेवी एवं चिंतक राम पुनियानी जी लिखते हैं, ''मुस्लिम नेताओं को स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में वह स्थान नहीं मिला, जिसके वे लायक़ थे । हमारे कई शिक्षाविदों, इतिहासकारों, पाठ्य- पुस्तक लेखकों और सबसे बढ़कर राजनीतिज्ञों की सांप्रदायिक सोच के कारण इन मुस्लिम नेताओं की स्वाधीनता आन्दोलन में महती भूमिका को भुला दिया गया या फिर उसे बहुत ही कम स्थान दिया गया ।'' ('चौथी दुनिया', हिंदी में प्रकाशित एक लेख का अंश) इसी सांप्रदायिक सोच का उल्लेख एक अन्य विचारक जगदीश्वर चतुर्वेदी इन शब्दों में करते हैं, ''इसके विपरीत भारत के मुसलमानों ने अनेक विपरीत परिस्थितियों में रहक़र भी भारत के स्वाधीनता संग्राम में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया । अनेक मुस्लिम नेताओं ने...क्रांतिकारी आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ मुसलमानों की भूमिका को हमें हमेशा याद रखना चाहिए । मिसाल के तौर पर रौलेट एक्ट विरोधी आंदोलन और जलियांवाला बाग कांड में 70 से अधिक मुसलमान शहीद हुए । इनकी शहादत को हम कैसे भूल सकते हैं ? आर॰एस॰एस॰ के दुष्प्रचार अभियान में मुसलमानों को जब भी निशाना बनाया जाता है, तो उनके देश प्रेम और क़ुरबानी की बातें नहीं बतायी जाती हैं । हमारे अनेक सुधीजन फेसबुक पर उनके प्रचार के रोज़ शिकार हो रहे हैं । ऐसे लोगों को हम यही कहना चाहेंगे कि मुसलमानों के ख़िलाफ़ फेसबुक पर लिखने से पहले थोड़ा लाइब्रेरी जाकर इतिहास का ज्ञान भी प्राप्त कर लें तो शायद मुसलमानों के प्रति फैलायी जा रही नफ़रत से इस देश को बचा सकेंगे ।'' ('प्रवक्ता डॉट काम') भारतीय इतिहास पर निगाह रखने वाले सुगमता के साथ जानते हैं कि स्वाधीनता आन्दोलन में सात प्रमुख मुस्लिम संगठनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, जिनके नाम हैं–1. मजलिसे अहरार 2. खुदाई ख़िदमतगार 3. ख़िलाफ़त कमेटी 4. कश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस 5. जमीअतुल उलमा 6. अंजुमने वतन बलूचिस्तान और 7. प्रजा कृषक पार्टी । एक दस्तावेज़ी रिपोर्ट के अनुसार, स्वतंत्रता आन्दोलन में गिरफ़्तार किये गये मुसलमानों की कुल संख्या दो लाख 77 हज़ार है । साथ ही शहीद किये गये मुसलमानों की संख्या हज़ारों में है । उदाहरण के तौर पर कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं–1930 में सूबा सरहद (सीमान्त प्रदेश) में तीन हज़ार मुसलमानों को गोलियों से उड़ा दिया गया, जबकि चार हज़ार नामर्द बनाए गये और चालीस हज़ार गिरफ़्तार किये गये । इसी वर्ष पंजाब में चार हज़ार, उत्तर प्रदेश में दस हज़ार, बिहार में तीन हज़ार, असम में तीन हज़ार, बंगाल में चार हज़ार, बम्बई में तीन हज़ार और सिंध में तीन हज़ार मुसलमान गिरफ़्तार किये गये । एक रिकार्ड के अनुसार, भारतीय स्वाधीनता संग्राम में गिरफ़्तार मुसलमानों की कुल संख्या लगभग दो लाख 77 हज़ार है ।

देश के स्वतंत्रता आन्दोलन में लाखों मुसलमान भी शामिल हुए, जिनमें से बहुतों का नाम तक अज्ञात है । इन मुस्लिम सेनानियों के नामों की सूची में कुछ के नाम निश्चय ही सर्वोपरि हैं । प्रस्तुत विशेषांक में ऐसी

ही कुछ शख़्सियतों के कुछ कारनामों का उल्लेख भर किया गया है । प्रसिद्ध विद्वान मौलाना शाह वलीउल्लाह (रह०) ने मुसलमानों में लक्ष्य-प्राप्ति की ख़ातिर राजनीतिक चेतना जगाने का महत्वपूर्ण काम अंजाम दिया । इसी क्रम में मौलाना शाह अब्दुल अज़ीज़ और हाजी इम्दादुल्लाह के योगदानों को कोई कैसे नकार सकता है । महान क्रांतिकारी मौलाना महमूदुल हसन और उबैदुल्लाह सिंधी के कारनामे तो स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज हैं, लेकिन राजनीति और कूटनीति के धनी मौलाना मुहम्मद मियां अंसारी के योगदान से दुनिया अनभिज्ञ नहीं है । यह बात दूसरी है कि मुसलमानों के इस अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयासों पर जान-बूझकर प्रकाश नहीं डाला जाता। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, हकीम अजमल ख़ान, मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना शौकत अली, अल्ताफ़ हुसैन हाली, बी अम्मा, सैयद अहमद सरहिंदी, मौलाना शिबली नोमानी, डॉ० सैफुद्दीन किचलू और रफ़ी अहमद क़िदवाई आदि ऐसे मुसलमान हैं जो इस उद्देश्य में शामिल थे । शाहजहांपुर के अशफ़ाक़उल्लाह ख़ां ने काकोरी (लखनऊ) पर ब्रिटिश राजकोष को लूटने का षड्यंत्र रचा था। ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ां (सीमांत गांधी के रूप में प्रसिद्ध) एक महान थे, जिन्होंने अपने 95 वर्ष के जीवन में से 45 वर्ष केवल जेल में बिताया । भोपाल के मुहम्मद बरकतुल्लाह ग़दर पार्टी के संस्थापकों में से एक थे, जिन्होंने ब्रिटिश विरोधी संगठनों से नेटवर्क बनाया था । ग़दर पार्टी के सैयद शाह रहमत ने फ्रांस में एक भूमिगत क्रांतिकारी रूप में काम किया और 1915 में असफल ग़दर में उनकी भूमिका के लिए उन्हें फांसी की सज़ा दी गयी। फ़ैज़ाबाद (उत्तर प्रदेश) के अली अहमद सिद्दीक़ी ने जौनपुर के सैयद मुन्तबा हुसैन के साथ मलाया और बर्मा में भारतीय विद्रोह की योजना बनायी और 1917 में उन्हें फांसी पर लटका दिया गया था । केरल के अब्दुल वक्कोम क़ादिर ने 1942 के 'भारत छोड़ो' में भाग लिया और 1942 में उन्हें फांसी की सज़ा दी गयी थी । उमर सुबहानी जो कि बंबई के एक उद्योगपति करोड़पति थे, उन्होंने गांधी जी और कांग्रेस को व्यय प्रदान किया था और अंततः स्वतंत्रता आंदोलन में अपने को कुरबान कर दिया । क्रांतिकारी मुस्लिम महिलाओं में बी अम्मा के साथ ही बेगम हज़रत महल, असगरी बेगम, हबीबा, जमीला, बेगम ज़ीनत महल आदि ने ब्रिटिश के ख़िलाफ़ स्वतंत्रता के संघर्ष में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । बहुत-सी मुस्लिम महिलाओं ने क्रांतिकारियों को विभिन्न प्रकार से सहायता प्रदान की । जब 1857 में क्रांति प्रारंभ हुई, तो कानपुर में नाना साहब तथा तात्या टोपे ने क्रांति का नेतृत्व किया । उस समय हिन्दू और मुस्लिम महिलाओं ने विविध रूप से क्रांतिकारियों को सहायता दी । उन्होंने गोला-बारूद इधर-उधर ले जाने, तोपचियों की मदद करने, क़िले के नीचे लड़ रहे क्रांतिकारियों को भोजन पहुंचाने, घायलों की सेवा-सुश्रूषा का कार्य कर युद्ध के समय क्रांतिकारियों को मदद पहुंचाई । आवश्यकता पड़ने पर वे शस्त्र धारण करके युद्ध के मैदान में भी जाती थीं। अवध में क्रांति का नेतृत्व बेगम हज़रत महल ने किया था । उनके नेतृत्व में वहां की अनेक मुस्लिम महिलाओं ने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ क्रांति में खुलकर भाग लिया था । उनमें कुछ तो युद्ध में शहीद हो गयीं और कुछ के साथ अंग्रेज़ सैनिकों ने बुरा बर्ताव किया था । ऐसा पता चलता है कि लखनऊ को बचाने के लिए अनेक महिलाओं ने अपनी जान तक कुरबान कर दीं । एक महिला ने पेड़ पर बैठे हुए अंग्रेज़ सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया । इसी प्रयास में वह भी ब्रितानियों के हाथों शहीद हो गयी । इसी प्रकार दिल्ली में ज़ीनत महल के नेतृत्व में कुछ मुस्लिम महिलाओं ने अंग्रेज़ सैनिकों को विशेष क्षति पहुंचाई थी । ऐसा कहा जाता है कि दिल्ली की एक मुस्लिम महिला ने ब्रितानियों को आतंकित कर दिया था । इसके अतिरिक्त दिल्ली की चौदह मुस्लिम महिलाओं ने इज़्ज़त बचाने के लिए आत्महत्या कर ली थी। उत्तर प्रदेश के मुज़फ़्फ़रनगर के भवन थाना की असग़री बेगम को क्रांति में अहम भूमिका निभाने के कारण ज़िंदा आग में जलाकर मार डाला गया। इसके अतिरिक्त बाखरा गांव की बख़्तावरी को फ़ांसी की सज़ा दी गयी थी। अफ़सोस, आज हमें उन लोगों की कुरबानी बिल्कुल भी याद नहीं रही, जिनकी बदौलत हमें आज़ादी नसीब हुई।

स्वाधीनता संग्राम और मुसलमान

❖ राम पुनियानी

भारत के सभी धर्मों के नागरिकों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ज़रिये स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान दिया, परंतु हमारे नेताओं की बहुसंख्यकवादी मानसिकता और स्कूली पाठ्यक्रम तैयार करने वालों के संकीर्ण दृष्टिकोण के चलते भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में अल्पसंख्यकों की भूमिका को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया गया है । भारत कभी उस अर्थ में राष्ट्र नहीं रहा, जिस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग पश्चिम में किया जाता है । पश्चिमी राष्ट्रों का आधार है एक भाषा और एक संस्कृति । इसके विपरीत भारत कभी एक भाषा, धर्म या संस्कृति वाला देश नहीं रहा । धार्मिक, भाषाई, नस्ली और सांस्कृतिक विविधताएं हमेशा से भारत की विशेषता रही हैं । जब हमने ब्रिटिश राज की अपरिमित शक्ति को चुनौती देने का निर्णय किया, तभी हमारे नेताओं को यह एहसास हो गया था कि देश के लोगों-विशेषकर हिंदुओं और मुसलमानों में एकता कितनी महत्वपूर्ण है ।

स्वाधीनता संग्राम का एक नारा था, 'दीन-धरम हमारा मज़हब, ये ईसाई (अर्थात अंग्रेज़) कहां से आये ?' आम मुसलमानों ने कांग्रेस की स्थापना का उत्साहपूर्वक स्वागत किया और कांग्रेस के सभी आंदोलनों को अपना समर्थन दिया । कांग्रेस के निर्माण से लेकर भारत के स्वतंत्र होने तक मुसलमान कांग्रेस के साथ बने रहे । इस लेख में हम इसी विषय पर कुछ चर्चा करना चाहेंगे । सबसे पहले तो मैं यह स्पष्ट कर दूं कि किसी समुदाय के कुछ सदस्यों के कामों या गतिविधियों से पूरे समुदाय के संबंध में कोई राय नहीं क़ायम करनी चाहिए । हर व्यक्ति की अपनी प्राथमिकताएं और अपना एजेंडा होता है । कई लोगों को यह जानकर हैरत होगी कि मुसलमानों में कांग्रेस के सबसे उत्साही समर्थक हैं देवबंद के उलमा । यहां यह जानना भी महत्वपूर्ण होगा कि उलमा ने 1857 के स्वाधीनता संग्राम में भी भाग लिया था और उसमें अपनी पूरी ताक़त झोंक दी थी ।

इन उलमा ने 1857 की क्रांति में बड़ी-बड़ी क़ुरबानियां दीं और उनमें से सैकड़ों को कालापानी की सज़ा देकर अंडमान भेज दिया गया । कई को इटली के दक्षिण में स्थित



माल्टा नामक द्वीप में निर्वासित कर दिया गया । मैंने माल्टा के क़ब्रिस्तान में सैकड़ों उलमा की क़ब्रें देखी हैं । उन्हें अपने महबूब वतन की मिट्टी में दफ़न होना भी नसीब नहीं हुआ । जिन उलमा को निर्वासित किया गया था, उनमें से कई तो बहुत जाने-माने थे । ऐसे ही एक उलमा थे मौलाना फ़ज़्ल क़ाहिराबादी । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद दारुल उलूम देवबंद के संस्थापक मौलाना क़ासिम अहमद नानोतवी, जो स्वयं एक जाने-माने आलिम थे, ने एक फ़तवा जारी कर मुसलमानों को कांग्रेस की सदस्यता लेने और अंग्रेज़ों को देश से निकाल बाहर करने के लिए कहा । न केवल यह, उन्होंने इस तरह के एक सौ फ़तवों को इकट्ठा कर उनका संकलन प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था 'नुसरत अल-अहरार' (स्वतंत्रता सेनानियों की मदद) । उक्त उलमा आम मुसलमानों के नेता थे और देश से अंग्रेज़ों की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए प्रतिबद्ध थे ।

एक अन्य जाने-माने आलिम मौलाना महमूद उल हसन ने हिंदुओं और मुसलमानों द्वारा अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करने का संदेश पूरे देश में फैलाने की एक योजना, जिसे रेशमी रूमाल षड्यंत्र कहा जाता है, में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी । मौलाना महमूद उल हसन के अलावा अन्य कई उलमा और आम मुसलमानों ने इस षड्यंत्र में भाग लिया था । मौलाना हसरत मोहानी एक प्रतिष्ठित उर्दू कवि एवं बुद्धिजीवी थे । इसके साथ-साथ वह एक महान क्रांतिकारी भी थे, जिन्होंने स्वाधीनता की लड़ाई में हिस्सा लिया और बहुत कष्ट भोगे । वे बाल गंगाधर तिलक और उनके प्रसिद्ध

नारे स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है के घोर प्रशंसक थे । वे तिलक को तिलक महाराज के नाम से पुकारते थे । एक मौलाना होते हुए भी वे 1925 में स्थापित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्यों में से एक थे । मौलाना कई बार जेल गये और उन्हें कड़ी सज़ाएं दी गयीं । इनमें शामिल थी रोज़ 40 किलो अनाज पीसने की सज़ा, परंतु मौलाना ने कभी हार नहीं मानीं ।

गांधी जी तक देश के दूरगामी हितों की ख़ातिर कुछ समय के लिए होमरूल के लिए राज़ी हो गये थे, परंतु मौलाना इस मामले में किसी प्रकार के समझौते के पक्षधर नहीं थे ।

जब कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में होमरूल प्रस्ताव पेश किया गया, उस समय मौलाना को एक मुशायरे की तैयारी के बहाने अधिवेशन स्थल से दूर रखा गया, क्योंकि यह तय था कि वह प्रस्ताव का कड़ा विरोध करेंगे । यह थी मौलाना की भारत की संपूर्ण स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्धता । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का देश के मुसलमानों ने पूरे उत्साह से स्वागत किया था । इस तथ्य को हमारे इतिहासविदों ने कभी पर्याप्त महत्व नहीं दिया । हमारे इतिहासविद् हमेशा इस बात पर ज़ोर देते रहे हैं कि सर सैयद ने मुसलमानों को यह सलाह दी थी कि वे कांग्रेस की सदस्यता न लें । तथ्य यह है कि यह मुसलमानों के एक छोटे से हिस्से की राय थी । यह वह तबक़ा था, जिसने 1857 के स्वाधीनता संग्राम के बाद अंग्रेज़ों के हाथों बहुत अत्याचार सहे थे और जो अंग्रेज़ों की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाना चाहता था । हिंदुओं में भी ऐसे तत्व थे, विशेषकर ज़मींदारों, राजाओं एवं महाराजाओं में । इसके अलावा सर सैयद का कांग्रेस के प्रति दृष्टिकोण शत्रुता का नहीं था । वे तो केवल यह चाहते थे कि मुसलमान आधुनिक शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन पर ज़्यादा ध्यान दें ।

सर सैयद की भूमिका के बारे में बहुसंख्यक सांप्रदायिक तत्वों ने कई तरह के भ्रम फैलाए हैं । इस सिलसिले में यह जानना महत्वपूर्ण होगा कि सर सैयद ने हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए अथक प्रयास किये । उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों को भारत रूपी दुल्हन की दो आंखें निरूपित किया था । यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि सर सैयद आम जनता के नेता नहीं थे । वे तो केवल उत्तर भारत के मुसलमानों को सामाजिक एवं शैक्षिक सुधारों के लिए प्रेरित करना चाहते थे । सभी मुसलमान भी सर सैयद के साथ नहीं थे । इस वर्ग के एक सदस्य एवं बंबई हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश बदरुद्दीन तैयबजी ने बंबई अधिवेशन के दौरान अपने 300 साथियों के साथ कांग्रेस की सदस्यता ली थी । वे बाद में कांग्रेस के अध्यक्ष भी चुने गये ।



ख़िलाफ़त आन्दोलन के संबंध में भी अनेक भ्रांतियां हैं । यह आन्दोलन, गांधी जी की अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्ण रणनीति का हिस्सा था । इसके ज़रिये गांधी जी ने सफलतापूर्वक लाखों आम मुसलमानों को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ा । दुर्भाग्यवश, हमारे देश का बुद्धिजीवी वर्ग इस आंदोलन को सही दृष्टिकोण से नहीं देखता, परंतु इस तथ्य को कोई नहीं नकार सकता कि इस आंदोलन के कारण ही बड़ी संख्या में मुसलमान स्वाधीनता आंदोलन का हिस्सा बने । अली बंधु-मौलाना मुहम्मद अली एवं शौकत अली इसी आंदोलन की उपज थे । अली बंधुओं ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । उनकी मां भी स्वतंत्रता संघर्ष के प्रति उतनी ही प्रतिबद्ध थीं । जब उनकी मां को इस अफ़वाह की जानकारी मिली कि अली बंधु माफ़ी मांग कर जेल से बाहर आने की कोशिश कर रहे हैं (यह कोरी अफ़वाह ही थी) तो एक पर्दानशीन महिला होने के बावजूद उन्होंने एक सार्वजनिक मंच से घोषणा की कि अगर मेरे पुत्रों ने ऐसा कुछ किया तो मैं उनका दूध माफ़ नहीं करूंगी ।

जीवन के अंतिम समय में मौलाना मुहम्मद अली के गांधी जी से गंभीर मतभेद हो गये थे, परंतु अपनी मृत्यु से पहले उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की कि उन्हें येरुशलम में दफ़नाया जाए, क्योंकि वे गुलाम भारत में नहीं दफ़न होना चाहते । ख़िलाफ़त आंदोलन के दौरान कुछ मुसलमानों ने ब्रिटिश भारत को दारुल हर्ब (युद्ध का घर) घोषित करके अफ़ग़ानिस्तान पलायन करना शुरू कर दिया, ताकि वहां

निर्वासित सरकार स्थापित कर अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष का संचालन किया जा सके । इस पलायन के मुख्य प्रेरणा स्रोत थे मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी । उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान में स्वतंत्र भारत की अंतरिम निर्वासित सरकार बनायी । राजा महेंद्र प्रताप इस सरकार के राष्ट्रपति थे और मौलाना उबैदुल्लाह प्रधानमंत्री । दुर्भाग्यवश अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह ने ब्रिटिश सरकार के दबाव में आकर वहां पहुंचे मुसलमानों को अपने देश से निकाल दिया । इस कार्रवाई में हज़ारों मुसलमान मारे गये । ऐसी थी आज़ादी के प्रति मुसलमानों की दीवानगी ।

स्वाधीनता आन्दोलन के एक अन्य चमकीले सितारे थे मौलाना हुसैन अहमद मदनी । उन्होंने देश के विभाजन का जमकर विरोध किया । वे महान कवि एवं चिंतक इक़बाल से भिड़ गये और राष्ट्रीयता के मुद्दे पर इक़बाल के विचारों को चुनौती दी । उन्होंने एक किताब भी लिखी, जिसका शीर्षक था 'मुत्तहिदा क़ौमियत और इस्लाम' (साझा राष्ट्रवाद और इस्लाम) । उन्होंने जिनाह के द्विराष्ट्र सिद्धांत को भी चुनौती दी और कुरआन और हदीसों से लिए गये उदाहरणों से यह साबित किया कि द्विराष्ट्र सिद्धांत को इस्लाम की मंज़ूरी नहीं है । उनकी इस पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद भी उपलब्ध है । यह अनुवाद जमीयत उलेमा-ए हिंद ने कराया है और अब इस पुस्तक का लाभ उर्दू न जानने वाले भी उठा सकते हैं ।

मौलाना हुसैन अहमद को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा । मुस्लिम लीग के कार्यकर्ताओं ने कई स्थानों पर उनके साथ दुर्व्यवहार किया और उन्हें जूतों की मालाएं पहनायीं । स्वतंत्रता आंदोलन में मौलाना आज़ाद और सरहदी गांधी ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ान के स्वर्णिम योगदान को कौन भुला सकता है ? दोनों अपनी अंतिम सांस तक भारत की आज़ादी के दीवाने बने रहे । ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान एकमात्र ऐसे नेता थे, जिन्होंने देश के विभाजन को कभी स्वीकार नहीं किया । उन्होंने कांग्रेस कार्य समिति की बैठकों में विभाजन का तब भी विरोध किया, जब नेहरू और सरदार पटेल तक ने इसे अपरिहार्य मानकर स्वीकार कर लिया था ।

मौलाना आज़ाद ने विभाजन का विरोध करते हुए जो लेख लिखा था, इस विषय पर उससे बेहतर शायद ही कुछ लिखा गया होगा । इन मुस्लिम नेताओं को स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में वह स्थान नहीं मिला, जिसके वे लायक़ थे । हमारे कई शिक्षाविदों, इतिहासकारों, पाठ्य-पुस्तक लेखकों और सबसे बढ़कर राजनीतिज्ञों की सांप्रदायिक सोच के कारण इन मुस्लिम नेताओं की स्वाधीनता आंदोलन में महती भूमिका को भुला दिया गया या फिर उसे बहुत ही कम स्थान दिया गया । जब मैं मदुरई के गांधी संग्रहालय में गया, जो देश के सर्वश्रेष्ठ गांधी संग्रहालयों में से एक माना जाता है, तो मुझे यह देखकर बहुत दुख हुआ कि वहां सरहदी गांधी की स्वाधीनता संग्राम में भूमिका के नाम पर एक तरह से कुछ न था ।

आज एक आम हिंदू सोचता है कि मुसलमानों ने इस देश के दो टुकड़े करवाए और वह उन्हें संदेह की दृष्टि से देखता है । इस भ्रांति को दूर करने के लिए कुछ नहीं किया जा रहा है, जो अफ़सोसनाक है ।

M/s. ABBAS SOAP FACTORY

77/2, Topsia Road (South)
KOLKATA - 700 046

अगर कोई अपने ब्रांड के नाम से माल बनवाना चाहते हैं तो भी राबिता क़ायम करें।

PRODUCTS

- ✓ WASHING POWDER
- ✓ TOILET SOAP
- ✓ WASHING SOAP
- ✓ DETERGENT POWDER
- ✓ BATH SOAP

Contact For Business
For
Agency & Distributor Ship

M : 08100226137 (Mohd. Abbas)
M : 09831496237 (Mohd. Khalid)
M : 08981605834 (Mohd. Khalid)

FARUQUE ALAM BROS & CO.



Ist Floor, Parsi Building, 118, Carnac Road, Opp. Crawford Market,
Near Sadanand Hotel, Mumbai - 400003
Tel. : 022-32939161, 022-23444104
E-mail : sales@fabcobag.com
Website : www.fabcobag.com

BRANCH :
Khasra No. 122, Plot No. 270/1391, Central Hoptown, Selaqui,
Near Pharmacity, Dehradun (U.K.)
Tele No : 0135-2698316, 3240744
Telfax : 0135-2698265

अंग्रेज़ और मुसलमान

■ अब्दुल मुनअम अन-निम्र

''इस अज़ीम और स्पष्ट वास्तविकता से अनदेखी नहीं की जा सकती कि केवल मुसलमान स्वाभाविक और प्राकृतिक रूप से हमारे दुश्मन हैं । हमारा मूल लक्ष्य व उद्देश्य यह है कि हम हिन्दुओं की प्रसन्नता प्राप्त करें ।''

लार्ड एलन बेर्ड (Lord Alan Byrd)

गवर्नर जनरल भारत, 1843 ई॰

भारत पर शासन करने की यही वह मूल कूटनीति थी, जिसे अंग्रेज़ों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के ज़माने में अपनाया था और जब उन्होंने सन 1857 ई॰ में क्रांति की कोशिशों को असफल बना दिया तो और अधिक सख़्ती के साथ इस पर काम करने लगें । सन 1857 ई॰ की इस घटना के संबंध में मुसलमानों और उनके बादशाह सिराजुद्दीन बहादुर शाह ज़फ़र का विचार था कि वे इन्हीं के द्वारा अपनी छीनी हुई शक्ति व प्रभाव को वापस लाने में सफल हो जाएंगे । अंग्रेज़ों पर मुसलमानों की शदीद दुश्मनी स्पष्ट हो गयी । अंग्रेज़ों को भारत से निकाल बाहर करने की असफल कोशिश भी उजागर हो गयी और क्रांति की कोशिश भी असफल हो गयी, तो अंग्रेज़ प्रतिशोध लेने के लिए बिल्कुल तैयार हो गये । उन्होंने विभिन्न धाराओं की बुरी से बुरी सज़ाओं के लिए मुसलमानों को ही अपना निशाना बनाया । जिसका सविस्तार विवरण ''तारीख़ुल इस्लाम फ़िल हिन्द, पृ॰ 359'' में 'इन्क़िलाब, 1857 ई॰ के असबाब' शीर्षक के अंतर्गत देख सकते हैं ।

जब प्रतिशोध की आग ठंडी हो गयी और प्रभुत्व प्राप्त करने वालों ने अपनी प्यास मुसलमानों के ख़ून से बुझा ली, तो भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन आ गया । ईस्ट इंडिया कंपनी के बजाय ब्रिटिश सरकार भारत की प्रबंध-व्यवस्था और शासन की ज़िम्मेदार बन गयी और महारानी विक्टोरिया ने तथाकथित क्षमादान की घोषणा की, जिसे ''आम माफ़ी'' का नाम दिया गया, तो अंग्रेज़ी सरकार ने अपनी उस पुरानी राजनीतिक कूटनीति के अधीन संग्रहित योजना और क़ानून को लागू करना शुरू कर दिया ।

अंग्रेज़ों ने मुसलमानों को आर्थिक हैसियत से भी कमज़ोर करने की कोशिश की और उन्हें निर्धन बनाकर छोड़ा । उन पर क़र्ज़ों का बोझ लाद दिया । सूदी कारोबार करने वाले हिन्दुओं को भी मुसलमानों की संपत्तियां ज़ब्त कराने में उनकी सहायता प्रदान की । उनके लिए छोटी-बड़ी सारी नौकरियों के दरवाज़े बन्द कर दिये गये । जो मुसलमान व्यापार करते थे उनके लिए तरह-तरह की आर्थिक परेशानियां पैदा की गयीं ।

इसी के साथ-साथ अंग्रेज़ों ने मुसलमानों को विशेष रूप से अज्ञानता का शिकार बनाया, यद्यपि यही लोग अंग्रेज़ों के भारत पर सत्तासीन होने से पहले दूसरी सारी क़ौमों की तुलना में बुद्धिमत्ता के लिहाज़ से प्रतिष्ठित व प्रगतिशील थे, जिसको अंग्रेज़ इतिहासकार 'मिस्टर हंटर' ने स्वयं स्वीकार किया है । अंग्रेज़ों ने मुसलमानों के उन मदरसों को निशाना बनाया, जो वास्तव में देश में सभ्यता व संस्कृति के स्रोत थे । बहुत-से मुस्लिम औक़ाफ़ ज़ब्त कर लिए गये, जो उन मदरसों की आय का स्रोत थे ।

इसी पर बस नहीं किया गया, बल्कि जो धनवान मुसलमान थे, जिनका स्वाभिमान उन्हें उन मदरसों की सहायता करने पर उभारता था, उन्हें डराया-धमकाया गया या लोभ-लालच देकर उन्हें अपने ही लोगों के विरुद्ध खड़ा कर दिया । इस तरह उन्हें उन मदरसों की सहायता करने से रोक दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनमें से बहुत-से मदरसे विवशता के कारण बन्द हो गये ।

मुसलमानों के अतिरिक्त भारत की दूसरी क़ौमें जैसे हिन्दू आदि की दशा और उनकी मनोवृत्तियां इसके बिल्कुल ही विपरीत थी । वे अंग्रेज़ों की तरफ़ किंचित आकर्षित हुए । अंग्रेज़ों ने भी उनके इस कृत्य का उन्हें पुरस्कार दिया और उनकी ओर अपनी दोस्ती का हाथ बढ़ाया । उन्होंने एक तरफ़ तो उन हिन्दुओं को सीने से लगाया और दूसरी ओर उन्हें बहुत-ही अल्प पारिश्रमिक देकर उनसे वह बदतरीन काम लिया, जिसमें अंग्रेज़ी राजनीति हमेशा मशहूर रही है । अर्थात इस तरह अंग्रेज़ों ने अपने वास्तविक दुश्मन मुसलमानों

के विरुद्ध उन्हें लाकर खड़ा कर दिया ।

वास्तविकता यह है कि अंग्रेज़ों के विरुद्ध सन 1857 ई॰ में हुए विद्रोह की असफलता के बाद जो दौर आया वह ख़तरनाक, निराशा और बड़ा त्रासद था । यद्यपि यह निराशा भारत के समस्त स्वतंत्रता प्रेमियों में फैली हुई थी, लेकिन देश भारत के मुसलमान इस असफलता और निराशा के बड़े प्रभावों से ज़्यादा प्रभावित हुए । यह असफलता वैसी ही थी, जैसी मिस्रियों पर सन 1882 ई॰ के आन्दोलन की असफलता के बाद उत्पन्न हुई थी ।

इस प्रकार की निराशाओं के साथ खिन्नता, हतोत्साह, असावधानी और डर सब कुछ पैदा हो जाता है, लेकिन इसी के साथ-साथ रोशनी की हल्की-सी किरण भी थी, जो इस घनघोर अँधियारे में चमक रही थी ।

रोशनी की यह किरण उन क्रांतिकारियों के दिलों से फूट रही थी, जो निराशाओं के शब्द से भी अनभिज्ञ थे । उनके दिल ईमान के नूर से प्रकाशमान थे और देश-धर्म के प्रति निश्छल थे । स्वतंत्रता सेनानियों के इस संगठन का नेतृत्व हज़रत सैयद अहमद शहीद बरेलवी (रह॰) कर रहे थे, जो मुसलमानों के दुश्मनों से अपने अनुयायियों और धर्म पर विश्वास करने वालों के साथ जिहाद करते हुए उत्तरी भारत में सन 1931 ई॰ में शहीद हुए ।

('तारीख़ुल इस्लाम फ़िल हिन्द', हज़रत शहीद और उनकी तहरीक, अध्याय-12)

मौलाना सैयद अबुल हसन नदवी ने सविस्तार एक लेख में उन मुजाहिदीनों (स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों) का चरित्र पेश किया है । मैं यहां उसी लेख से एक लंबा उद्धरण लिख रहा हूं, जिससे भारत अपने अंधकारमय दौर में भी ख़ाली न रहा–

2 मई सन 1864 ई॰ को अंग्रेज़ जज अंबाला की अदालत में बैठा । उसके साथ शहर के चार प्रतिष्ठित व्यक्ति भी उस मुक़दमे के सिलसिले में अपनी राय देने के लिए उपस्थित थे । उन लोगों के सामने वे ग्यारह लोग पेश किये गये, जिन पर आरोप था कि इन लोगों ने भारत में अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा था और ये लोग हज़रत सैयद अहमद शहीद और हज़रत मौलाना शाह इस्माईल शहीद (रह॰) के अनुयायियों की अफ़ग़ानिस्तान की सीमाओं पर मदद किया करते थे इत्यादि । आज इन लोगों के मुक़दमे के फ़ैसले की तारीख़ थी ।

अपना फ़ैसला सुनाते हुए जज ने एक शक्तिशाली ख़ूबसूरत नवजवान को संबोधित करते हुए कहा, जो किसी शरीफ़ व प्रतिष्ठित ख़ानदान का व्यक्ति मालूम हो रहा था–("जाफ़र ! तुम तो एक समझदार छात्र हो, सरकारी क़ानून के बारे में भी तुम भली-भांति परिचित हो, तुम अपने शहर के सम्मानित व्यक्ति हो, शहर के धनिकों में से हो, लेकिन इन सारी बातों के बावजूद तुमने अपनी बुद्धिमत्ता और अपना ज्ञान सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र में लगाया और तुम ही धन और आदमियों को भारत से विद्रोहियों के केन्द्र में भेजने का माध्यम बने ?" निर्णय सुनाते हुए जज ने आगे कहा, "लो सुनो ! मैं तुम्हारे लिए फांसी की सज़ा और तुम्हारी हर तरह की संपत्तियों को ज़ब्त करने का आदेश देता हूं । फांसी के बाद तुम्हारी लाश भी तुम्हारे माता-पिता व परिवार के लोगों को नहीं दी जाएगी, बल्कि आभागों के क़ब्रिस्तान में पूरे अपमान व तिरस्कार के साथ दफ़्न कर दी जाएगी और जब तुम्हें फांसी के तख़्ते पर लटका हुआ देख लूंगा, तो मुझे ख़ुशी होगी और अपने आपको भाग्यशाली समझूंगा ।"

जब जज अपनी बात कह चुका और फ़ैसला सुना चुका, तो उस देश प्रेमी नवजवान ने पूरे आत्मविश्वास और संतोष के साथ कहा, "बेशक जान अल्लाह तआला के हाथ में हैं, वही जिलाता, वही मारता है । जज साहब ! आप किसी के जीवन और मृत्यु के ठेकेदार नहीं हैं और न आपको इसकी ख़बर है कि हम दोनों में से कौन मौत के घाट पहले उतरेगा ।"

लोगों को उस मोमिन नवजवान के साहस पर आश्चर्य हुआ, जिसके चेहरे से आभा की किरणें फूट रही थीं और जब उसकी ओर अंग्रेज़ इंसपेक्टर बारसिन बढ़ा और उसने उनसे कहा कि, "मैंने तुम्हारी तरह का कोई दूसरा नहीं देखा, तुम्हें फांसी की सज़ा दी जा रही है और तुम ख़ुश हो रहे हो । इस पर मौलाना जाफ़र ने जवाब दिया, "आख़िर मैं क्यों न ख़ुश हूं, अल्लाह ने अपनी राह में मुझे शहादत नसीब फ़रमायी है मियां ! तुम्हें इसकी मिठास की भला क्या ख़बर ?"

मौलाना जाफ़र के अलावा दो और लोगों को फांसी की सज़ा सुनायी गयी, उनमें से एक मौलाना यह्या सादिक़पुरी जो जामिया के अध्यक्ष थे और काफ़ी बूढ़े व्यक्ति थे और दूसरे थे पंजाब के नवजवान सेठ हाजी मुहम्मद शफ़ी, शेष

आठ लोगों को आजीवन कारावास की सज़ा दी गयी । जब अंग्रेज़ों ने महसूस किया कि जिन लोगों को फांसी की सज़ा दी गयी है, वे इस सज़ा से बहुत खुश हैं, तो उन पर उन्माद सवार हो गया और अब वे इस सोच में पड़े कि उन्हें शहादत नसीब न हो । अतः एक दिन शहर का कलेक्टर उन स्वतंत्रता प्रेमियों के पास आया और रिहाई कोर्ट का फ़ैसला पढ़कर उन्हें सुनाया कि, "विद्रोहियों ! तुम लोग फांसी को पसन्द करते हो और उसे अल्लाह की राह में शहादत समझते हो, लेकिन हम नहीं चाहते कि तुम्हारी मनोकामनाएं पूर्ण हों और तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त हो, इसलिए फांसी के फ़ैसले को निरस्त करते हुए तुम्हें आजीवन सिंहलद्वीप (लंका) में कालापानी की सज़ा देते हैं ।"

इन स्वतंत्रता प्रेमियों से बहुत ही जटिल काम लिए गये । इन्हें एक जेल से दूसरी जेल में भेजा गया । अंत में उन्हें अंडमान द्वीप समूह भेजा गया, जो बहुत ही बुरी जगह थी । मौलाना यह्या की मृत्यु फ़रवरी 1868 ई॰ में हो गयी, लेकिन उनके साथी मौलाना जाफ़र को 18 वर्ष काला पानी की सज़ा भुगतने के बाद सन 1883 ई॰ में माफ़ी दे दी गयी ।

चूंकि अंग्रेज़ों ने मदरसों को ख़त्म करने के लिए औक़ाफ़ को ख़त्म कर दिया था, जिसकी आय से मदरसे चलते थे । इसलिए इस पद्धति पर विचार किया गया कि ऐसे नये मदरसे खोले जाएं, जो औक़ाफ़ पर आश्रित ही न हों, बल्कि वे लोग इसकी आय का साधन हों, जिन तक अंग्रेज़ी सरकार के हाथ उस तरह न पहुंच सकें, जैसे कि औक़ाफ़, ज़मींदार और धनवान मुसलमानों तक पहुंच सके थे ।

ऐसी स्थिति में इस मैदान में उनके लिए प्रयत्न करना ज़रूरी था, ताकि अपने दीन (धर्म) की रक्षा कर सकें । उन्हें सबसे ज़्यादा जिस बात की चिंता थी वह यह कि वे अपने नवजवानों का शिक्षण-प्रशिक्षण इस तरह करें कि उन पर साम्राज्यवाद की हल्की-सी छाप भी न पड़े और उनके दिलों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध द्वेष की भावना पैदा हो जाए । इसके अतिरिक्त इस शिक्षा-दीक्षा के द्वारा उन्हें पश्चिमी प्रभाव को अंगीकृत करने से बचाया जा सके । इस आवश्यकता को ऐसे ही मदरसे पूरा कर सकते थे, जो सरकार और सरकारी पदाधिकारियों के प्रभाव से बिल्कुल स्वतंत्र हों । अतः इस काम के लिए उन उलमा में से कुछ स्वाभिमानी लोग तैयार हुए, जिन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया था और उनके विरुद्ध हथियार उठाये ।

इस तरह सबसे पहले स्थापित किया जाने वाला मदरसा 'दारुल उलूम' था, जो देवबन्द में खोला गया । यह ज़िला सहारनपुर का एक क़स्बा (सबडिवीज़न) है, जो दिल्ली से क़रीब 90 मील उत्तर की ओर उत्तर प्रदेश में स्थिति है । उस वक़्त 1956-57 ई॰ में इसकी आबादी तीस हज़ार थी, जिनमें आधे मुसलमान थे । देवबन्द के एक ख़ानदान से मौलाना मुहम्मद क़ासिम नानोतवी की रिश्तेदारी थी । आपने वहीं शादी की । जब उलमा का संगठन क्रांति की कोशिश में असफल हो गया और अंग्रेज़ सफल हो गये, तो मौलाना ने इस ख़ानदान में पनाह ली और अंग्रेज़ों की ओर से स्वतंत्रता आन्दोलन में शरीक होने वालों के लिए आम माफ़ी की घोषणा तक वहीं छिपे रहे । फिर वे अपने आन्दोलन को चलाने के लिए प्रयत्नशील हो गये ।

मदरसे में शिक्षा की शुरुआत मुहर्रम 1283, हिजरी सन 1868 ई॰ में एक छोटी-सी मस्जिद के प्रांगण में अनार के पेड़ के नीचे हुई । यह मस्जिद आज भी मौजूद है और "मस्जिद छत्ता" के नाम से प्रसिद्ध है । उस वक़्त मदरसे में छात्र एक ही थे, जिनका नाम महमूद हसन था और शिक्षक भी एक जिनका नाम मुल्ला क़ारी महमूद था । यह मदरसा हज़रत मौलाना रशीद अहमद गंगोही (रह॰) की सरपरस्ती में था ।

(तारीख़ुल इस्लाम फ़िल हिन्द, पृ॰ 441)

ख़ुदा की मर्ज़ी देखिये कि इस मदरसा का यह पहला छात्र अंग्रेज़ों को भारत से निकाल बाहर करने की कोशिश में और दूसरे लीडरों के कंधे से कंधा मिलाकर चलता नज़र आता है । प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अरब में इन्हें और इनके साथियों को गिरफ़्तार करके माल्टा की जेल में बन्द कर दिया, जहां वे 1920 ई॰ तक क़ैद रहे । माल्टा की जेल से रिहा होने के बाद जब भारत आये, तो भारत के कोने-कोने में आपका नाम प्रसिद्ध हो चुका था । उसी ज़माने में क़ौम ने आपको "शैख़ुल हिन्द" की उपाधि से विभूषित किया ।

मदरसा छोटी-सी मस्जिद के बग़ल में ज़माने के साथ-साथ बढ़ता और उन्नति करता रहा, यहां तक कि आज यह मदरसा अनेक ऊंची-ऊंची इमारतों और विस्तृत भू-भाग पर

आधारित है, जिसमें बड़ी संख्या में देश-विदेश के छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं । दारुल उलूम देवबन्द और दूसरे मदरसे केवल इस आधार पर स्थापित किये गये थे कि इन मदरसों के माध्यम से इस्लामी सभ्यता, अरबी भाषा और पश्चिमी सभ्यता से जंग तथा अंग्रेज़ी रहन-सहन, आचार-विचार, वेष-भूषा और भारतीय मुसलमानों के सोच-विचार व चरित्र के बीच दीवार खड़ी की जाए । इस सोच ने भारत में एक विशिष्ट विचारधाराओं की नींव डाल दी, जिसके गहरे प्रभाव भारत पर विशेष रूप से मुसलमानों के जीवन पर पड़े ।

भारत के प्रसिद्ध विद्वान मौलाना अबुल हसन नदवी अपनी किताब "मौक़िफुल आलमिल इस्लामी तजाहुल हिज़ारतुल अरबिया" में लिखते हैं–

"भारत पर अंग्रेज़ों के अधिकार कर लेने के बाद मुसलमानों के दो तरह के नेतृत्व सामने आये । एक तो धार्मिक नेतृत्व था, जिसका नेतृत्व उलमा-ए दीन कर रहे थे और दूसरे नेतृत्व का पथ-प्रदर्शन सर सैयद अहमद ख़ान कर रहे थे । अंग्रेज़ों से नफ़रत की भावना जो मुसलमानों के दिलों में छापी हुई थी उसने विशिष्टता के साथ इस विचारधारा को ताक़त पहुंचायी और अंग्रेज़ी सभ्यता-संस्कृति और उन शिक्षा संस्थानों के निराकरण के आह्वान हेतु सहायक सिद्ध हुई, जो उस सभ्यता की छाप रखते थे । अपने धर्म से निष्कपट प्रेम रखने वाले मुसलमानों की निगाहों में उन शिक्षा-संस्थानों का वातावरण दूषित व ज़हरीला था, जहां इस्लाम के विरुद्ध छात्रों के मन-मस्तिष्क में विष भरा जाता था ।

मैंने इसके लक्षण वहां मध्यम धार्मिक वर्गों में देखा । वहां धार्मिक मदरसों में अंग्रेज़ी नहीं पढ़ायी जाती, जबकि इस भाषा को सरकारी भाषा की हैसियत प्राप्त है और यह जनता और सरकार के मध्य संपर्क रखने की भाषा है । उलमा हज़रात छात्रों को अंग्रेज़ों की रीत-रिवाज व परंपरा का अनुसरण करने और उनके तौर-तरीक़े और आदत से बचाने तथा पश्चिमी सभ्यता और उसके प्रदर्शन से सुरक्षित रखने के लिए धार्मिक पक्षपात के इस हद तक पहुंचे हुए हैं ।"

(पृ॰ 34,35)

अतः इस भावना का प्रभाव यह हुआ कि उलमा हज़रात से प्रभावित मुसलमानों ने जिनकी संख्या बहुत ज़्यादा थी, सरकारी स्कूलों और कॉलेजों का बहिष्कार किया, जबकि दूसरी क़ौमों ने उन्हें स्वीकार कर लिया । उन्होंने उनमें शिक्षा प्राप्त की, ताकि छोटी-छोटी सरकारी नौकरियां उनको मिल सकें, जो अंग्रेज़ उनमें बांटा करते थे । यद्यपि वह साधारण व तुच्छ ही हुआ करती थीं, मगर बहरहाल ये नौकरियां उन कर्मचारियों के लिए अपने मुसलमान भाइयों की तुलना में भौतिक उन्नति व मेल-जोल के रास्ते ज़रूर खोल देती थीं ।

अंग्रेज़ों के भारत पर सत्तासीन होने के प्रारंभिक काल में जीवन की गाड़ी इसी पद्धति पर चलती रही कि ग़ैर-मुस्लिम बहुलता के साथ अंग्रेज़ अधिकारियों का सहयोग करती रही और उनकी शिक्षा-पद्धति तथा नौकरियों को अपनाती रही, लेकिन मुस्लिम अल्पसंख्यक न केवल यह कि उस सहयोग से दूर रहे, बल्कि उसका विरोध भी करते रहे और उस धारे से अलग अपनी विशिष्ट सभ्यता से चिमटे हुए खुश रहे ।

इस सूरतेहाल को उन मुस्लिम संगठनों ने चिंता व फ़िक्र की निगाहों से देखा, जो अंग्रेज़ों और उनकी सभ्यता को उलमा की तरह शत्रुता की निगाहों से नहीं देखते थे । उन लोगों ने महसूस किया कि उलमा के इस आचार-व्यवहार का परिणाम स्वाभाविक रूप से यह होगा कि मुसलमान इस आधुनिक सभ्यता-संस्कृति की दौड़ में पीछे रह जा रहे हैं, जो नये साम्राज्य के साथ आया है, जबकि भारत की वे दूसरी क़ौमें प्रगति कर रही हैं, जिन्होंने इस कल्चर को अपना लिया है और धीरे-धीरे वे देश की प्राथमिक योजनाओं पर अधिकार करती जा रही हैं ।

मुसलमानों और अंग्रेज़ों के मध्य बढ़ती कटुता के कारण न वे देश में उन्नति व प्रगति कर पाएंगे और न ही उनको सरकारी नौकरियां ही मिल पाएंगी, जिसके परिणामस्वरूप भारत में मुसलमानों का भविष्य अंधकारमय होकर रह जाएगा ।

For Information On
City Shops, RoaosQ, Restaurants, Magazines, Schools and much more.
Syed Shahbaz Alam Barvi
Business Development Director (09049185093)
Visit us:
www.shoppinglanes.com

इसी कारणवश ये लोग सर सैयद अहमद ख़ां के नेतृत्व में उठ खड़े हुए । अंग्रेज़ों और मुसलमानों के मध्य वाद-विवाद को ख़त्म करने और दोनों पक्षों के दिलों में एक-दूसरे के प्रति भरोसा पैदा करने की कोशिश में व्यस्त हो गये, ताकि दोनों एक-दूसरे के क़रीब आ जाएं और दोनों एक-दूसरे से लाभांवित हों । इसी तरह उन लोगों ने मुसलमानों को अंग्रेज़ी शिक्षा की ओर भी आकृष्ट किया जिसे अंग्रेज़ी सरकार ने देश में प्रचलित किया था ।

फिर जब उन लोगों ने यह महसूस किया कि सरकारी स्कूलों में मुसलमानों के बच्चों को भेजना काफ़ी नहीं है, तो उन्होंने लोगों को एक इस्लामी शिक्षा केन्द्र खोलने की दावत दी, जिसमें मुसलमान बच्चे आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ अपनी धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त कर सकें और फिर वे इस योग्य बन सकें कि पश्चिमी संस्कृति-सभ्यता के साथ-साथ अपने हिन्दू भाइयों के कंधे से कंधा मिलाकर देश की उन्नति व प्रगति में भाग ले सकें ।

सर सैयद अहमद ख़ां का जन्म 27 अक्तूबर सन 1817 ई॰ में दिल्ली के सादात (सैयद) ख़ानदान में हुआ था । आपने आधुनिक व धार्मिक दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त की । पिता की मृत्यु के बाद 22 वर्ष की अवस्था में आपने सन 1830 ई॰ में ईस्ट इंडिया कंपनी में क्लर्क के रूप में काम करना शुरू किया । अपनी मेहनत व योग्यता के बल पर तीन वर्ष के बाद सन 1841 ई॰ में मैनपुरी से उपन्यायाधीश की योग्यता प्राप्त की और विभिन्न स्थानों पर न्यायिक विभाग में काम किया । इस दौरान सन 1857 ई॰ में क्रांति शुरू हो गयी, उन दिनों वे बिजनौर में रह रहे थे । इनका विचार था कि उस वक़्त तक इस विद्रोह से कोई लाभ नहीं होगा, जब तक दोनों शक्तियां बराबर न हों । इस शहर में उन्होंने बहुत-से अंग्रेज़ ख़ानदानों को क्रांतिकारियों के हाथों से बचाया ।

अंग्रेज़ ख़ानदानों की हिमायत के साथ-साथ उनका यह दृष्टिकोण क्रांतिकारियों की नाराज़गी में वृद्धि करने, उन्हें किसी तौर पर क़त्ल करने और उनसे छुटकारा पाने के विचार का कारण बना, लेकिन दूसरी ओर इन्हीं चीज़ों की वजह से अंग्रेज़ों की इनसे दोस्ती हुई ।

इन परिस्थितियों में घिरे होने के बावजूद इन्होंने एक ऐसे नये स्कूल स्थापित करने का एलान किया, जिसमें मुसलमान बच्चे धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक शिक्षा ख़ासकर अंग्रेज़ी भी प्राप्त कर सकें । इस सिलसिले में वे अलीगढ़ आ गये । यहां पर इन्होंने उन धनवान मुसलमानों से इस स्कूल को स्थापित करने में आर्थिक सहायता की अपील की जो उनकी विचारधारा से सहमत थे । इन लोगों के सहयोग से सर सैयद अहमद ख़ान ने सन 1860 ई॰ में ऐंग्लो-मोहम्मडन ओरिएंटल कॉलेज, अलीगढ़ की स्थापना की, जो कालांतर में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ । भारत सरकार ने इसे सन 1920 ई॰ में विश्वविद्यालय स्वीकार किया ।

सर सैयद अहमद ख़ां का इस स्कूल के लिए अंग्रेज़ शिक्षक और प्रिंसिपल पर भरोसा करना भी उन शक व संदेहों में वृद्धि का कारण बना, जो उस कॉलेज के संबंध से लोगों के दिलों में मौजूद थे । अतः इनके इस काम ने खुद इनके विरोधियों को अवसर दिया, जो बराबर इनका विरोध करते रहे । अतः पहले दिन से ही दोनों विचारधाराओं के बीच नफ़रत का बीज पड़ गया । अर्थात सर सैयद अहमद ख़ां और उनका अलीगढ़ में स्थापित कॉलेज, जो उनके दृष्टिकोण का हामिल था और दूसरा धार्मिक विचारधारा के उलमा व क्रांतिकारियों का, जो अंग्रेज़ों और उनकी सभ्यता से सख़्त नफ़रत करते थे । मुसलमानों में ये दो तरह की विचारधाराएं पैदा हो गयीं और आज भी किसी तौर पर विद्यमान हैं, यद्यपि दोनों के मध्य सख़्ती में बहुत कमी आयी है ।



Tel. : 0612-2300386
Fax : 0612-2651708

Palika Lodging

FOR COMFORTABLE STAY



FACILITIES

* Moderate Rate.
* 24 Hours Running Hot & Cold Water
* Single, Double & Family Rooms with Attached Bath.
* T.V. & Telephone available in all Rooms.
* Internet & Mobile Recharging Facilities Available.

Sabzibagh, Patna- 800 004

असहयोग आन्दोलन, गांधी जी और मुसलमान

● अब्दुल मुनअम अन-निम्र

अहयोग और सविनय अवज्ञा ये वे नाम हैं, जिनका सीधा संबंध गांधी जी से है । गांधी जी के नेतृत्व में सन् 1921 ई॰ से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति के वर्ष सन् 1947 ई॰ तक देश को अंग्रेज़ों के प्रभुत्व से मुक्त कराने के लिए यह आन्दोलन चलाया गया था । लेकिन जब मैंने उस ज़माने के और उसके पहले के मुस्लिम इतिहास का अध्ययन किया, तो मुझे मालूम हुआ कि मुसलमानों के यहां भी एक ऐसा दृष्टिकोण था, जो गांधी जी के उस दृष्टिकोण के अनुसार कार्यक्षेत्र में उस समय भी नज़र आते हैं, जबकि गांधी जी राजनीति के क्षितिज पर नमूदार भी न हुए थे ।

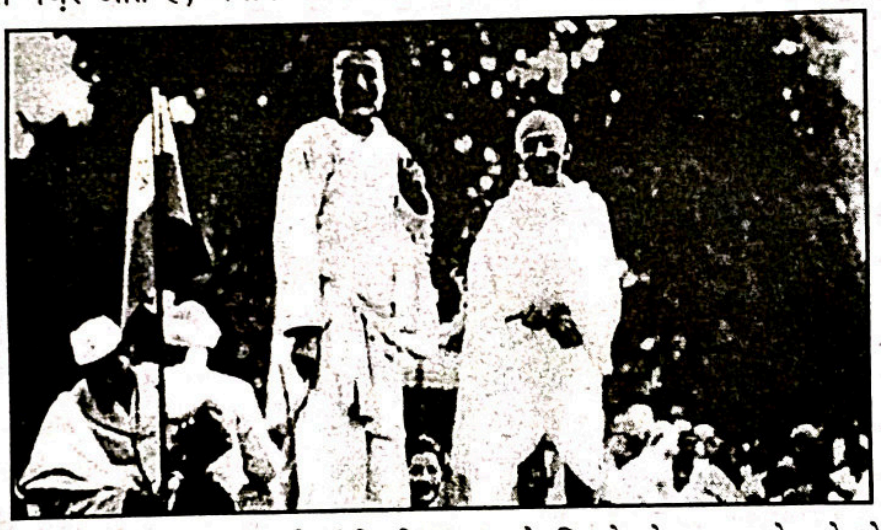

इसी बात ने मुझे इस बात पर उद्यत किया कि मैं दोनों दृष्टिकोणों की जांच-पड़ताल करूं, दोनों की तुलना करूं और फिर बताऊं कि उनके क्या परिणाम निकले ?

इस आन्दोलन की जान और इसका स्पष्ट मार्ग गांधी जी के नज़दीक यह था कि अंग्रेज़ी शासन से तो मुक़ाबला किया जाए, मगर उसके क़ानून के विरोध में मेल-जोल व शान्तिप्रियता का तरीक़ा अपनाया जाए । सरकार के साथ असहयोग तो हो, लेकिन उन सज़ाओं और तकलीफ़ों को धैर्य व सहनशीलता के साथ सहन किया जाए जो इस सिलसिले में सामने आएं, जैसे मारपीट और गिरफ़्तारियां । अत: इस असहयोग आन्दोलन के अग्रसरता में न तो सरकारी स्कूलों व कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त की जाती, न अंग्रेज़ी अदालतों में मुक़दमे ले जाए जाते और न उसकी सेना में शिरकत की जाती और जब सरकार कोई आदेश पारित करती, तो उसका विरोध प्रदर्शन के लिए उठ खड़ा हुआ जाता । यह सब कुछ असहयोग आन्दोलन के अधीन हुआ, जबकि असहयोग और सविनय अवज्ञा के मध्य बड़ा स्पष्ट अन्तर है, जैसा कि उस्ताद फ़तही रिज़वान लिखते हैं–

"असहयोग" सरकार के साथ हर प्रकार के सहयोग से रुक जाना है, जिस के लिए न लोगों को विवश करना है और न सम्मेलन आयोजित करना है और न सरकार के निर्वाचन में भाग लेना है, यह केवल एक नकारात्मक क्रिया है, लेकिन सविनय अवज्ञा (सिविल नाफ़रमानी) एक निरंतर प्रयत्न व कोशिश है और सविनय अवज्ञा करने वालों से उसकी यह मांग है कि वे उन ज़ालिमाना क़ानूनों को तोड़ें, जो सरकार ने बनाए हों । अत: जब सरकार और उसके क़ानून लोगों से यह कहें कि वे एक जुट होकर रास्ते पर न चलें, तो वे इकट्ठे होकर चलें और जब सरकार अस्त्र-शस्त्र लेकर चलने-फिरने से मना करे, तो वे अस्त्र शस्त्र लेकर चलें इत्यादि ।

मगर असहयोग और सविनय अवज्ञा एक-दूसरे से इस बात पर समान हैं कि दोनों ही हिंसा से रिक्त हैं । जो व्यक्ति सरकार के साथ किसी तरह का मामला नहीं करता, वह सरकार के लोगों पर अत्याचार भी नहीं करता और जो व्यक्ति सरकार के क़ानून का क्रियान्वयन नहीं करता, उसे ये लोग दुख भी नहीं देते । दोनों ही स्थितियों में वे सज़ाओं के लिए तैयार रहते हैं और सब्र व सुकून के साथ परेशानियों और दुखों को झेलते रहते हैं ।"

(अल-महात्मा गांधी, पृष्ठ-239)

गांधी जी अहिंसा आन्दोलन, मनोनिग्रह, सहनशीलता और अधिकार प्राप्ति के लिए बल व शक्ति प्रयोग न करने के दृष्टिकोण के आविष्कारक माने जाते हैं और उन्होंने इस दृष्टिकोण अर्थात मनोनिग्रह व सहनशीलता के दृष्टिकोण को सबसे पहले स्वयं अपने आप पर उस व्यक्ति की भांति जारी किया था, जो किसी सूफ़ी, फ़क़ीर और ब्रह्मज्ञानी की तरह अपनी मनोइच्छाओं पर अधिकार प्राप्त करना चाहता हो । ऐसा उन्होंने उस वक़्त किया था, जबकि वे दक्षिण अफ़्रीक़ा में थे ।

गांधी जी अपने इस दृष्टिकोण मनोनिग्रह व सहनशीलता का जो पहला अनुभव अफ़्रीक़ा में किया उसका कारण यह था कि वहां की सरकार ने यह क़ानून पारित किया था कि भारतीय निवासी एक विशेष पहचान चिन्ह लगाए रखें और प्रशासनिक अधिकारियों की अनुमति के बिना एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जाएं । इस क़ानून के पारित होने के बाद गांधी जी ने भारतीयों का एक सम्मेलन किया, जिसमें उन्होंने इस क़ानून का पालन न करने का परामर्श दिया और कहा, कि इस आज्ञोल्लंघन के बदले में जो भी सज़ाएं उन्हें मिलेंगी, उसे वे बिना हिंसा के स्वीकार करेंगे । इस आन्दोलन का नाम उन्होंने 'सत्याग्रह' रखा ।

गांधी जी के इस परामर्श को उनके भारतीय भाइयों ने स्वीकार किया । उन्होंने क़ानून का विरोध किया और इस सिलसिले में उन्हें जिन सज़ाओं से भी दो-चार होना पड़ा, किसी तरह के संघर्ष व टकराव के बिना धैर्य और प्रसन्नता के साथ उन्हें सहन किया । अत: कुछ बातों में उन्हें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई । यहीं से सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू हुआ और इस ओर निगाहें उठीं ।

(सबीलुल हक़ पृष्ठ-17)

पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने एक सम्मेलन में जो महात्मा गांधी जी के 'अहिंसा के संसाधन' नामक दृष्टिकोण पर बहस करने के लिए आयोजित किया गया था, कहा, "गांधी जी ने बुनियादी तौर पर कोई नयी चीज़ पेश नहीं की, जहां तक इस दृष्टिकोण और उसकी बुनियाद का प्रश्न है, तो यह वही है, जिसकी घोषणा पिछली सदियों में प्राचीन भारतीय करते रहे हैं । गांधी जी की विशेषता बस यह है कि उन्होंने केवल उन दृष्टिकोणों को पेश करने पर ही बस नहीं किया, बल्कि कार्यक्षेत्र में उसे कार्यान्वित भी किया ।"

(रिसाला सक़ाफ़तुलहिन्द, मार्च-1953 ई॰)

गांधी जी अस्ल में जैन धर्म के सिद्धान्तों से प्रभावित थे । ईसाइयत के नुमाया और प्राथमिक उक्ति में से एक है कि 'जो तुम्हारे दाहिने गाल पर तमाचा मारे, तुम अपना बायां गाल भी उसके सामने कर दो' और इस्लाम अपनी पवित्र किताब क़ुरआन में यह एलान करता है-"ऐ नबी, भलाई और बुराई समान नहीं है । तुम बुराई को उस नेकी से दूर करो जो बेहतरीन हो । तुम देखोगे कि तुम्हारे साथ जिसका वैर पड़ा हुआ था वह जिगरी दोस्त बन गया है ।"

(क़ुरआन, 41:34)

गांधी जी ने अपने नज़रिये 'अहिंसा' की ओर लोगों को बुलाया और लोगों के सामने उसकी व्याख्या करनी शुरू की तो मुसलमानों ने ही इस आन्दोलन को सबसे पहले क़ुबूल किया । या जैसा कि नेहरू जी ने कहा है-"ख़िलाफ़त कमेटी ने सबसे पहले इस प्रोग्राम को क़ुबूल किया और इस आन्दोलन की शुरुआत के लिए उसने एक अगस्त 1920 ई॰ की तारीख़ निर्धारित की, जबकि कांग्रेस ने उसे अपनाने पर ग़ौर भी नहीं किया । लोगों ने थोड़ा-थोड़ा इस नये तर्क को समझना शुरू कर दिया था । यद्यपि बहुत-से लीडर इसके द्वारा अधिकार प्राप्त करने की संभावना के बारे में चिंतित व आशंकित थे और स्वयं गांधी जी भी बहुत अधिक असमंजस के शिकार थे । गांधी जी को विशेष रूप से उन मुसलमानों पर संदेह था, जिनकी भावनाएं अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रोध से भड़की हुई थीं ।"

(नेहरू, पृष्ठ-129)

कांग्रेस ने सन् 1920 ई॰ में कलकत्ता और फिर नागपुर में आयोजित अपने सम्मेलन में इस नियम को अपनाया, प्रचार किया और इसे अपनाने वालों को संगठित किया । भारत के लोग एक छिपी हुई ज्वालामुखी बने हुए थे । अत: जब उन्हें गांधी जी ने और मुस्लिम लीडर मौलाना आज़ाद, मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना शौकत अली की तरह के लोगों ने हरकत दी, तो यह आन्दोलन क़ाबू से बाहर हो गया, जिसके परिणामस्वरूप भारत के कुछ शहरों के अन्दर उखाड़-पछाड़ की बहुत-सी घटनाएं घटित हुईं । फिर भी यह आन्दोलन अपने मार्ग पर अग्रसर रहा और मुसलमानों ने हिम्मत व हौसले के द्वारा इस आन्दोलन को तेज़ किया ।

28 जुलाई सन् 1921 ई॰ को तय किया गया कि कि ब्रिटिश राज्य के उत्तराधिकारी का बहिष्कार किया जाए, जो इसी वर्ष नवम्बर में भारत आने वाले थे । जैसा कि इससे पहले विदेशी सामानों का बहिष्कार किया गया था । इधर

1921 ई॰ में कराची में आयोजित ख़िलाफ़त कमेटी के सम्मेलन में सेना से मुसलमानों के अलगाव के लिए प्रस्ताव पारित हुआ । अंग्रेज़ इससे भड़क उठे और उन्होंने शैखुल इस्लाम मौलाना हुसैन अहमद मदनी, मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना शौकत अली पर मुक़दमा क़ायम किया और फिर उन्हें जेल में क़ैद कर दिया ।

जब 17 नवम्बर 1921 ई॰ में ब्रिटिश उत्तराधिकारी बम्बई (मुंबई) पहुंचे, तो उन्हें पूर्णतया बहिष्कार का सामना उसी तरह करना पड़ा, जिस तरह क़ौम ने विदेशी सामानों को जलाने के प्रस्ताव को एक बड़े सम्मेलन में पारित किया था । ब्रिटिश उत्तराधिकारी के बहिष्कार की सफलता के बावजूद क़ौम का अमल गांधी जी के इच्छानुसार न रह सका और उसने असंख्य स्थानों पर हिंसा और अनीति से काम लिया, जिससे गांधी जी को गहरा आघात पहुंचा और उन्होंने क़ौम के हिंसा के प्रतिकार में और उसके गुनाहों के प्रायश्चित के रूप में व्रत रखना शुरू किया ।

इस अवसर पर उनको एहसास हुआ कि क़ौम इस आन्दोलन को अपनाने के लिए तैयार नहीं है । अत: उन्होंने इस प्रोग्राम को ही निरस्त कर दिया और क़ौम को इस दुष्टिकोण के फ़ायदे के बारे में समझाने-बुझाने के काम में लग गए । यह समय वह था, जबकि क़ौम में हिंसा पूरे उफान पर थी और ब्रिटिश सरकार भी उनका मुक़ाबला हिंसा से ही कर रही थी । हज़ारों लोगों को गिरफ़्तार करके उसने जेलों में डाल दिया था ।

गांधी जी राजनीति में एक धार्मिक नेता की भावना लेकर दाख़िल हुए थे और उनका इरादा यह था कि भारत को नये सिरे से जागरूक करने के लिए इस अध्यात्मिक भावना से काम लिया जाए और यह एक अच्छा काम है, लेकिन कुछ ही दिनों के बाद उनका यह विचार बदल गया । दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था और वायसराय ने भारत की किसी भी पार्टी से परामर्श किए बिना यह घोषणा कर दिया कि भारत मित्र देशों की पंक्ति में शामिल होगा और हर संभव हद तक मित्र देशों के साथ सहयोग करेगा और अपनी सेनाएं भेजेगा । इस अवसर पर भातीय कांग्रेस पार्टी के लीडरों ने जिनमें गांधी जी भी थे, एक मीटिंग की जिसका ऐजेंडा यह था कि दूसरे विश्व युद्ध के बारे में भारत की नीति क्या हो और वह इस युद्ध में अपनी सेनाओं के साथ सम्मिलित हों या न हों ।

इस विशेषांक के प्रकाशन पर मुबारकबाद

MUKHTAR MEDICOS

(UNANI & AYURVEDIC MEDICINE CENTRE

7/3, Gas Street (Raja Bazar)
Kolkata-700009
Mb. : 9831168315

उस वक़्त के कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और उनके दूसरे बहुत-से लोगों की राय यह थी कि ऐसे समय जब खुद भारत वर्ष स्वतंत्रता की नेमत से वंचित है उसके लिए यह संभव नहीं कि उस युद्ध का समर्थन करे, जिसका दावा मित्र देश कर रहे हैं और इन हालात में कि भारत पर अंग्रेज़ों के अत्याचार हो रहे हैं और अंग्रेज़ भारत वासियों को आज़ादी न देने के अपने वचन पर क़ायम है, तो हम भारतवासियों के लिए उनकी सहायता करना बिल्कुल संभव नहीं, लेकिन अगर वे वादा कर लें कि युद्ध की समाप्ति पर भारत को स्वतंत्र करेंगे, तो फिर भारत उनकी हिमायत व समर्थन में पीछे नहीं हटेगा । अगर यह प्रस्ताव स्वीकार हो तो अंग्रेज़ भारत को स्वतंत्र करने की प्रक्रिया की घोषणा करें और हम युद्ध में शामिल होने और उनकी हिमायत व समर्थन की घोषणा करें ।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद पत्रिका 'सक़ाफ़तुल हिन्द' में प्रकाशित अपने संस्मरण में लिखते हैं कि ''गांधी जी ने इस मसले पर ख़ूब सोच-विचार किया और कांग्रेस की कार्यकारिणी में एक सलाह पेश की, जिसका भाव यह था कि 'भारत पर ज़रूरी है कि वह इस प्रशासनिक संघर्ष से पैदा हुई परिस्थितियों के पेशेनज़र अपने दृष्टिकोण की घोषणा कर दे, गांधी जी कहते हैं कि वे आने वाली जंग में भारत का सम्मिलित न होना सही तरीन दृष्टिकोण है । चाहे परिस्थितियां कुछ भी हों और इस समानता के आधार पर स्वतंत्रता की संभावना ही क्यों न स्पष्ट होती हो ।''

(पत्रिका 'सक़ाफ़तुलहिन्द' दिसम्बर 1958 ई० पृष्ठ-105)

मौलाना आज़ाद आगे फ़रमाते हैं, ''कांग्रेस का अध्यक्ष होने की हैसियत से मेरी यह ज़िम्मेदारी थी कि मैं भारत को लोकतांत्रिक छावनी तक इस शर्त के साथ ले जाऊं कि वह स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगा और इस बात में कि 'लोकतंत्र भारत वासियों के दिल की आवाज़ है' कोई मतभेद नहीं था ।''

''हमारी राह में भारत की गुलामी और गांधी जी के अलावा दूसरा कोई रोड़ा न था, ये इस समस्या को इस नज़र से नहीं देख रहे थे, जिससे हम देख रहे थे । इनके नज़दीक असली समस्या केवल अहिंसा थी न कि देश की स्वतंत्रता थी । मेरा विचार इसके विपरीत था । अत: मैंने ज़ोरदार आवाज़ में दिल्ली में इसका सपष्टीकरण कर दिया था कि कांग्रेस पार्टी कोई नम्र समझौत प्रिय संस्था नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी संस्था है, जिसका उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करना है । मेरा विचार आज भी यही है कि गांधी जी के विचार भारत के हालात से एक मत नहीं थे और न ही वास्तविक घटना का उनसे कोई संबंध था ।''

वे आगे लिखते हैं, ''मैं किसी तरह गांधी जी के विचारों और उनकी राय से सहमत न हो सका, क्योंकि अहिंसा की समस्या मेरे नज़दीक केवल एक राजनीतिक कार्य-प्रणाली की समस्या थी और उसकी गणना धार्मिक आस्था में न थी, जैसा कि गांधी जी समझते थे । मैं समझता था कि भारतवासी जब सारे उपायों और वैकल्पिक सुझावों से आजिज़ आ चुके हैं तो हथियार संभाल लेने में वे बिल्कुल हक़ पर हैं ।

मौलाना अबुल कलाम की राय बहुत स्पष्ट थी, जो राष्ट्रीय समस्याओं से एकमत, उचित और तर्कयुक्त थी, लेकिन फिर भी गांधी जी अपने दृष्टिकोण पर जमे रहे । गांधी जी अपनी राय में अकेले न थे, बल्कि कुछ दूसरे लोगों ने भी उनकी राय का समर्थन किया और कार्यकारिणी में गांधी जी का समर्थन किया, यह वे लोग थे जो उनके पीछे आंख बन्द करके बे समझे-बूझे चलते थे । उन लोगों में भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का नाम सूची में सबसे ऊपर के लोगों में था ।

मौलाना आज़ाद फ़रमाते हैं कि गांधी जी का अपने दृष्टिकोण और उसकी सेवा में अपने आपको फ़ना कर देने की भी भावना इतनी तीव्र हो गयी थी कि उन्होंने एक खुला ख़त ब्रिटिश क़ौम के नाम भेजा, जिसमें उन्होंने इच्छा प्रकट की कि ब्रिटेन हिटलर से अस्त्र-शस्त्र से युद्ध न करे, बल्कि अध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से युद्ध लड़े और केवल इसी पर उन्होंने बस नहीं किया, बल्कि इस सिलसिले में उन्होंने भारत के वायसराय से भी मुलाक़ात करने की इच्छा प्रकट की और मुलाक़ात में इस बात पर ज़ोर डाला कि उनके इस दृष्टिकोण को क़बूल करें और इसे ब्रिटेन की सरकार तक पहुंचाएं ।

मौलाना आज़ाद इस मुलाक़ात का हाल बयान करते हुए आगे लिखते हैं कि गांधी जी ने जो कुछ ब्रिटिश पदाधिकारियों से कहा, जिसका भाव यह था कि ब्रिटिश क़ौम के लिए ज़रूरी है कि वह शस्त्र के उपयोग से परहेज़ करे और हिटलर के मुक़ाबले में केवल आध्यात्मिक शक्ति पर भरोसा करे । अत: इस सलाह से गवर्नर जनरल आश्चर्यचकित

हुआ । यह सलाह उसको अजीब और अप्राकृतिक मालूम हुई, अत: इस बार गांधी जी के साथ वह नियमानुसार व्यवहार न कर सका । अर्थात उसका हमेशा से यह तरीक़ा था कि वह घन्टी बजाकर अपने सचिव को बुलाता था कि वह गांधी जी को उनकी मोटर तक शिष्टाचार पूर्वक पहुंचा दे, लेकिन इस बार न तो उसने घंटी बजाई और न ही उसने अपने सचिव को बुलाया, अत: गांधी जी अकेले उठे और वापस चले आए ।''

('सक़ाफ़तुलहिन्द' जुलाई 1959 ई० पृष्ठ-9,10)

जब गांधी जी से मेरी मुलाक़ात हुई, तो उन्होंने उस मुलाक़ात का विवरण मुझसे बयान किया और अपना आश्चर्य प्रकट किया कि गवर्नर जनरल अपने नियमानुसार शिष्टाचार का बर्ताव भी न कर सका, तो मैंने कहा कि वास्तव में आपकी इस सलाह ने इस हद तक उस पर दहशत तारी कर दी कि उसके दिमाग़ से पारंपरिक शिष्टाचार का विचार ही निकल गया । मेरी इस टीका-निप्पणी पर वे ख़ूब हंसे । ('सक़ाफ़तुलहिन्द' जुलाई 1959 ई०)

एक सांस्कृतिक सम्मेलन जो भारत में गांधी के तरीक़ों पर बहस व तर्क-वितर्क के लिए आयोजित किया गया था, उसमें मौलाना आज़ाद ने गांधी जी के दृष्टिकोण ''अहिंसा और फिर उस पर मज़बूती से जमे रहने का विश्लेषण करते हुए कहा–''गांधी जी का विचार था कि अगर ब्रिटेन स्वयं भी भारत को आज़ादी देने की पेशकश इस शर्त पर करे कि भारत उसके साथ युद्ध में सम्मिलित हो, तब भी वह इस पेशकश को ठुकरा दें, क्योंकि वे कहते थे कि अहिंसा जीवन की अमूल्य निधि है । वे इस विषय पर किसी तरह के भी समझौते के लिए कोई भी तर्कसंगत कारण नहीं पाते थे, चाहे वह भारत की स्वतंत्रता के बारे में ही क्यों न हो । लेकिन इस अवसर पर भारतीय कांग्रेस पार्टी का अध्यक्ष होते हुए भी मैं उनकी विचारधारा से सहमत न हो सका, वावजूद इसके कि वे पूरी एकता और सच्चे नियम व सिद्धांतों के तहत लड़ रहे थे । मगर वह एक बात जो हमें उनके साथ मिलकर कोशिश करने से रोक रही थी, वह भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अस्तित्व था । अगर यह रुकावट ख़त्म हो जाती, तो फिर भारतवासियों के लिए नाज़ियों के हमलों के मुक़ाबले में लोकतांत्रिक शक्तियों की सहायता न करने का कोई तर्कसंगत कारण न था ।''

('सक़ाफ़तुलहिन्द' जुलाई 1959ई०)

इसी से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि गांधी जी अहिंसा में आत्मसात हो चुके थे और उनकी यह इच्छा थी कि पूरा भारतवर्ष अहिंसावादी हो जाए, चाहे इससे हट जाने की क़ीमत उन्हें भारत की स्वतंत्रता के ही रूप में क्यों न मिले । देश की स्वतंत्रता के लिए भी वह इससे विरक्त होने के लिए तैयार न थे ।

गांधी जी के दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि वह जिस तरह अपने सिद्धांतों के पीछे चल रहे थे उस तरह न तो उस ज़माने के साथ चल रहे थे, जिसमें वे अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे और न ही अपने देश की भलाई और ज़रूरतों का ही साथ दे रहे थे ।

गांधी जी के दृष्टिकोण से संबंधित उस्ताद क़दरी क़लउजी के इस विश्लेषण से मुझे आश्चर्य नहीं हुआ, जहां वे लिखते हैं, ''नि:संदेह ज़माना बदल चुका है अत: ज़रूरी है कि लोगों के साथ-साथ भारत के लीडर गांधी जी भी बदलें । गांधी जी ने भारत को जागरूक किया और उसमें राष्ट्रीय व सामूहिक उद्देश्यों और मानवता की चेतना पैदा की । यह गांधी जी की प्रतिज्ञा है, जो बहुत महान और बहुत ही मनोवांछित है, लेकिन किसी भी क़ौम के लिए स्वतंत्रता, स्वाधीनता, और मान-सम्मान का केवल राग अलापना काफ़ी नहीं, बल्कि निरंतर प्रयत्न, त्याग और क़ुरबानी के चरणों से भी गुज़रना होता है । भारत इस चरण को पार करके अपने लीडर से भी आगे बढ़ चुका है । उसमें क्रांति की लहरें फूट पड़ी हैं और अब उसका पानी व्यर्थ ही उसके आगे बांध, बांध रहा है ।

(गांधी जी अबुलहिन्द, पृष्ठ-92,93)

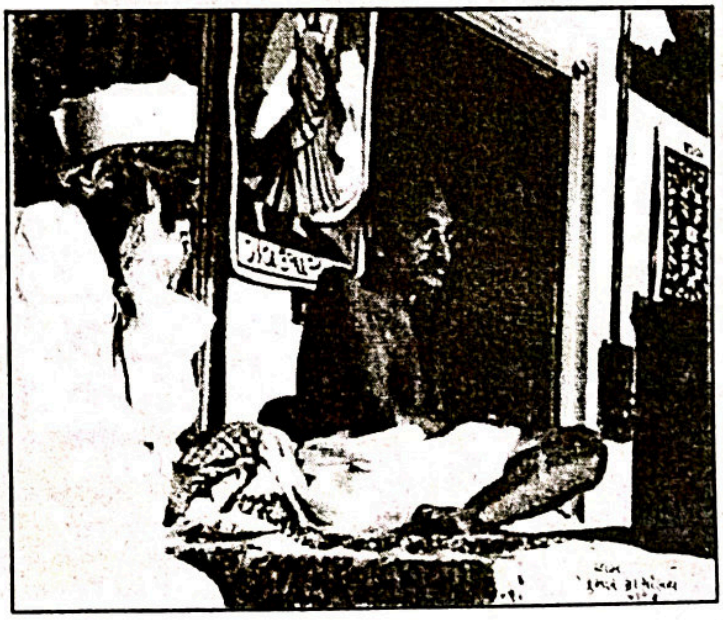

طبقات دوزخ سات ہیں۔ستر۔سعیر۔فطی۔حطمہ۔جحیم۔جہنم اور ہاویہ۔

قادری دواخانہ کی کامیاب ترین یونانی دوائیں

LARGEST UNANI
G.M.P.
CERTIFIED COMPANY

قادری قبض سردرد جی

بدہضمی، بھوک کی کمی، درد جگر، قبض، سینے کی جلن اور پیٹ کے امراض میں بہت ہی مفید ہے

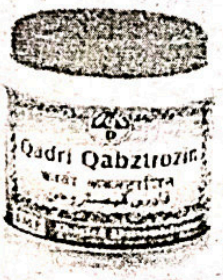

کمر کے درد میں؟



زعفرانی تیل

کسی بھی قسم کے درد چوٹ موچ۔ گٹھیا۔ جلنے کٹنے اور بچوں کی مالش میں بہت ہی مفید ہے۔

گٹھیا کے درد میں؟

پشتک چورن

جریان، کثرت احتلام، سرعت انزال، ضعف باہ اور جملہ امراض مردانہ میں بہت مفید ہے

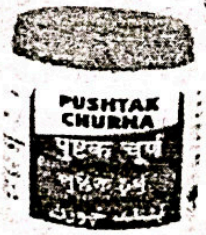

ذیابطیش سی

شوگر کی کامیاب دوا

مثانہ کو قوت پہنچاتی ہے۔ پیشاب کی زیادتی اور ذیابطیش سے ہونے والی کمزوری میں بے حد مفید ہے



زعفرانی مالٹ

ہر عضو کی کمزوری کے لئے

دماغ و اعصاب کے لئے محرک ہے۔ ضعف باہ کو دور کرتی ہے اور اعلیٰ درجہ کا ممسک بھی ہے۔ اس کے متواتر استعمال سے مردانہ قوت اور خواہش میں اضافہ ہوتا ہے۔



مقدار خوراک۔ صبح وشام۔ ۵ گرام دودھ کے ساتھ

کیسر فورٹ

قوت باہ کی طاقت میں اضافہ کے لئے



اگر مردکی قوت میں مردانگی میں کمزوری واقع ہو تو اس کو ضعف باہ کہتے ہیں اور اگر وظیفہ زوجیت ادا کرنے کے بالکل قابل نہ ہو تو اس کو نامردی کہتے ہیں۔ ان کا مکمل کو دور کرنے کے لئے ادارہ قادری دواخانہ نے قیمتی یونانی جڑی بوٹیوں کے مرکب سے ایک ایسی کیسر فورٹ ایجاد کی ہے جو اعصاب کو طاقت دے کر باہ کی طاقت کو بڑھاتی ہے اور کمزوری کو دور کرنے میں بہت ہی مفید ہے۔

مقدار خوراک روزانہ ایک گولی سوتے وقت دودھ کے ہمراہ

Qadri Dawakhana ™
B-18, Nawab Wajid Ali Shah Road, Kol-24
(O) S-152, S. A. Farooquie Road. (Akra Road) Kolkata- 700 018
Ph. No. 2469-3173-2489-3539 (M) 9830009616 / 9674013169
Website : www.qadridawakhana.com
Email : qadridawakhana80@yahoo.co.in

STOCKIST

Qadimi Dawakhana
1397, Ballimaran, Delhi - 6
Ph : 011 23966395

M/s. Shifa Clinic
A-280, Moti Masjid Road,
P.O. Chikamberpur, Shaheed Nagar
Ghaziabad, Ph : 0120 - 2621286

भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्वर्णिम काल

■ अब्दुल मुनअम अन-निम्र

सविनय अवज्ञा आन्दोलन जिसकी घोषणा महात्मा गांधी जी ने की थी और जिस दौर में यह आन्दोलन चला था, वह वास्तव में भारत के स्वतंत्रता के इतिहास का स्वर्णिम काल था, जिसमें भारत ने अपने निवासियों के मध्य धार्मिक मतभेद व राष्ट्रीयता के बावजूद पूर्ण एकता का अनुभव और दर्शन किया, विशेष रूप से हिन्दुओं और मुसलमानों के (जो भारत के सबसे बड़े अल्पसंख्यक थे) मध्य । उस समय देश साम्राज्यवादी ताक़तों के प्रभाव को ख़त्म करने के बिल्कुल क़रीब पहुंच चुका था ।



असहयोग आन्दोलन के बारे में मुसलमान एक ऐसे प्राचीन दृष्टिकोण, जिसे उनके दीन (इस्लाम) से ताक़त मिल रही थी । यही कारण था कि भारतवर्ष के सारे निवासियों की तुलना में वे साम्राज्यवाद विहीन शासन तंत्र की दावत स्वीकार करने में सबसे आगे थे । उसे लागू करने में सबसे अधिक जोशीले और इस राह में कुरबानियां देने में भी सबसे आगे थे । यद्यपि यह भी सच है कि कुछ मुस्लिम लीडर जैसे मिस्टर जिनाह इत्यादि ने अवज्ञा आन्दोलन को पसन्द नहीं किया था और न क़ौम के लिए उसे हितकारी समझा, क्योंकि उनकी दृष्टि में विद्यार्थियों का स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों का बहिष्कार करना लाभकारी न था और न ही आधुनिक यंत्रों का बहिष्कार करके कपड़े की कारीगरी में हथकरघों पर भरोसा करने से कोई परिणाम निकलता था ।

भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक और कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर इस मामले में मिस्टर जिनाह के राय से सहमत थे । उन्हें भी अवज्ञा आन्दोलन और उससे प्राप्त होने वाले संभावित लाभों से मतभेद था । फिर यह भी कि इस बारे में यह राय रखने वाले दो ही नहीं, बल्कि बहुत-से दूसरे लीडर भी इन दोनों की राय से सहमत थे ।

लेकिन इन सारी बातों से इस आन्दोलन पर आमतौर पर कोई प्रभाव न पड़ा, जो सारे भारत में फैल चुका था । यह एक ऐसा आन्दोलन था, जिसके झंडे तले सारे भारतीय जमा हो गये थे । इसमें न दो धर्मों के बीच कोई अन्तर था, और न दो विभिन्न क़ौमों के मध्य । भारत ने इस दौरान प्रेम, मुहब्बत और आपसी सहयोग की जो भावना अपने निवासियों के बीच देखी, उसे न इससे पहले कभी किसी ने देखी थी और न उसके बाद ।

ख़िलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में गांधी जी का मुसलमानों के साथ सद्व्यवहार एक ऐसा जादू था, जिसने उनके आसपास सारे मुसलमानों को इकट्ठा कर दिया । उन्होंने सारी क़ौम को साम्राज्यवाद के विरुद्ध जमा कर दिया

और सब लोग इस भाईचारगी और एकता पर ख़ुश हुए । इस आन्दोलन ने उनके मान-सम्मान को बढ़ाया और उनके उद्देश्य को संप्राप्ति के क़रीब पहुंचा दिया ।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के एक सक्रिय सदस्य, जिन्होंने इस आन्दोलन का अवलोकन किया था और उसमें सम्मिलित भी हुए थे, इस आन्दोलन से पैदा होने वाले प्रेम-मुहब्बत को बड़ी ही दिलचस्पी और प्रसन्नता के साथ वर्णन करते हुए कहते हैं–

मुसलमानों ने एक ऐसे हिन्दू को सुस्वागतम कहा, जो मुसलमानों के इतिहास में पहली बार जामा मस्जिद दिल्ली के मिंबर पर दिखायी दिया और उस मिंबर से उसने सारे लोगों को चाहे मुसलमान हों या हिन्दू संबोधित किया । यह स्वागत उसी तरह किया गया, जिस तरह से हिन्दुओं ने अपने अराधना स्थलों में मुसलमानों का स्वागत किया । यद्यपि ये लोग इससे पहले इस बात को अपने अराधना स्थलों की अपवित्रता का कारण समझते थे, बल्कि हिन्दू-मुस्लिम एकता व मुहब्बत, ऊंचाई के चरम सीमा पर उस समय पहुंच गयी थी, जब ईदुल-अज़हा के अवसर पर हिन्दुओं ने एक गाय को सजा-संवार कर मुसलमानों के हवाले किया कि वे इसकी क़ुरबानी करें, हालांकि सारे हिन्दू गाय को बहुत-ही पवित्रता की दृष्टि से देखते हैं । जहां तक कि अगर यह कहा जाए कि गाय की पवित्रता ही वह अकेली चीज़ है, जिस पर सारे हिन्दू संगठन और संप्रदाय एकमत हैं, तो यह बात वास्तविकता के बिल्कुल अनुसार होगी । हिन्दुओं को ज्ञान था कि ईदुल-अज़हा के अवसर पर मुसलमान इसकी क़ुरबानी करते हैं, यहां तक कि इसका नाम ही मुसलमानों ने 'बक़रीद' रख दिया है अर्थात गाय की ईद कि इसमें उसकी क़ुरबानी दी जाती है । लेकिन स्वयं उन्होंने एक गाय सजा-संवार करके पेश की, ताकि मुसलमान उसकी और उसके सिवा दूसरी और गायों की क़ुरबानी दे सकें । यह इस बात का संकेत था कि वे इससे राज़ी हैं और अपनी एक मुख्य चीज़ से विरक्त हो रहे हैं ।

हिन्दुओं ने ऐसा इसलिए किया, ताकि अपने मुसलमान भाइयों को ख़ुश कर सकें और उनकी भावनाओं का सम्मान कर सकें । यह वास्तविकता एक ऐसी उच्च कोटि की मिसाल थी, जो देश की राह में प्रेम, एकता और सहानुभूति की मांग हुआ करती है ।

निस्संदेह यह ऐसा रोशन कारनामा था, जिसे हिन्दुओं ने पूरा किया और मुसलमान भी सेवा-सत्कार, मान-सम्मान व सद्व्यवहार में उनसे कम न थे । हिन्दुओं के इस कार्य ने मुसलमानों पर बहुत गहरा प्रभाव डाला । मुसलमानों की सख़्ती ख़त्म हो गयी और उनके अन्दर सद्भावना पैदा हो गयी । अत: उन्होंने भी घोषणा कर दिया कि अब हम भारत के हर भाग में गाय की क़ुरबानी नहीं करेंगे, ऐसा उन्होंने अपने हिन्दू भाइयों की भावनाओं के सम्मान में किया और यदा-कदा अगर किसी मुसलमान ने गाय ज़िब्ह की, तो आम मुसलमानों ने उसका बहिष्कार किया और उसकी निंदा की । सक्रिय कार्यकर्ता महोदय ने यह भी वर्णन किया है कि एक मुसलमान ने गाय की क़ुरबानी को फिर से शुरू करना चाहा, तो सारे मुसलमानों ने उन्हें यह धमकी दी कि अगर उन्होंने गाय की क़ुरबानी की, तो उन्हें क़त्ल कर दिया जाएगा ।

मुझे अपने उस दोस्त की बात में कुछ संदेह था और मेरा विचार था कि उन्होंने वर्णित घटना में अतिश्योक्ति से काम लिया है, लेकिन यह क्रांतिकारी घटना मुझे हमेशा याद आती रही और मैं उस एकता के परिणाम के बारे में सोचता रहा, यहां तक कि अंत में मुझे उस्ताद कबीर अब्बास उक़ाद की एक रचना मिली, जिसमें उन्होंने गांधी जी, उनके जीवन, उनके संघर्षों और उनकी शिक्षाओं पर प्रकाश डाला है । मुझे उस किताब में ऐसी चीज़ मिल गयी, जिससे उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है । वे लिखते हैं–

उस वक़्त के मुंबई के गवर्नर लार्ड लाइड ने इसकी गवाही दी है कि सन 1922 ई० में गांधी जी भारत की स्वतंत्रता के बिल्कुल क़रीब पहुंच गये थे, मगर उन्होंने शांतिप्रिय मुक़ाबले के कार्यक्रम को स्थगित करने की घोषणा कर दी ? पं० जवाहर लाल नेहरू जी कहते हैं–

"गिरफ़्तारियां बहुत ज़्यादा हुईं और साम्राज्यवाद असहयोग आन्दोलन ने बहुत उग्र रूप धारण कर लिया, उसकी लहरें बहुत-से उन लोगों को भी अपने साथ बहा ले गयीं, जो इससे पहले उसमें शरीक न थे । लोग अपनी इच्छा से अपने आपको गिरफ़्तार कराने के लिए आगे बढ़े, यहां तक कि अंग्रेज़ी राज के कर्मचारियों ने भी अपने आपको गिरफ़्तार कराया, जो अपने-अपने कार्यालयों से आ रहे थे । वे अपने घरों की ओर जाने के बजाय जेलों की ओर प्रस्थान कर गये ।"

(An Autobiography : Toward Freedom, पृ०-21,
पं० नेहरू की स्वयं लिखित जीवनी)

"दिसम्बर 1921 ई॰ और जनवरी 1922 ई॰ के दो महीनों में असहयोग आन्दोलन में जेल जाने वालों की संख्या का अनुमान तीस हज़ार से अधिक का किया गया है । इसके बावजूद सारे नेताओं, कार्यकर्ताओं और आन्दोलन का प्रचार करने वाले जेलों में बन्द किये जा चुके थे ।" पं॰ नेहरू सविनय अवज्ञा आन्दोलन, तत्कालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य पर और अधिक रोशनी डालते हुए अपनी उक्त पुस्तक में लिख़ते हैं–

"इधर हमारी सहनशीलता और भरोसा बढ़ता जाता था, उधर सरकार में अराजकता व कुव्यवस्था फैल रही थी । उसकी समझ में न आता था कि क्या हो रहा है । ऐसा विदित होता था कि भारत की वह पुरानी दुनिया जिसे वह देखती चली आ रही थी, बदल रही है । इसलिए उसमें सख़्ती की एक नयी भावना पैदा हो गयी थी । उसका आत्म-विश्वास, निडरता और उसकी धाक देखते ही देखते ग़ायब हो रही थी । थोड़ी बहुत सख़्ती से आन्दोलन को और शक्ति प्राप्त हुई थी । अत: शासन तंत्र ने काफ़ी दिनों के टालमटोल के बाद बड़े-बड़े नेताओं पर हाथ डाला, क्योंकि वह डरती थी कि खुदा जाने इसका परिणाम क्या हो । भारतीय सेना विश्वसनीय है या नहीं ? पुलिस आदेश का पालन करेगी या नहीं ? इसी असमंजस्य में वे ग्रस्त थे । भारत के वायसराय लार्ड रीडिंग ने स्वयं दिसम्बर 1921 ई॰ में कहा था कि "शासन तंत्र अजीब उलझन व उधेड़बुन में है ।" (पृ॰ 49)

"उस ज़माने में प्राय: अंग्रेज़ पदाधिकारियों के होशो-हवास उड़ गये थे । उनके मन-मस्तिष्क पर बड़ा दबाव पड़ रहा था । देश में अंग्रेज़ों का विरोध प्रदर्शन और अवज्ञा की भावना बराबर बढ़ रही थी, जो सरकारी वर्गों पर डरावनी और काली-काली घटाओं की भाँति छा गयी थी और चूंकि इसमें सख़्ती का लवलेश न था, इसलिए अधिकारियों को बलात अत्याचार करने का कोई बहाना भी न मिलता था । अंग्रेज़ आमतौर पर इसके क़ायल न थे कि भारतीय वास्तव में अहिंसा के अनुयायी हैं । वह समझते थे कि यह सब धोखा और छल है । किसी गुप्त साज़िश को छिपाने के लिए, एक पर्दा है, जो किसी दिन हट जाएगा और भारत में ज़बरदस्त विद्रोह मच जाएगा ।"

इस तरह ब्रिटिश धाक व दबदबा ख़त्म हो रहा था और अब केवल एक ऐसे सतर्क आक्रमण की आवश्यकता थी जो शासनतंत्र के परखच्चे उड़ा दे, क्योंकि उसकी सुरक्षा केवल हज़ार फ़ौज कर रही थी, फिर या तो पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती या कम से कम स्वतंत्र होने की संभावना ज़्यादा हो जाती, लेकिन इसके बाद क्या हुआ ? पं॰ जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं–

"फ़रवरी 1922 ई॰ के आरंभ में अचानक सारा दृश्य बदल गया । जेलख़ाने में यह सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य और परेशानी हुई कि गांधी जी ने सारी कार्रवाइयां एक दम से रोक दी और असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया । अख़बारों में हमने यह भी पढ़ा कि "चौरा-चौरी" की घटना के आधार पर उन्होंने यह क़दम उठाया, हमें स्वतंत्रता आन्दोलन के स्थगित हो जाने की ख़बर सुनकर अच्छा नहीं लगा, क्योंकि इस वक़्त हमारी ताक़त व शक्ति बढ़ी हुई थी और हम हर मोर्चे पर आगे बढ़ रहे थे, लेकिन जेलख़ाने के अन्दर हमारी निराशा और आवेश से क्या परिणाम निकल सकता था, अत: असहयोग आन्दोलन ख़त्म हो गया और साम्राज्यवाद विहीन असहयोग आन्दोलन की कली खिलने से पहले मुरझा गयी । महीनों की भागदौड़ और परेशानी के बाद ब्रिटिश सरकार ने भी राहत की सांस ली । अब उसे पहली बार अवसर मिला कि चरणबद्ध तरीक़े से इस पर कार्यवाही करे । अंत: कुछ सप्ताह के अन्दर-अन्दर उसने गांधी जी को गिरफ़्तार करके लंबी अवधि के लिए जेल में डाल दिया ।"

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर देने के निर्णय की पं॰ जवाहर लाल नेहरू आलोचना करते हुए अपनी नाराज़गी अपनी उक्त पुस्तक में 'अहिंसा या तलवार' शीर्षकान्तर्गत लिखते हैं–

"असहयोग आन्दोलन का अचानक स्थगित हो जाना, संभवत: गांधी जी के अतिरिक्त सारे वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं को बुरा लगा । मेरे पिता भी जो उस वक़्त जेल में ही थे, इससे बहुत अप्रसन्न हुए । नवजवान वर्ग स्वाभाविक रूप से अधिक उत्तेजित हुआ, क्योंकि हमारी आशाओं के क़िले को इस स्थगन ने अचानक धराशाही कर दिया । ज़ाहिर है कि इस कार्य की यही प्रतिक्रिया होनी थी । स्थगन से अधिक हम उन कारणों से जो स्थगन के पक्ष में पेश किये गये और उन परिणामों से जो उनसे निकलते थे, घबरा गये ।"
(पृ॰ 57)

इस तरह पं॰ नेहरू जी असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर देने की गांधी जी के प्रस्ताव पर तल्ख़, गर्म, लेकिन नपी-तुली आलोचना करते हैं । यह प्रश्न बिल्कुल सच है कि आख़िर वह कौन-सी चीज़ है, जो भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए हानिकारक हो सकती थी, जबकि ज़ालिम व अत्याचारी अंग्रेज़ों को एक संगठन ने क़त्ल किया था ? फिर उन अत्याचारियों का क़त्ल होना क्यों हमारी नींदें हराम कर सकता है ? और हम उन सैकड़ों भारतवासियों को क्यों भूल जाते हैं, जो अंग्रेज़ों के भारत में क़दम रखने के समय से उनके साम्राज्यवादी उद्देश्यों की भेंट चढ़ गये ?

यह हम कैसे भूल सकते हैं कि पूरी की पूरी क़ौम को कठोर यातना में ग्रस्त किया गया, उसका रक्त चूसा गया, उसकी स्वतंत्रता छीनी गयी और मानवता ख़त्म कर दी गयी । फिर यह अजीब बात है कि उन ज़ालिम अंग्रेज़ सिपाहियों का एक दूर-दराज़ गांव में कुछ पीड़ित व शोषित वर्ग के लोगों के हाथों क़त्ल हो जाना हमारी रूहों को व्याकुल व बेचैन कर देता है, जिन्होंने केवल अपने प्राणों की रक्षा के लिए यह कर्म किया था । यह बात और भी अजीब है कि हम आन्दोलन को उस वक़्त स्थगित कर देते हैं, जबकि वह अपने उत्थान पर पहुंच चुका था । हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एकता और भाईचारगी की छत्रछाया में अपना फल प्राप्त करने के क़रीब पहुंच चुका था, जिसकी गवाही स्वयं अंग्रेज़ों ने दी है और मुंबई के गवर्नर की गवाही हम पेश कर चुके हैं ।

मुसलमान इस आन्दोलन में इस तरह आगे-आगे थे, जैसे इस आन्दोलन से केवल उन्हीं को लाभ हो रहा हो और वास्तव में मुसलमान अंग्रेज़ों की वजह से क्षय रोग की बीमारी में ग्रस्त हो गये थे, इसलिए कि अंग्रेज़ों ने उन्हीं के हाथों से शासन छीना था । मुसलमानों ने भारत और भारत से बाहर इस्लामी देशों में अपनी नीतियों के लिए अछूती और बहुमूल्य क़ुरबानियां दीं और उस लम्हे की प्रतीक्षा में थे कि कब दुश्मन पर सफलता प्राप्त कर लें और उसे अपने देश से बाहर निकाल दें ।

यह भी अजीब बात है कि गांधी जी को उस वक़्त तो क्रोध आता है, जबकि एक गांव के पीड़ित और शोषित निवासी कुछ अत्याचारी अंग्रेज़ों की हत्या कर देते हैं, लेकिन भारतीय सेना के कश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ़ पर आक्रमण करने से उन्हें आमतौर पर क्रोध नहीं आता और न देश विभाजन के वक़्त उन क्षेत्रों में मुसलमानों के सामूहिक हत्या पर वे ख़फ़ा होते नज़र आते हैं ।

एक समकालीन भारतीय ने, जो इस आन्दोलन में शामिल थे, इस विचित्र प्रस्ताव का स्पष्टीकरण करते हुए मुझसे फ़रमाया–

''गांधी जी ने देखा कि आन्दोलन अपनी कोशिशों का प्रतिफल प्राप्त कर लेने के बिल्कुल क़रीब पहुंच गया है और इस आन्दोलन में मुसलमान ही नुमाया और सर्वोपरि हैं और वही दूसरे लोगों से पहले इसके लिए दावत देने, काम करने और कोशिशों में लगे हुए हैं, अगर आन्दोलन इस वक़्त सफल हो गया, तो मुसलमानों को यह सम्मान प्राप्त होगा और वही लोग फल प्राप्त करने के वक़्त प्रथम पंक्ति में नज़र आएंगे और इस तरह उनका मान-सम्मान व प्रतिष्ठा उन्हें वापस मिल जाएगी । यह एक ऐसी बात थी, जिसे कोई भी हिन्दू पसन्द नहीं करता था, चाहे वह गांधी जी ही क्यों न हों और यह कुछ दूर भी नहीं, इसलिए कि गांधी जी ''अपने अच्छे गुणों के बावजूद अपने धर्म के बारे में बहुत कट्टर थे और दोनों प्रतिद्वंद्वी संगठनों के मध्य समझौते में बाधक होते रहे ।''

(''मुशाहिदात फ़िल हिन्द'', सय्यदा अमीना सईद)

दूसरे शब्दों में मुसलमानों के हाथ में भारत की सत्ता व नेतृत्व के मुक़ाबले में गांधी जी इसे अच्छा समझते थे कि भारत की सत्ता अंग्रेज़ों के अधीन रखी जाए । अगर हम इस भारतीय समकालीन कार्यकर्ता की राय के अनुसार गवाह व मिसालें तलाश करेंगे तो हमको मालूम होगा कि गांधी जी ने सन 1920 ई॰ तक ब्रिटेन के साथ घनिष्ठ मित्रता रखी और उस वक़्त भी जब उन्होंने असहयोग आन्दोलन की घोषणा की । इस मित्रता को उन्होंने बिल्कुल ख़त्म नहीं किया और न ही उन्होंने पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटेन से अलग होने के लिए आगे क़दम बढ़ाया । सन 1930 ई॰ तक उन्होंने सविस्तार या सांकेतिक रूप से एक शब्द भी ऐसा नहीं कहा है, जिससे यह समझा जा सकता हो वे पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होना चाहते हैं, बल्कि ख़ुद कांग्रेस के प्लेटफार्म से भी और उसके बाहर भी वह इसके विरोधी ही नज़र आते थे, यहां तक कि परिस्थितियों ने और पं॰ जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में नवयुवकों के संगठन ने 'होम रूल' के बजाय 'पूर्ण स्वतंत्रता की मांग' का समर्थन करने पर विवश कर दिया ।

आज़ादी के दीवाने
मौलवी बरकतुल्लाह

● संपादन प्रभाग

अमेरिका के उत्तरी कैलीफ़ोर्निया स्थित सॉन फ़्रान्सिस्को नगर में 65 वर्ष की उम्र में मौलवी बरकतुल्लाह का देहान्त हुआ । उनका पूरा नाम मौलवी मुहम्मद बरकतुल्लाह है । वे सन् 1915-16 में काबुल स्थित भारतीय अस्थायी सरकार के प्रधानमंत्री भी रहे, जो राजा महेन्द्र प्रताप के प्रयासों का फल था । राजा महेन्द्र प्रताप इस सरकार के राष्ट्रपति थे । इन दोनों को हिन्दुस्तान का पहला प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति बनने का गौरव प्राप्त है ।

मौलवी मुहम्मद बरकतुल्लाह प्रारंभ से ही देशप्रेमी और क्रांतिकारी विचारों के व्यक्ति थे । स्वाभाविक था कि उन्हें उस सरकार का प्रधानमंत्री बनाया गया, जो भारत को अंग्रेज़-हुकूमत की गुलामी से छुटकारा पाने के लिए बनी थी । उस समय काबुल सरकार अमीर हबीबुल्लाह ख़ां की थी । ज़ाहिर है कि अमीर हबीबुल्लाह ख़ां का उस अस्थायी सरकार को समर्थन प्राप्त था ।


Prof.Maulana Barkatullah

सन् 1914 में प्रारंभ हुए यूरोपीय महायुद्ध की समाप्ति पर काबुल स्थित अस्थायी भारत सरकार भंग हो गई और मौलवी मुहम्मद बरकतुल्लाह यूरोप चले गए । वहां उन्होंने लगातार दस वर्ष तक भारतीय स्वतंत्रता का प्रचार किया ।

सन् 1924 में मौलवी बरकतुल्लाह ने सोवियत शासन प्रणाली का बारीकी से अध्ययन किया और फिर बर्लिन चले गए, बर्लिन से ही उन्होंने 'अल-इस्लाह' नाम से उर्दू भाषा में पत्र निकाला, जिसमें भारतीय स्वतंत्रता पर आधारित सामग्री होती थी । बाद में धनाभाव के कारण इसे बन्द कर देना पड़ा ।

फ़रवरी 1927 में मौलवी मुहम्मद बरकतुल्लाह ने ब्रसेल्स में होने वाली साम्राज्यवाद विरोधी परिषद में ग़दर पार्टी के प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया था । भारत से राष्ट्रीय कांग्रेस की तरफ़ से उक्त परिषद में पं॰ जवाहरलाल नेहरू भेजे गए थे । इस परिषद के जोशीले और रोमांचकारी संस्मरण पं॰ नेहरू ने अपनी रचना 'मेरी कहानी' में लिखे हैं । नेहरू लिखते हैं– उक्त परिषद में राष्ट्रीय गुप्तचरों की भरमार थी और कुछ गुप्तचर तो किसी देश या संस्था के प्रतिनिधि की हैसियत से परिषद में शामिल हुए थे । जावा, हिंदचीन, फ़िलिस्तीन, सीरिया, मिस्र, उत्तरी अफ़्रीक़ा और अरब देशों के प्रतिनिधि भी उक्त परिषद में आए थे ।

स्पष्ट है कि उक्त परिषद को साम्राज्यवादी सरकारों ने भी महत्वपूर्ण माना था । इस अवसर पर मौलवी मुहम्मद बरकतुल्लाह ने कहा था : "संसार की दबी हुई, सताई गई और गुलाम क़ौमों की आज़ादी के लिए मैं अपनी और पार्टी की सेवाएं अर्पित करता हूं ।"

मौलवी बरकतुल्लाह के भाषण का प्रतिनिधियों पर गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा था । यह बात उनके अन्तर्राष्ट्रीय महत्व को उजागर करती है, क्योंकि ग़दर पार्टी के अधिकृत प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने उक्त घोषणा की थी ।

उक्त कॉन्फ्रेंस के पश्चात नवम्बर 1927 से सॉनफ़्रांसिस्को में ग़दर पार्टी का सम्मेलन हुआ था । मौलवी बरकतुल्लाह को उक्त सम्मेलन में आमंत्रित किया गया । उस समय मौलवी बरकतुल्लाह का स्वास्थ्य ख़राब था । वे बीमार थे

और वहां जाने की उनका स्वास्थ्य उन्हें इज़ाज़त नहीं दे रहा था, फिर भी वह वहां गए । वह ग़दर पार्टी के प्रारंभिक सदस्यों में से थे, और बड़े सम्मान से देखे जाते थे । वहां उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत की गुलामी से भारत की मुक्ति के लिए मार्मिक अपील की थी और तब तक संघर्ष जारी रखने को कहा था, जब तक भारत आज़ाद न हो जाए । ग़दर पार्टी के उक्त सम्मेलन में भाग लेने के बाद वह सख़्त बीमार पड़ गए । उस समय उनकी आयु 65 साल की थी । भूख, प्यास, भाग-दौड़ और ज़ीवन व्यापी संघर्ष ने उन्हें जर्जर कर दिया था । 65 में से 30 वर्ष उनके एक देश से दूसरे देश में भागते-भागते गुज़रे थे । फ़िर सद्भावनाओं का अभाव, लक्ष्य का प्राप्त न होना, यानी भारत को अंग्रेज़ दासता से मुक्त न करा पाना आदि बातों ने उन्हें तोड़ दिया था । अंततः 5 जनवरी, 1928 को वह दुनिया से सिधार गए ।

भारत की आज़ादी की लड़ाई से विमुख करने के लिए कोई लालच और पद उन्हें झुका न सका । एक सेंटीमीटर भी पीछे न हटा सका, जबकि उनके आख़िरी दिन भारी ग़रीबी में कटे । छोटा-सा कमरा, सुविधाओं का अभाव, इलाज के लिए डॉक्टर और दवा तक के लिए पैसों का अभाव था । मरते समय अपने सहयोगियों, साथियों से मौलवी बरकतुल्लाह ने कहा था–"तमाम ज़िन्दगी ईमानदारी के साथ अपने वतन की आज़ादी के लिए मैं कोशिश करता रहा । मेरी यह ज़बरदस्त ख़ुश-क़िस्मती है कि मेरी यह नाचीज़ ज़िन्दगी मेरे प्यारे वतन के काम आई । ...मुझे इस बात की तसल्ली है कि मेरे बाद मेरे मुल्क की मदद करने के लिए ऐसे लाखों आदमी आगे बढ़ रहे होंगे, जो सच्चे हैं, बहादुर और जांबाज़ हैं । मैं इत्मीनान के साथ अपने मुल्क की क़िस्मत उनके हाथों में सौंप कर जा रहा हूं ।"

इस तरह भारत की आज़ादी का दीवाना, मौलवी बरकतुल्लाह सॉनफ़्रांसिस्को में सिसकते हुए विदा हुआ । उनकी मृत्यु के समाचार से सारे क्रांतिकारी शोकातुर हो गए थे और वे ब्रिटिश जासूस ख़ामोश, जो रात-दिन छाया की तरह उनके साथ रहते थे । हिन्दुस्तान एसोसियेशन सेन्ट्रल यूरोप की ओर से मौलवी बरकतुल्लाह के निधन पर एक शोक-सभा का आयोजन किया गया था, जिसमें तुर्की, ईरानी, अफ़ग़ानी और रूसी, जर्मनी आदि के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था । इन सब ने उन्हें भारत का महान क्रांतिकारी बताया था और उनकी मौत को भारत की भारी क्षति भी ।

ईरानी प्रतिनिधि ने कहा था–"बरकतुल्लाह की मौत हो गई है लेकिन उनकी आज़ादी की भावना अमर है । वह हमेशा अमर रहेगी । सभी क्रांतिकारी अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं । कोई भी क्रांति एक देश या क्षेत्र तक सीमित नहीं रहती, उसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय होता है और वह तमाम देशों को प्रभावित करती है, इसलिए किसी भी देश के क्रांतिकारी शहीद को सारी दुनिया के आज़ाद पसन्द लोग अपना शहीद मानते हैं ।"

...ये शहीद आज़ादी के उस राजमार्ग का निर्माण करते हैं, जिस पर देर तक दुनिया की सभी क़ौमों को चलना है । अगर ये क्रांतिकारी न होते तो दुनिया एक अंधेरी कोठरी बन जाती । सोवियत प्रतिनिधि ने कहा था–भारत के स्वतंत्रता संग्राम के साथ सोवियत की पूरी सहानुभूति है । आज़ादी की लड़ाई में काम आने वाले हर शहीद की हम इज़्ज़त करते हैं । सोवियत देश के प्रतिनिधि की हैसियत से मैं मौलवी बरकतुल्लाह की मृत्यु पर अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि पेश करता हूं ।

इस तरह विदेशी प्रतिनिधियों ने मौलवी मुहम्मद बरकतुल्लाह के सम्मान में अपने उद्गार प्रकट किए थे । पं॰ जवाहरलाल नेहरू ने ब्रसेल्स में उनसे हुई मुलाक़ात का बड़ा रोचक तथा सम्मानजनक वर्णन किया है । अपनी पुस्तक–मेरी कहानी–में ।

"ख़ुदा उस आदमी पर रहम फ़रमाएगा, जो ख़रीदने-बेचने और तक़ाज़ा करने में नर्मी और ख़ुशअख़्लाक़ी से काम लेता है।"

(हदीस)

A Well Wisher

Kolkata

पत्रकारिता के मैदान के एक महान योद्धा

■ सलमान फ़ैसल

मौलाना ज़फ़र अली ख़ां (17 जनवरी 1824 से 27 दिसम्बर 1956) का व्यक्तित्व इतिहास के ऐसे दौर से ताल्लुक़ रखता है जो विश्व स्तर पर युद्ध, अशान्ति, बदअम्नी, जुल्म व अत्याचार का, पूंजीवाद और साम्यवाद का टकराव, सरकारों का उलट-फेर, और आज़ादी के संघर्ष आदि के लिए जाना जाता है। विशेषकर भारत गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ था, और जुल्म, अत्याचार और परेशानियों से दो-चार था । इसी आज़माइश की घड़ी में गुलामी की ज़ंजीरों में क़ैद भारतीय नागरिक अपने तन-मन-धन और क़लम की ताक़त से स्वतंत्रता संग्राम में व्यस्त थे और गुलामी के अंधेरों को मिटाने के लिए अपने हिस्से के चिराग़ जलाने की कोशिश में लगे हुए थे ।



बीसवीं शताब्दी का शुरुआती 50 वर्ष आज़ादी की लड़ाई के नाम है । इस दौर में जहां राजनीतिज्ञ, और देश का नेतृत्व करने वाले लोग अपने-अपने तौर पर अंग्रेज़ों के जुल्म व अत्याचार के विरुद्ध उनसे टक्कर ले रहे थे, वहीं उस दौर के कवि एवं लेखक अपनी शायरी और लेखनियों से इस युद्ध में शामिल थे । जिस तरह शायरी और कहानियों के माध्यम से जन-भावनाओं को आज़ादी के लिए जागृत करने की कोशिशें आम थीं, वहीं पत्रकारिता भी स्वतंत्रता संग्राम में अपने क़लमी हथियारों से लैस, मुस्तैद और चौकस नज़र आती थी । उस दौर में पत्रकारिता के मैदान में तीन योद्धा सबसे आगे नज़र आते थे । मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, मुहम्मद अली जौहर और मौलाना जफ़र अली ख़ान ।

मौलाना ज़फ़र अली ख़ान की पत्रकारिता "ज़मीनदार" अख़बार में दिखाई देती है । लेकिन इससे पहले वे अपनी पत्रकारिता की धाक "अफ़साना" और "दकन रिव्यू" में बिठा चुके थे । जिस ज़माने में मौलाना जफ़र अली ख़ान ने पत्रकारिता के मैदान में क़दम रखा उस समय कई नामवर अख़बारात और पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही थीं । उन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के गहन अध्ययन से ज़फ़र अली ख़ान ने पत्रकारिता के उसूल सीखे और फिर उन्हीं उसूलों को सामने रखकर पत्रकारिता के मैदान में आगे बढ़े । उस समय के पत्र-पत्रिकाओं में शेख़ अब्दुल क़ादिर की 'मख़ज़न', हलीम शरर की 'दिल गुदाज़', हसरत मोहानी की , 'उर्दू-ए-मुअल्ला', मुहम्मद अली जौहर की 'हमदर्द', मुंशी दया नारायण निगम की 'ज़माना' और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की 'अल-हिलाल'. और 'अल-बलाग़' आदि उल्लेखनीय है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में पत्रकारिता के बाग़ियाना तेवर, और अभिव्यंक्ति की आज़ादी का एक नया अध्याय शुरू हुआ और मौलाना ज़फ़र अली ख़ान, मुहम्मद अली जौहर और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जैसे बेबाक और निडर पत्रकारों ने भारतीय नागरिकों विशेषकर आज़ादी के मतवालों के दिलों को गर्माने और ज़ेहनों को झिकझोड़ने का काम किया । मौलाना ज़फ़र अली ख़ान की पत्रकारिता 'अफ़साना' के प्रकाशन के साथ शुरू हुई । उस समय आप हैदराबाद में रहते थे । 'अफ़साना' एक मासिक पत्रिका थी, जो 1903 में प्रकाशित होनी शुरू हुई । इस पत्रिका में नैतिक कहानियों के अलावा अंग्रेज़ी नाविलों के अनुवाद प्रकाशित होते थे । जार्ज डब्ल्यू एम॰ रिनॉल्ड का मशहूर नाविल Mystries of London "फ़साना-ए-लन्दन" के नाम से इसी पत्रिका में प्रकाशित हुआ ।

1904 में मौलाना ज़फ़र अली ख़ान ने 'दकन रिव्यू' का प्रकाशन शुरू किया और 'अफ़साना' भी इसमें विलीन हो गया । अब्दुस्सलाम खुर्शीद ने अपनी पुस्तक 'कारवाने सहाफ़त में लिखा है कि–

"1904 में उन्होंने (मौलाना ज़फ़र अली ख़ान ने) 'दकन रिव्यू' के नाम से एक इल्मी और साहित्यिक मासिक पत्रिका निकाली जिसने बहुत जल्द भारत उपमहाद्वीप के

नामवर अदीबों और शायरों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया । नवाब नसीर हुसैन ख़ान, शिबली नोमानी, अकबर इलाहाबादी, मौलवी अब्दुल हक़, रज़ा अली वहशत, सैयद अली हैदर तबनबाई, श्रीकृष्ण प्रसाद शाद, मिर्ज़ा मुहम्मद हादी अज़ीज़, सैयद फ़ज़ले हक़ आज़ाद अज़ीमाबादी, काज़िम हुसैन शोकत, नवाब अज़ीज़, सैयद काज़िम हुसैन शेफ़्ता, नवाब अज़ीज़ जंग बहादुर, मौलवी मंज़ूर हसन, और मौलवी माशूक़ हुसैन ख़ान शामिल थे ।''

(कारवाने सहाफ़त, कराची, 1889, पृष्ठ-105)

''ज़मीनदार'' अख़बार का भी अपना एक इतिहास है । इस अख़बार ने आज़ादी की लड़ाई में बहुत ही अहम भूमिका निभायी है । मौलाना ज़फ़र अली ख़ान के पिता मौलवी सिराजुद्दीन साहब ने 1903 में इसे लाहौर से जारी किया था । मौलवी सिराजुद्दीन साहब ख़ुद एक ज़मींदार थे । इसलिए सबसे पहले उन्होंने पंजाबी ज़मींदारों में जागृति पैदा करने की कोशिश की। इस अख़बार के मुख पृष्ठ पर एक शेर होता था ।

''नाम को तो हूं ज़मींदार और अगर सोचो ज़रा !
क़ौम का हाजतरवा हूं क़ौम का मुश्किल कुशा !!

1904 में मौलवी सिराजुद्दीन साहब की मृत्यु के बाद मौलाना ज़फ़र अली ख़ान ने इसके संपादन की ज़िम्मेदारी संभाल ली थी । शीघ्र ही यह बहुत ही लोकप्रिय हो गया और 15 अक्टूबर 1917 को साप्ताहिक से दैनिक हो गया । जल्द ही 'ज़मीनदार' का सर्कूलेशन बढ़कर बीस हज़ार तक पहुंच गया । इस अख़बार की लोकप्रियता का हाल यह था कि लोग दो पैसे में अख़बार ख़रीदते थे और एक आने में पढ़वाकर सुनते थे । इस लोकप्रियता को देखते हुए सरकार ने पाबन्दियां लगानी शुरू कर दीं । कभी प्रेस ज़ब्त हुआ तो कभी दस-दस हज़ार की ज़मानतें मांगी गयीं, लेकिन मौलना के हौसले और लोगों के सहयोग से ''ज़मीनदार लगातार प्रकाशित होता रहा ।

डॉ॰ मिस्कीन अली हिजाज़ी लिखते हैं– शहरों के बाज़ारों और गांव के चौपालों में ''ज़मींदार'' की ही चर्चा होती । मौलाना मुहम्मद अली जौहर ने भी कामरेड (22 मार्च 1913) में लिखा था कि यह पर्चा इसलिए इतना लोकप्रिय हुआ कि उसका संपादन मौलाना ज़फ़र अली ख़ान ने किया जो बहुत ही क़ाबिल हैं । अलीगढ़ का ग्रेज्यूएट है । नज़्म व नस्क़ का तजुर्बा रखता है । आधुनिक सभ्यता, संस्कृति एवं राजनीति से अवगत है । अंग्रेज़ी की अच्छी सलाहियत है । 'ज़मींदार' के मुक़ाबले में दूसरे अख़बार फीके और बेमज़ा होते हैं । (मुस्लिम सहाफ़त की मुख़्तसर तारीख़, 1989, पृष्ठ-36)

मौलाना ज़फ़र अली ख़ान इंगलैंड में प्रेस एक्ट के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द करने के बाद वतन लौटे तो उन्हें करम आबाद में नज़रबन्द कर दिया गया ।

इनायतुल्लाह नसीम ने आपके बारे में लिखा है– निस्संदेह अबुल कलाम ने देश के बुद्धिजीवियों और पढ़े-लिखे लोगों को सम्बोधित किया, मगर क़ौम की बेदारी के लिए जिस जज़्बे की ज़रूरत है वह केवल 'ज़मींदार' की तहरीरों ने पैदा किया । उन्होंने सवालिया अन्दाज़ में पूछा है कि ज़फ़र अली ख़ान का अन्दाज़ यदि जोशीला और ख़तीबाना न होता तो क्या फ़िरंगी हुकूमत के ख़िलाफ़ अवाम में बेदारी मुम्किन थी ।

मौलाना ज़फ़र अली ख़ान के एक सम्पादकीय का कुछ हिस्सा यहां पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है–

''हयाते मिल्ली का अस्ली नुमाइन्दा वह मैला-सा तहमद बांधने वाला दहक़ान है जिसे न कड़कड़ाते जाड़े में चैन है और न झुलसाने वाली लूओं (गर्म हवाओं) में आराम । मेंह बरसे, ओले पड़ें, आंधी आए, झक्कड़ चलें, उसे अपने काम से काम है । वह अपना ख़ून-पसीना एक करता है और सल्तनत का ख़ज़ाना भरता है । वह अगर न हो तो न ये लीगें हों और न ये कांग्रेस, न ये महल हों, न ये मीनार । दौलत जो दीन के बाद ख़ुदा की सबसे बड़ी देन है उसी के एक मायदा-ए-फ़ैज़ का एक रेज़ा है । जिसे चुनने के लिए बादशाह व अमीर, आलिम व फ़ाज़िल, मुफ़्ती व फ़क़ीर, दौड़े पड़ते हैं ।

वक़्त आ गया है कि तमाम शकूक व शुब्हात जो हाकिम व महकूम को एक दूसरे से जुदा किए हुए हैं, उठ जाएं । वक़्त आ गया है कि एक नया अह्दे पैमान, राई व रआया के गहरे ताल्लुक़ात की तजदीद करे जिससे इस मुल्क की क़ौमियत का बिखरा हुआ शीराज़ा बन्ध जाए ।

यह वक़्त हमें अपनी आंखों से नज़र आ रहा है। यह अज़ीमुश्शान इंक़िलाबात जिनसे हिन्दुस्तान में एक नयी ज़िन्दगी पैदा होने वाली है । उनका आना ऐसा ही है जैसा अपनी साअते मुक़र्ररा (निचित समय) पर सूरज का निकलना । (कारवाने सहाफ़त, पृष्ठ-120,121)

1857 में विदिशा की भूमिका

क्रांतिकारी फ़ाज़िल मुहम्मद ख़ां और आदिल मुहम्मद ख़ां

● विपिन कुमार त्रिपाठी

1857 के महान विद्रोह के समय वर्तमान विदिशा ज़िला कई हिस्सों में बंटा था । विदिशा सिंधिया के अधीन था, सिरोंज टोंक के नवाब वज़ीर-उद-दौला के अधीन कुरवाई नवाब मुज़फ़्फ़र ख़ां के अधीन तथा बासौदा व पठारी नवाब हैदर मुहम्मद ख़ां के अधीन थे ।

विद्रोह का सूत्रपात अंबापानी के जागीरदार फ़ाज़िल मुहम्मद ख़ां और आदिल मुहम्मद ख़ां ने किया । अगस्त 1857 में सीहोर से विद्रोह की शुरुआत कर 28 सितम्बर को 300 साथियों के साथ वे चन्द्रपुर गावं पहुंचे । वहां पठारी के नवाब के आदमियों से मुठभेड़ के बाद वे पठारी पहुंचे । वहां फ़ाज़िल ख़ां ने एक थाना क़ायम किया और नवाब को गिरफ़्तार कर लिया । कुछ दिन बाद नवाब ने फिर पठारी पर अधिकार कर लिया, अलबत्ता नवम्बर 1857 में क्षेत्र में विद्रोहियों का वर्चस्व रहा । दिसम्बर 1857 में ह्यूरोज़ ने विद्रोह को दबाने की कमान संभाली । 15 जनवरी 1858 को सीहोर में 140 विद्रोहियों को मृत्युदंड दिया। 28 जनवरी को राहतगढ़ की घेराबंदी कर फ़ाज़िल मुहम्मद ख़ां को गिरफ़्तार कर क़िले के फाटक पर फांसी दे दी गई ।

आदिल मुहम्मद ख़ां तात्या टोपे से मिले और एक अप्रैल 1958 को रानी लक्ष्मीबाई की मदद के लिए झांसी पहुंचे । अंग्रेज़ सेना पर भीषण गोलाबारी कर उन्होंने ह्यूरोज़ को संकट में डाल दिया । किन्तु बाद में तात्या टोपे को पीछे लौटने का आदेश देना पड़ा। विद्रोही अलग-अलग इलाकों में बिखर गये । आगरा-बरखड़ा के ठाकुर छत्रपाल ने विदिशा से कम्पनी सरकार को उखाड़ फेंकने को प्रेरक पत्र लिखे। सितम्बर 1858 में आदिल मुहम्मद ख़ां अपने 500 अनुयायियों सहित टेहरी के जंगलों में पहुंचे और पहाड़ी पर स्थित जुस्सुल (सिरोंज) के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया । उनके प्रमुख सहयोगी थे सरफ़राज़ मुहम्मद ख़ां व राव कुमार सिंह पिंडारी । नवम्बर 1858 में आदिल के सहयोगियों की संख्या 1500 हो गयी । 29 अप्रैल 1859 को भोपाल के नवाब की फ़ौजी टोली से इनकी मुठभेड़ हो गई जिसमें वफ़ादार विद्रोही मारे गये तथा बहुत-से घायल हुए । 15 मई 1959 को आदिल, अमानत व सरफ़राज़ ने पिपरिया के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया, जो विदिशा के अंतर्गत था । 18 मई 1859 को ईसागढ़ के सूबा के साथ अंग्रेज़ सेना की एक टुकड़ी ने आदिल ख़ां पर हमला कर दिया । कई विद्रोही मारे गये व पकड़ लिए गये। क़िला ख़ाली करा लिया गया । आदिल ख़ां वहां से निकल गये और उन्होंने विद्रोहियों को संगठित किया।

23 जून को लेफ़्निेंट रूम ने गुनापुरा के ऊपर की ओर स्थित पहाड़ियों पर आदिल मुहम्मद ख़ां पर आक्रमण किया और 100 से अधिक विद्रोहियों को मार डाला । वहां गड़ढों में एक साल की रसद का अनाज मिला जिसे अंग्रेज़ों ने जला दिया । आगे के दिनों में कई गांव भी जलाए । कैप्टन रूम ने जमादार रामलाल की कमान में भारतीय सेना की 10वीं रेजीमेंट की एक टुकड़ी को विद्रोहियों के छद्म वेष में भेजा । इस दल ने आदिल ख़ां के अनुयायियों में आतंक पैदा कर दिया । सितम्बर 1859 तक उन्होंने रूम के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया । आदिल मुहम्मद ख़ां ललितपुर की ओर व अमानत ख़ां दरिया की ओर चले गये । 1860 में आदिल ख़ां राव साहब से मिले । इसके आगे की जानकारी गज़ेटियर में नहीं है। पर आज़ादी के इतिहास में आदिल मुहम्मद ख़ां का नाम अमर है । (सा॰ : गज़ेटियर विदिशा)

लेखकों एवं रचनाकारों से

''कान्ति'' में प्रकाशनार्थ जो रचनाएं हमें मिलती हैं, उनकी स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना अथवा रचनाओं की वापसी के लिए अपना पता लिखा लिफ़ाफ़ा डाक टिकट सहित अवश्य भेजें । इसके अभाव में रचनाओं के विषय में हम आपको जानकारी देने में असमर्थ हैं । ध्यान रहे कि पर्याप्त डाक टिकट लगाकर प्रकाशनार्थ सामग्री भेजें, ताकि डाक, बैरंग न हो । आशा है, आपका सहयोग मिलता रहेगा ।

-संपादक

OUR PUBLICAITON IN BENGALI

FOR DAWAH WORK

Pavitra Quran (Bengali)	S. A. Ala Moududi	180/-
Islam Parichity	S. A. Ala Moududi	25/-
Islamer Jivn Paddhati	S. A. Ala Moududi	15/-
Tawhid Resalat O P. Jivan	S. A. Ala Moududi	15/-
Shanti Path	S. A. Ala Moududi	7/-
Ekmatra Dharma	S. A. Ala Moududi	10/-
Islamer Paigam	S. A. Ala Moududi	5/-
Bhanga O Gara	S. A. Ala Moududi	7/-
Islamer Naitik Dristikon	S. A. Ala Moududi	10/-
Islam O Nari	Mohd. Qutub	6/-
Pardah Ekti Bastav Prayojon	Shamsunnahar Nizami	15/-
Quraner Talaq O Tin Talaq	Nurul Islam Khan	10/-
Purdah O Islam	S. A. Ala Moududi	75/-
Swami Strir Adhikar	S. A. Ala Moududi	50/-
Arthanaitik Samasyar	S. A. Ala Moududi	10/-
Ek Mahat Jivan	A.S.M. abdul Hai	66/-
Adarsha Manab	S. A. Ala Moududi	6/-
Nabi Jivaner Baishishtya	S. A. Ala Moududi	7/-
Muha. (S) : Islamer Vartabahak	R. Rao	12/-
Islam O V ishwer Bhabishyat	Dr. M.W. Hoffman	7/-
Ahwban (Appeal)	Ali Nasim Hejaji	15/-
Nari : Islamer Dristete	Al Bahi Al-Khawli	90/-

Bangla Islami Prakashani Trust
27B, Lenin Sarani, Kolkata-700 013
Email : mizanweekly@gmail.com

पीर अली की ललकार

■ डॉ॰ एस॰ एल॰ नागौरी

1857 की क्रांति ने बिहार को भी प्रभावित किया । यद्यपि यह सत्य है कि यहां आगरा, मेरठ तथा दिल्ली की भांति क्रांति का ज़ोर नहीं था, तथापि बिहार के कई क्षेत्रों में क्रांति ने भीषण रूप धारण कर लिया था । सैकड़ों ब्रितानियों को यहां मौत के घाट उतार दिया गया ।

गया, छपरा, पटना, मोतीहारी तथा मुज़फ़्फ़रपुर आदि नगरों में क्रांति ने भीषण रूप धारण कर लिया । ब्रितानियों ने दानापुर में एक छावनी की स्थापना की, ताकि बिहार पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके । स्वदेशियों की सातवीं, आठवीं तथा चालीसवीं पैदल सेनाएं भी, जिन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए एक विदेशी कंपनी और तोप सेना रखी गयी थी । इसका प्रधान सेनापति मेजर जनरल लॉयड था । टेलर पटना का कमिश्नर था, जो बहुत दूरदर्शी था। उसमें प्रशासनिक क्षमता अत्यधिक थी। उसका यह मानना था कि पटना के मुसलमान भी इस क्रांति में हिन्दुओं के साथ भाग लेंगे । पटना में मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक थी । अत: टेलर ने मुस्लिम नेताओं पर कड़ी नज़र रखना प्रारंभ कर दिया । पटना के नागरिकों ने कुछ वर्ष से ही क्रांति की तैयारी शुरू कर दी थी, इसके लिए संगठन स्थापित किए जा चुके थे, जिसमें शहर के व्यवसायी एवं धनी वर्ग के लोग सम्मिलित थे । पटना के कुछ मौलवियों का लखनऊ के गुप्त संगठनों से पत्र व्यवहार चल रहा था । उनका दानापुर के सैनिकों से भी संपर्क हो चुका था । ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस वाले भी क्रांतिकारियों का सहयोग कर रहे थे । दानापुर के सैनिक भी वृक्षों के नीचे गुप्त बैठकें किया करते और क्रांति की योजना बनाते थे ।

दानापुर के सैनिक मेरठ के सैनिकों के असंतोष के बारे में जानते थे, परन्तु वे अवसर की प्रतीक्षा में थे । टेलर को पता चला कि दानापुर के सैनिकों में असन्तोष व्याप्त है, तो उसने विस्फोट होने से पूर्व ही उसे कुचलना उचित समझा । इसके लिए उसने तुरन्त प्रभावशाली क़दम उठाए, जिसके कारण वहां क्रांति भीषण रूप धारण नहीं कर सकी । हां, तीन जुलाई को एक छोटी-सी क्रांति अवश्य हुई, जिसे ब्रितानियों ने सिख सैनिकों की सहायता से कुचल दिया ।

तिरहुत ज़िले के पुलिस ज़मादार वारिस अली पर ब्रितानियों को संदेह हुआ और उन्हें तुरंत गिरफ़्तार कर लिया गया । उसके घर छापा डाला गया, जिसमें आपत्तिजनक काग़ज़ात प्राप्त हुए । इस अभियोग में उन्हें फांसी पर लटका दिया गया । तत्पश्चात् अनेक क्रांतिकारियों को बंदी बनाकर जेल में डाल दिया गया । नागरिकों से हथियार लेकर चलने पर प्रतिबंध लगा दिया गया । रात को नौ बजे घर से निकलने पर रोक लगा दी गई और कर्फ़्यू लगा दिया गया । परिणामस्वरूप क्रांतिकारी रात्रि को मीटिंग नहीं बुला सकते थे । बिहार के ही एक प्रमुख मुस्लिम क्रांतिकारी पीर अली के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं । वे सिर्फ़ मुसलमानों के ही नेता नहीं थे, अपितु उन्हें समस्त क्रांतिकारियों का विश्वास एवं समर्थन प्राप्त था ।

पीर अली लखनऊ के रहनेवाले थे । उनके बारे में विशेष जानकारी तो प्राप्त नहीं होती, पर इतना अवश्य पता चला है कि वे एक साधारण व्यक्ति थे, जिनमें देशप्रेम की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी । व्यक्ति की महानता उसके वंश ऐश्वर्य आदि से नहीं, अपितु उनकी निष्ठा से आंकी जाती है । एक साधारण व्यक्ति, जिसमें देशप्रेम की भावना हो, देश के लिए मर-मिटने की लालसा हो वह सराहनीय है । पीर अली लखनऊ से पटना आकर बस गये । आजीविका के लिए उन्होंने पुस्तक बिक्री का व्यवसाय प्रारंभ किया । वे चाहते तो अन्य काम भी कर सकते थे, पर उनका मुख्य उद्देश्य लोगों में क्रांति संबंधित पुस्तकों का प्रचार करना था । वे पहले पुस्तक पढ़ते और इसके बाद दूसरों को पढ़ने के लिए देते थे । वह पुरुष धन्य है, जो अपने ज्ञान को अपने तक ही सीमित नहीं रखकर समस्त जनता को लाभांवित करता है ।

पीर अली भारत को दासता की बेड़ियों से मुक्त करवाना चाहते थे । उनका मानना था कि गुलामी से मौत ज़्यादा बेहतर होती है । उनका दिल्ली तथा अन्य स्थानों के क्रांतिकारियों के साथ बहुत अच्छा सम्पर्क था । वे उनसे समय-समय पर निर्देश प्राप्त करते थे । जो भी व्यक्ति उनके संपर्क में आता, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था । यद्यपि वे साधारण पुस्तक विक्रेता थे, तथापि उन्हें पटना के विशिष्ट नागरिकों का समर्थन प्राप्त था । क्रांतिकारी

परिषद, पर उनका अत्यधिक प्रभाव था । उन्होंने धनी वर्ग के सहयोग से अनेक व्यक्तियों को संगठित किया और उनमें क्रांति की भावना का प्रसार किया । लोगों ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि वे ब्रिटिश सत्ता को जड़मूल से नष्ट कर देंगे । जब तक हम में रक्त की धारा प्रवाहित होती रहेगी, हम फ़िरंगियों का विरोध करेंगे, लोगों ने क़समें खाईं ।

टेलर ने पटना में दमन चक्र चलाना शुरू किया, तो पीर अली ने विद्रोह कर दिया । उनके स्वभाव में अद्‌भुत तीव्रता तथा उतावलापन था । वे देशवासियों का अपमान सहन नहीं कर सकते थे । अत: उन्होंने जनता को सरकार के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा दी और स्वयं संग्राम में कूद पड़े । उन्होंने स्वयं कहा था, "मैं समय से पहले ही विद्रोह कर उठा था ।" सरकार ने पीर अली को गिरफ़्तार कर लिया और उन पर मुक़दमा चलाकर उन्हें मृत्यु दंड की सज़ा दी गई । पीर अली ने निडर होकर हंसते-हंसते मृत्यु को आलिंगन कर लिया । विनायक दामोदर सावरकर ने पीर अली के मृत्यु दंड के समय का बहुत अच्छा वर्णन किया है ।

"हाथों में हथकड़ियां, बांहों में रक्त की धारा, सामने फंसी का फंदा, पीर अली के मुख पर वीरोचित मुस्कान मानो वे सामने कहीं मृत्यु को चुनौती दे रहे हों । महान शहीद ने मरते-मरते कहा था, "तुम मुझे फांसी पर लटका सकते हो, किंतु तुम हमारे आदर्श की हत्या नहीं कर सकते । मैं मर जाऊंगा, किंतु मेरे रक्त से सहस्त्रों योद्धा जन्म लेंगे और तुम्हारे साम्राज्य को नष्ट कर देंगे ।" कमिश्नर टेलर ने लिखा है कि पीर अली ने मृत्यु दंड के समय बड़ी वीरता तथा निडरता का परिचय दिया । उन्हें 1857 में पटना में फांसी दे दी गयी थी । 30 सेनानियों पर मुक़दमा चलाया गया, जिनमें से पीर अली समेत 14 को 7 जुलाई 1857 को फांसी की सज़ा सुनायी गयी ।

पीर अली का बलिदान व्यर्थ नहीं गया । उनकी मृत्यु के बाद 25 जुलाई 1857 को दानापुर की देशी पलटनों ने अपने-आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया । दानापुर के सैनिकों ने जगदीशपुर के बाबू कुंवरसिंह को अपना नेता स्वीकार कर लिया । यद्यपि कुंवरसिंह वृद्ध हो गये थे, तथापि उनमें बहुत जोश था । उनमें सैनिक शक्ति थी । वृद्ध कुंवरसिंह ने क्रांतिकारियों का नेतृत्व स्वीकार कर लिया और यह प्रमाणित कर दिया कि बिहार की भूमि में अत्यंत शक्ति है । यहां का एक वृद्ध भी ब्रितानियों को ललकार सकता है और उनके दांत खट्टे कर सकता है ।

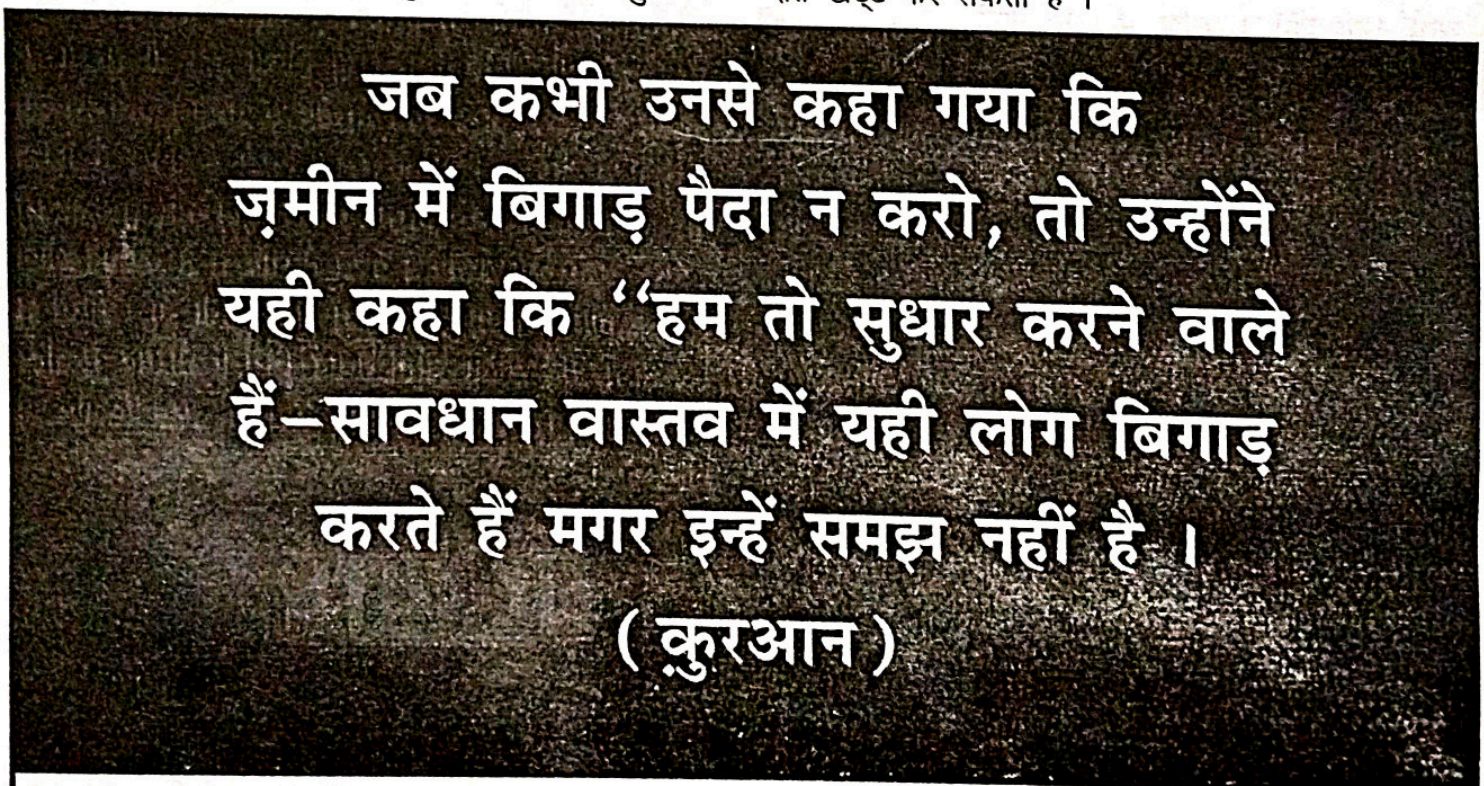

A Well Wisher

Kolkata

इस तरह भी मदद की गयी

● भरत राम भट्ट

बात जून 1775 की है । महाराज नन्द कुमार पर अंग्रेज़ों ने जालसाज़ी के बीस आरोप लगाए थे । उनके विरुद्ध क़रीब तीन दर्जन गवाह जुटाए गए थे । उन्हीं में से एक आज़िम अली भी था, जो कलकत्ता की नमक की कोठी पर एक अंग्रेज़ एजेन्ट का नौकर था यानी आज़िम अली उस अंग्रेज़ का ख़ानसामा था, जब किसी पर नमक की चोरी का आरोप लगाया जाता तो आज़िम अली सरकारी यानी अंग्रेजों की तरफ़ से गवाही देता था ।

महाराज नन्द कुमार, जो राजा थे और वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण थे, उन पर मुक़दमा के पक्ष में गवाहियां 3 जून से 12 जून, 1775 तक पूरी हुईं । सारे गवाह चाहे वे हिन्दू थे या मुसलमान, सब ने क़रीब-क़रीब उनके विरुद्ध गवाही दी ।

जब आज़िम अली गवाही के कटघरे में प्रविष्ट हुआ तो महाराज नन्दकुमार और उनके संगी साथी समझ गए कि वह चश्मदीद अंग्रेज़-गवाह बनकर आया है, इसलिए हमारे पक्ष में गवाही देने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

जब आज़िम अली कटघरे में खड़ा था तो चैतन्य बाबू ने उसे संकेत से हाथ की एक, दो व तीन उंगलियां दिखाकर तीन सौ रुपये तक देने का वायदा किया, लेकिन शपथ लेकर वह कहने लगा–

"मैं महाराज नन्द कुमार का मकान जानता हूं । उनके गुमाश्ता चैतन्य नाथ ने मेरी दुकान से एक जूता लिया था । मैं सन् 1769 की जुलाई में चैतन्य बाबू से जूतों के दाम का तक़ाज़ा करने महाराज नन्द कुमार के मकान पर गया । उससे दस दिन पहले बुलाकी दास की मृत्यु हो गई थी । वहां चैतन्य बाबू काम में व्यस्त थे । मेरे पूछने पर उन्होंने बताया–महाराज एक जाली दस्तावेज़ बना रहे हैं, उसी काम में मैं भी फंसा हूं । फिर मैंने महाराज को नाक पर चश्मा चढ़ाए एक बक्से में से 25-30 मोहर निकाल कर ज़ोर-ज़ोर से पढ़ता हुआ सुना । उन्हीं नामों में एक नाम कमालुद्दीन का भी था । वह मोहर (काग़ज़) महाराज ने चैतन्य बाबू को भी दिखाई थी ।"

"हज़रत इब्न उमर (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा : सबसे बड़ी नेकी यह है कि आदमी अपने बाप के दोस्तों के साथ अच्छा सलूक करे ।" (मुस्लिम)

A Well Wisher

Intezar Alam Ansari,

Kolkata

आज़िम अली की बयानबाज़ी को सुन सब सदस्य (जज) खिलखिला उठे और कहने लगे–गो ऑन । फिर आज़िम अली ने कहा–हुज़ूर इसके बाद तमस्सुक की शक्ल के एक काग़ज़ पर वह मोहर छाप दी गई ।

तब एक जज बोला–कहे जाओ, कहे जाओ ।

आज़िम अली बोला–इसके बाद महाराज ने चैतन्य बाबू से कहा–जहां मोहर लगाई है, उसके पास ही अब्दुल कमालुद्दीन का नाम भी लिख दो ।

दूसरा जज–कहो, कहो !

तब चैतन्य बाबू ने कमालुद्दीन का नाम लिख दिया । आज़िम अली बोला ।

क्या तुम लिख-पढ़ सकते हो ? तीसरे जज ने प्रश्न किया था ।

–हुज़ूर ! अब तो आंखों से कम दीखता है, पर पहले फ़ारसी पढ़ लेता था । आज़िम अली का जवाब था ।

सर इम्पे बोले–आगे बोलो । इम्पे जूरी के जज थे । जूरी में बारह जज थे ।

हुज़ूर ! फिर उसी काग़ज़ पर महाराज ने शिलावत सिंह, माधवराव के नाम भी गवाहों में लिख दिए ।

आज़िम अली के बयान से घबराकर चैतन्य बाबू ने आज़िम अली को एक हज़ार रुपये देने का संकेत दिया । तब वह इशारे से ही बोला–घबराओ मत । सब पर पानी फेरे देता हूं । दूसरी तरफ़ जज और फ़रियाद करने वाले के वकील बेज़ार हो कहने लगे–गो ऑन, गो ऑन ! (आगे कहो, आगे कहो)

सब काम पूरा होंने पर महाराज उस काग़ज़ को पढ़ने लगे । आज़िम अली ने आगे कहा ।

सारे जजों ने पूछा– फिर क्या हुआ

हुज़ूर ! महाराज ने उसे पढ़कर फिर अपने बक्से में रख दिया । तभी हमने सुना कि बुलाकी दास ने महाराज को तमस्सुक लिख दिया । फिर ! फिर ! एक साथ सारे जज बोले ।

हुज़ूर ! इसके साथ ही घर के अन्दर मुर्ग़ी ने बांग लगा दी और मेरी नींद टूट गई । तभी मेरी छोटी बीबी ने कहा–मियां आज क्या बिस्तर से नहीं उठोगे ? देखो ! कितनी धूप चढ़ आई है ? तब इलियट, जो द्विभाषिये का काम कर रहा था, तपाक से आह ! करके रह गया ।

उधर जज इम्पे द्विभाषिये से आख़िरी बात समझाने को कह रहा था और गवाह आज़िम अली से गो ऑन (आगे कहो) भी ।

हुज़ूर ! इसके बाद मैंने अपनी छोटी बीबी से कहा–मैं ख़्वाब में महाराज नन्दकुमार के मकान पर गया हूं और वे बुलाकीदास के नाम से एक जाली दस्तावेज़ बना रहे हैं ।

जब यह बात द्विभाषिये इलियट ने जजों को समझाई तो सबके सब दंग रह गए और निराश होकर आज़िम अली का मुंह ताकने लगे ।

उधर आज़िम अली 'गो ऑन' का इन्तज़ार किए बिना महाराज नन्दकुमार के अपराधों की सज़ा सुनाने को वहां बैठे जजों के सामने अपने ख़्वाब का वर्णन करता चला गया ।

यद्यपि न्याय का गला घोंट कर महाराज नन्दकुमार को फांसी दी गई, परन्तु आज़िम अली ने वह करिश्मा कर दिखाया था, जो उससे पहले किसी ने सोचा भी न होगा ।

आज़िम अली ने महाराज नन्दकुमार के विरुद्ध दी अपनी गवाही पर कुछ क्षणों में ही जिस चतुराई से पानी फेर दिया था, उसका मुख्य कारण कोई उसका व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था, बल्कि स्वतंत्र भारत की कामना थी ।

महाराज नन्दकुमार को 14 अगस्त, 1775 को फांसी दी गई थी । इंग्लैंड लौटने पर इम्पे पर भी मुक़दमा चलाया गया था और उसके फ़ैसले को ब्रिटिश-न्याय को कलंकृत करने वाला बताया गया था ।

अवध का वज़ीर

यद्यपि प्राय: यह आरोप दोहराया जाता है, बल्कि बार-बार कहा जाता है कि अवध की नवाबी को अंग्रेज़ों ने उनकी विलासपूर्ण ज़िन्दगी के सहारे हथियाया । लेकिन अवध के वज़ीर (मंत्री) अली नक्की ख़ां कलकत्ता के समीप बैठे नाना साहब की तरह ही अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रांति के बीज बोने के लिए फ़क़ीरों तथा संन्यासियों को भेजा करते थे । उन्होंने अंग्रेज़ सेना के भारतीय अफ़सरों को पत्र लिखकर कम्पनी सरकार की नौकरी के बजाय देश की आज़ादी को ज़्यादा अच्छा बताया था और उन लोगों से कम्पनी सरकार की नौकरी छोड़ने का आग्रह किया था ।

यानी जो बात मोहनदास करमचन्द गांधी ने सन् 1920-21 में कही, वह अली ख़ां ने सन् 1851 में कह दी थी । उन्होंने बंगाल की सारी सेना में विद्रोह फैला दिए थे । यह सारा काम गुप्त रूप से व्यापक तौर पर किया था वज़ीर अली नक्की ख़ां ने, जबकि अंग्रेज़ों की मक्कारी के जाल चारों तरफ़ बिछे हुए थे ।

स्वतंत्रता आन्दोलन और ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान

● संपादन प्रभाग

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन से मुसलमानों का उद्देश्य यह था कि भारत से अंग्रेज़ों को निकाल बाहर किया जाए और देश के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त की जाए । यह बात शैखुल हिन्द मौलाना महमूद हसन के आन्दोलन में हमें स्पष्ट नज़र आती है और अंग्रेज़ों को निकालने के लिए तुर्कों से उनकी मुलाक़ातें इसको नुमाया करती हैं, जैसा कि रूल्ट कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया है कि "इस आन्दोलन का लक्ष्य भारत से ब्रिटिश साम्राज्य को ख़त्म करना था ।"

(गांधी जी के क़दमों में, पृष्ठ-161)

इस बात की चर्चा ऊपर की जा चुकी है कि मुसलमान भारत को स्वतंत्र लोकतंत्र बनाने की घोषणा पर सोच-विचार कर रहे थे और यह कि वे देश के दूसरे तमाम निवासियों की तुलना में ज़्यादा निडर और शूरवीर थे । अत: मुसलमानों की मांग पूर्ण स्वतंत्रता की थी, इसके दो कारण थे–

1. अपने प्रमुख दुश्मन से देश को मुक्ति दिलाएं, जिसने उनके देश पर आधिपत्य जमा रखा था ।

2. उन इस्लामी देशों को स्वतंत्र कराएं, जिन पर अंग्रेज़ों ने भारत पर सत्ता और प्रभुत्व को चिर-स्थायी करने के उद्देश्य ये क़ब्ज़ा करके वहां अपनी नयी आबादियां बसा रखी थीं । क्योंकि अंग्रेज़ समझ रहे थे कि अगर भारत से उनकी सत्ता-सामर्थ्य लिपट जाए तो उन इस्लामी देशों पर अपना क़ब्ज़ा और आधिपत्य बरक़रार रखना उनके लिए संभव न रहेगा । यह थी सूरतेहाल और ये थे वे कारण, जिनके तहत भारत के मुसलमान अपने देश से अंग्रेज़ों को निकाल देने के लिए जंग करने और इस राह में बड़ी से बड़ी कुरबानी देने के लिए तैयार हो गए थे, जबकि हिन्दुओं ने ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में स्वराज्य (Home Rule) से ज़्यादा की मांग न किया । पंडित जवाहर लाल अपनी किताब में लिखते हैं–

"लोकमान्य तिलक जेल से बाहर आए, उन्होंने और श्रीमती एनी वेसेंट ने भारत के स्वराज्य (Home Rule) की मांग के लिए संस्थाओं को स्थापित करना शुरू किया । लोकमान्य तिलक और अंग्रेज़ो की दुश्मनी में हद से ज़्यादा क्रांतिकारी घटनाएं हुई थीं ।" इसके बाद वह आगे लिखते हैं कि जब दूसरी बार एनी वेसेंट गिरफ़्तार की गयीं तो उसका परिणाम यह हुआ कि मेरे पिता और दूसरे बहुत-से मध्यमार्गी लोग स्वराज्य की मांग करने वालों की ओर आकृष्ट हो गए। अर्थात वे लोग भी क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए। यह बात प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान हुई, जब गांधी जी ने अपना आन्दोलन शुरू किया था, तो इससे उनका उद्देश्य इसके अतिरिक्त और कुछ न था कि कुछ जुल्म-अत्याचार ख़त्म किए जाएं और संशोधित क़ानूनों को लागू किया जाए, जिनका अंग्रेज़ों ने वादा किया था और फिर अपने वादे से मुकर गए थे ।" (किताब नेहरू, पृष्ठ-24)

जब गांधी जी ने 1920-21 ई॰ में लोगों को असहयोग आन्दोलन की ओर बुलाया, तो उनका उद्देश्य स्वराज्य या पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति नहीं था, बल्कि उनका आशय यह था कि अंग्रेज़ों की निगाहों को भारतवासियों के साथ दुर्व्यवहार, आंतरिक क़ानून में संशोधन के वादों से मुकर जाने और उन बातों को पूरा करने की ओर मोड़ा जाए जिसके लिए उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान वादे किए थे और इसका यह भी मतलब है कि स्वतंत्रता के सिलसिले में कांग्रेस के सामने कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं था, जिसके आस-पास सारे सदस्य जमा हो जाते, बल्कि वह केवल उन लोगों को जमा करती थी जो क्रांतिकारी कहलाते थे और स्वराज्य की मांग करते थे । रहे मध्यमार्गी लोग तो ये लोग स्वराज्य की मांग भी नहीं करते थे, बल्कि पंडित नेहरू जी के कथनुसार वे अंग्रेज़ों की सवारी थे ।

ये क्रांतिकारी अधिकतर नवजवान थे, जिनका नेतृत्व पंडित जवाहर लाल नेहरू कर रहे थे । सन 1928 ई॰ में मोती लाल नेहरू कमीशन ने एक रिपोर्ट पेश की जिसमें

उन्होंने सारी भारतीय पार्टियों के एक सम्मेलन में स्पष्ट नियमों व सिद्धांतों के साथ भारत की स्वतंत्रता की मांग को पेश किया । कांग्रेस की कमेटी में पंडित नेहरू ने एक क्रांतिकारी भाषण दिया, जिसमें उन्होंने कहा, 'समय आ गया है कि कांग्रेस इस क्रांतिकारी दृष्टिकोण के जो हमारे राजनैतिक और सामूहिक हालात में पूर्ण परिवर्तन की मांग करता है और आन्तरिक संशोधन पर पर्याप्त लोगों के मध्य किसी एक का चुनाव कर ले ।

दिसम्बर 1929 ई॰ में कांग्रेस ने अपना सम्मेलन लाहौर में आयोजित किया । इस अवधि में अंग्रेज़ी सरकार ने पूर्व मांग के सिलसिले में अपने दृष्टिकोण का कोई स्पष्टीकरण नहीं किया था, अत: कांग्रेस ने कुछ क्षेत्रों के विरोध के बावजूद बुनियादी प्रस्ताव को मान लिया । यह काम दिसम्बर 1929 ई॰ की अन्तिम रात में पूरा हुआ और 24 जनवरी 1930 ई॰ का दिन इस प्रस्ताव को प्रकाशित करने और पूर्ण स्वतंत्रता की मांग के लिए निश्चित हुआ ।

मुसलमान आमतौर पर दूसरों की तुलना में असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा के मामले में आगे थे और इस राह में दूसरों ने जो कुछ परिश्रम व प्रयास किया और अल्पसंख्यक होने के बावजूद इस महान आन्दोलन को अपने विशिष्ट रंग में रंग दिया । इस आन्दोलन के नाम और शीर्षक के रूप में जो शब्द (असहयोग और साम्राज्यवाद विहीन असहयोग आन्दोलन) मुसलमानों ने इस्तेमाल किया, वह वास्तव में अरबी भाषा का शब्द था, लेकिन उन्होंने इसे उर्दू भाषा में दाख़िल कर लिया था और यही नाम मशहूर भी हुआ और इतना मशहूर हुआ कि खुद गांधी जी भी जब लोगों के सामने भाषण देते तो उन्हें अपनी भाषा में इसका कोई वैकल्पिक शब्द न मिल सका ।

शायद यह बात भी थी कि गांधी जी पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटिश साम्राज़्य से संबंध-विच्छेद के मामले में, जिसके साथ वे एक लम्बी अवधि तक निष्कपट प्रेम का बर्ताव करते रहे थे, वास्तव में कुछ ज़्यादा उत्साहित न थे । यह केवल संयोग नहीं है कि जिस समय कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव को अपनाने का ऐलान किया था और जिसका एलान जनवरी 1930 ई॰ में किया भी और जिस आन्दोलन का नेतृत्व गांधी जी के हवाले उनके एकान्तवास से निकलने के बाद किया गया था । ठीक उसी समय गांधी जी ने एक पत्र वायसराय को लिखा, जिसमें उन्होंने लिखा कि वह इस आन्दोलन को स्थगित करने के लिए तैयार हैं, अगर भारतवासियों की निम्नलिखित मांगों को स्वीकार कर लिया जाए–

1. देश में पूर्णतया मद्यपान निषेध । 2. सरकारी लाभ प्राप्ति की समाप्ति । 3. लगान में पचास प्रतिशत की कमी । 4. सैनिक ख़र्च में पचास प्रतिशत की कमी । 5. भारतीय निर्मित और यहां के बने हुए कपड़ों को तरक़्क़ी देने के लिए विदेशी कपड़ों और निर्मित सामानों के आयात पर कर में वृद्धि । 6. सारे राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई । 7. ख़ुफ़िया पुलिस विभाग का ख़ात्मा या फिर उसे जन-प्रतिनिधियों के अधीन बनाया जाना ।

8. जन-प्रतिनिधियों की निगरानी में आत्मरक्षा के लिए आग्नेय अस्त्रों के आम इस्तेमाल की इजाज़त ।

9. नमक पर से कर की समाप्ति ।

यह मांगें नि:संदेह भारत की शदीद ज़रूरतों से संबंधित थीं और पूर्ण स्वतंत्रता की तुलना में गांधी जी इन पर संतोष करने के लिए तैयार थे (जबकि उनको इसके लिए तैयार नहीं होना चाहिए था, क्योंकि) अगर ब्रिटिश सरकार यह मांग मान लेती, तो फिर वायसराय पूरी तरह से सविनय अवज्ञा (सिविल नाफ़रमानी) के बारे में कुछ भी न सुनता ।

लेकिन सरकार ने गांधी जी की मांगों को अस्वीकार कर दिया और कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने 15 फ़रवरी 1930 ई॰ में आयोजित अपने सम्मेलन में सविनिय अवज्ञा की शुरुआत के लिए समय निर्धारित कर दिया । (किताब : गांधी, पृष्ठ-292,93)

इस अवसर पर इस बात की चर्चा भी अनुचित न होगी कि जब गांधी जी ने वायसराय के उनकी शर्तें स्वीकार न करने के बाद सन 1930 ई॰ में दूसरी बार सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया, तो उसकी शुरुआत उन्होंने अपने साथियों के साथ नमक वाले क़ानून के विरोध में की और जब उसके प्रतिकार में वह गिरफ़्तार गए, तो उन्होंने अपना कार्यवाहक एक मुस्लिम नेता 'अब्बास तय्यब' को बनाया और यह कहा कि जब वह भी गिरफ़्तार हो जाएं तो इस आन्दोलन का नेतृत्व श्रीमती सरोजनी नायडू करेंगी और अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे इन दोनों के साथ सहयोग व प्रेम का व्यवहार करें ।

(किताब : गांधी, लेखक– फ़तही रिज़वान)

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में हिन्दू लीडरों के साथ-साथ

मुस्लिम लीडरों का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है । यह उन दिनों की बात है, जिन दिनों सरहदी क्षेत्र में जो इस समय पाकिस्तान का एक क्षेत्र है, एक ऐसी हुकूमत स्थापित थी जो ताक़त व भय के द्वारा क़ौम पर अपना आधिपत्य जमाए हुए थी । ठीक उन्हीं दिनों सरहदी क्षेत्र में एक मुस्लिम नेता था, जो अंग्रेज़ों की ज़ालिम हुकूमत के विरुद्ध इस क्षेत्र में अपना सीना ताने खड़ा था और जिसके नेतृत्व में उस समय पूरा सरहदी क्षेत्र चल रहा था । उस नेता को हम ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान के नाम से जानते हैं ।

अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान का जन्म सन 1890 ई॰ में पेशावर, पाकिस्तान में हुआ था । आपके पिता बैरम ख़ान एक सच्चे ईश्वर भक्त व शांत स्वभाव के व्यक्ति थे । आपके दादा सैफ़ुल्लाह ख़ान और परदादा उबैदुल्लाह ख़ान सत्यवादी होने के साथ-साथ लड़ाकू स्वभाव के भी थे । आपके परदादा ने पठानी क़बाइलियों और भारतीय स्वतंत्रता के लिए बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ीं थीं । स्वतंत्रता संग्राम के लिए उन्हें प्राणदंड दिया गया था । वे जैसे बलशाली थे वैसे ही समझदार और चतुर भी थे । इसी प्रकार ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान के दादा सैफ़ुल्लाह ख़ान ने सारी ज़िन्दगी अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ाइयां लड़ी । जहां भी पठानों के ऊपर अंग्रेज़ आक्रमण करते, उनकी सहायता के लिए सैफ़ुल्लाह ख़ान वहां पहुंच जाते थे ।

स्वतंत्रता संग्राम का यही पाठ अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान ने अपने दादा से सीखा । आपके पिता बैरम ख़ान ने आपकी शिक्षा-दीक्षा के लिए मिशनरी स्कूल में आपका दाख़िला कराया, यद्यपि पठानों ने उनका बड़ा विरोध किया । मिशनरी स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के बाद अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान अलीगढ़ गए, किन्तु वहां रहने की परेशानी के कारण उन्होंने गांव में ही रहना पसन्द किया । गर्मी की छुट्टियों में वे समाज सेवा का कार्य करते थे । पूरी शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे देश-सेवा में लग गए ।

पेशावर में जब 1919 ई॰ में अंग्रेज़ सरकार ने मार्शल लॉ (फ़ौजी क़ानून) लागू किया, तो उस समय अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान ने शान्ति का प्रस्ताव पेश किया, मगर फिर भी उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया । अंग्रेज़ी सरकार उन पर विद्रोह का आरोप लगाकर जेल में बन्द करना चाहती थी । अत: सरकार की ओर से इस प्रकार के गवाह तैयार करने के प्रयत्न किए गए, जो यह कहें कि अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान के भड़काने पर जनता ने तार तोड़े, किन्तु ऐसा कोई भी व्यक्ति तैयार न हुआ, जो अंग्रेज़ सरकार की ओर से गवाही दे । फिर भी इस झूठे आरोप में उन्हें छ: महीने की सज़ा दी गयी ।

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान एक सच्चे स्वतंत्रता सेनानी थे । उन्होंने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया और अपने कार्य और निष्ठा के कारण 'सरहदी गांधी', 'सीमांत गांधी' 'बच्चा ख़ां' तथा 'बादशाह ख़ान' के नाम से पुकारे जाने लगे । वे भारतीय उपमहाद्वीप में अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के विरुद्ध अहिंसा के प्रयोग के लिए जाने जाते हैं एक समय उनका लक्ष्य संयुक्त, स्वतंत्र एवं धर्मनिरपेक्ष भारत था । इसके लिए उन्होंने 1920 ई॰ में 'ख़ुदाई ख़िदमतगार' नाम के एक संगठन की स्थापना की, जिसे 'सुर्ख़पोश' के नाम से जाना जाता है । ख़ुदाई ख़िदमतगार का जो सामाजिक संगठन अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान ने बनाया था, उसका कार्य शीघ्र ही राजनीतिक कार्य में परिवर्तित हो गया । ख़ान साहब का कहना था कि प्रत्येक ख़ुदाई ख़िदमतगार की यही प्रतिज्ञा होती है कि हम ख़ुदा के बन्दे हैं, धन-दौलत या मौत की हमें क़द्र नहीं है और हमारे नेता सदा आगे बढ़ते चलते हैं और हम मौत को गले लगाने के लिए हर समय तैयार हैं । सन् 1930 ई॰ में सत्याग्रह करने पर उन्हें दुबारा जेल में डाला गया और उनका तबादला गुजरात (पंजाब) के जेल में कर दिया गया । यहां आने के बाद उनका परिचय पंजाब के अन्य राज्य बंदियों से हुआ । जेल में ख़ान साहब ने गुरुग्रंथ पढ़ा और गीता का अध्ययन भी किया । हिन्दू तथा मुसलमानों के आपसी मेल-मिलाप को ज़रूरी समझकर उन्होंने गुजरात के जेलख़ाने में गीता तथा क़ुरआन के क्लास लगाए, जहां पर योग्य संस्कृतज्ञ और मौलाना हज़रात, गीता और क़ुरआन का उपदेश देते थे । उनके उपदेश से अन्य क़ैदी भी प्रभावित हुए और गीता, क़ुरआन तथा गुरुग्रंथ साहब आदि सभी धार्मिक ग्रंथों का सब लोगों ने अध्ययन किया ।

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान के बारे में पंडित जवाहर लाल नेहरू अपनी किताब में लिखते हैं– "उन्होंने सरहदी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी सरकार का मुक़ाबला किया । एक गांव से दूसरे गांव जा-जाकर सुर्ख़पोशों के केन्द्र स्थापित करते रहे । अत: वे और उनके साथी सरकार की निगाहों के कांटे बन गए । सरहद में उनका पद किसी भी रूप से इससे कम न था, जो महात्मागांधी जी का भारत के दूसरे क्षेत्रों में

था । सरहदी गांधी और गांधी जी के मध्य, कांग्रेस और सुर्ख़पोशों के मध्य मधुर संबंध बहुत जल्द मज़बूत और सुदृढ़ हो गए, जिसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि ये सब लोग भी कांग्रेस में ही शामिल हो गए ।''

(किताब : नेहरू, पृष्ठ-150)

आरंभ में ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान ने गांधी जी और कांग्रेस से कोई सम्बन्ध रखे बिना सरहदी क्षेत्रों में अंग्रेज़ों के विरुद्ध कठोर संघर्ष किया और अपने क्षेत्र से अंग्रेज़ी साम्राज्य को ख़त्म करने के लिए सुर्ख़पोशों की एक सेना तैयार की । ऐसा उन्होंने पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना से ओतप्रोत होकर किया था । फिर अन्त में वे कांग्रेस पार्टी के साथ मिलकर और अपनी पूरी शक्ति और सेवाभाव इस दृष्टिकोण की राह में समर्पित कर दिए, जिस पर कांग्रेस पाबंद हुई । इसी किताब में एक दूसरे अवसर पर पंडित जवाहर लाल नेहरू सुर्ख़पोश संगठन के बारे में कहते हैं, ''इस संगठन और इसके संस्थापक ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान का राष्ट्र आन्दोलन में ऊंचा स्थान है ।'' (किताब : नेहरू, पृष्ठ-243)

29 मार्च सन 1931 ई॰ को लंदन द्वितीय गोलमेज़ सम्मेलन के पूर्व महात्मा गांधी और तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन के बीच एक राजनैतिक समझौता हुआ, जिसे 'गांधी-इरविन समझौता' (Gandhi-Irwin Pact) कहते हैं गांधी-इरविन समझौते के बाद ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहब जेल से रिहा हुए और वे सामाजिक कार्यों में लग गए ।

गांधी जी इंग्लैंड से लौटे ही थे कि अंग्रेज़ी सरकार ने कांग्रेस पर फिर से पाबंदी लगा दी । अत: बाध्य होकर व्यक्तिगत अवज्ञा आन्दोलन (सिविल नाफ़रमानी) शुरू हुआ । सीमा प्रांत में सरकार की ज़्यादतियों के विरुद्ध मालगुज़ारी आन्दोलन शुरू कर दिया गया । अंग्रेज़ी सरकार ने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहब और उनके भाई डॉ॰ ख़ान को आन्दोलन का सूत्रधार मानकर सारे घर वालों को क़ैद कर लिया । सन् 1934 ई॰ में जेल से छूटने पर दोनों भाई वर्धा में रहने लगे और इस बीच उन्होंने सारे देश का दौरा किया । कांग्रेस के निश्चय के अनुसार 1939 ई॰ में प्रान्तीय कौंसिलों पर अधिकार प्राप्त हुआ, तो सीमा प्रांत में भी 'कांग्रेस मंत्रिमंडल' उनके भाई डॉ॰ ख़ान के नेतृतव में बना, लेकिन स्वयं वे मंत्रिमंडल से अलग रहकर जन-सेवा करते रहे । सन 1942 ई॰ के अगस्त आन्दोलन के सिलसिले में वे गिरफ़्तार किए गए और सन 1947 ई॰ में रिहा हुए । देश का विभाजन होने पर उनका सम्बन्ध भारत से टूट-सा गया, किन्तु वे देश-विभाजन से किसी प्रकार सहमत न हो सके । इसलिए पाकिस्तान से उनकी विचारधारा सर्वथा भिन्न थी । पाकिस्तान के विरुद्ध उन्होंने 'स्वतंत्र पख़्तूनिस्तान' आन्दोलन आजीवन जारी रखा । सन 1987 ई॰ में उन्हें 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया ।

(दैनिक भास्कर, 18 नवम्बर 2013)

सन 1988 ई॰ में पाकिस्तान सरकार ने उन्हें पेशावर में उनके घर में नज़रबन्द कर दिया और उनकी मृत्यु 20 जनवरी 1988 ई॰ में हुई । उनकी अन्तिम इच्छानुसार उन्हें जलालाबाद अफ़ग़ानिस्तान में दफ़नाया गया ।

इन सारी बातों से व्यक्तिगत अवज्ञा (सिविल नाफ़रमानी) और पूर्ण स्वतंत्रता से संबंधित मुसलमानों का दृष्टिकोण खुलकर सामने आ जाता है और यह बात सूर्य से भी ज़्यादा स्पष्ट और सर्वविदित हो जाती है कि इन सारे क्षेत्रों में मुसलमान आगे-आगे थे और इसकी मूल धूरी उनका धर्म और अपने देश से उनका निश्छल प्रेम था ।

(साभार : 'आज़ादी की जिद्दोजहद में मुसलमानों का हिस्सा',
लेखक : डॉ॰ अब्दुल मुनअम अन-निम्र)

''अल्लाह उस आदमी के साथ दयालुता का मामला करेगा जो क्रय-विक्रय और क़र्ज़ का तक़ाज़ा करने में नरमी और शालीनता बरते ।'' (हदीस)

A Well Wisher

Farid Khan, Kolkata

देश के स्वतंत्रता-संघर्ष में मुसलमानों का योगदान

■ मुहम्मद मुशताक़ बेग

इस्लाम मानव मात्र को परतंत्रता से छुटकारा दिलाने वाली जीवन-व्यवस्था है । वह स्वतंत्रता का पक्षधर है । एक अल्लाह की ही इबादत की जाए और उसके आगे ही अपना मस्तिष्क झुकाया जाए । मनुष्य, मनुष्य के आगे सिर न झुकाये, न उसका शोषण करे, सबसे पहले इस स्वतंत्रता का शंखनाद करने वाले मशहूर पैग़म्बर हज़रत इबराहीम (अलैहि०) हैं, जिन्होंने उस समय के अत्यंत शक्तिशाली सम्राट नमरूद के सामने अपना सिर झुकाने से साफ़ इन्कार कर दिया था, और यह बता दिया था कि मनुष्य का सिर सिर्फ़ अल्लाह के सामने झुकता है । यही संदेश हज़रत आदम (अलैहि०) से लेकर आख़िरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) तक सभी नबियों ने सारी दुनिया को दिया है और इसी को कुरआन व हदीस में कई जगह बड़े अच्छे अंदाज़ से पेश किया गया है ।

17वीं शताब्दी में यूरोप से अंग्रेज़, फ्रांसीसी, डच आदि कई लोग भारत में व्यापार करने के लिए आये । 31 दिसम्बर 1600 ई० को इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ ने ईस्ट इंडिया कंपनी को व्यापार करने का चार्टर प्रदान किया था । यहीं से अंग्रेज़ों का भारत में सही मायने में प्रवेश हुआ । सन 1613 में सर टॉमस रो ने मुग़ल सम्राट जहांगीर को भेंट आदि देकर भारत में व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त कर ली । यह व्यापारी अपने माल की रक्षा के लिए हथियारों से लैस सुरक्षाकर्मी भी रखते थे । इस तरह से उन्होंने एक अशासकीय सेना क़ायम कर ली । उस समय देश के राजा-नवाब आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे और उन्हें ये भाड़े के सैनिक सस्ते दामों में शस्त्र सहित मिल जाते थे और उसके बदले में अंग्रेज़ों को धन के साथ-साथ जागीरें भी । इस तरह अंग्रेज़ व्यापार करते-करते भारत के राजाओं की फूट से यहां के शासक बन गये । हालांकि औरंगज़ेब ने इनकी चाल को समझ लिया था और व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया था, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनके वंशज के कमज़ोर होने से मुग़ल साम्राज्य कई हिस्सों में बंट गया और राजा-नवाब स्वतंत्र हो गये ।

1757 में प्लासी के युद्ध में नवाब सिराजुद्दौला ने सबसे पहले अंग्रेज़ी फ़ौज से टक्कर ली । मगर उसका दुर्भाग्य था कि उसके सेनापति मीर जाफ़र, दुर्लभ राय तथा सेठ अमीनचन्द आदि ने उसके साथ विश्वासघात किया और सिराजुद्दौला को हार का मुंह देखना पड़ा । 1764 ई० में मीर क़ासिम, सिराजुद्दौला और शाह आलम ने मिलकर फिर एक बार अंग्रेज़ों को खदेड़ने का प्रयास किया, किन्तु यहां भी उन्हें हार का मुंह देखना पड़ा ।

अंग्रेज़ बंगाल, बिहार, उड़ीसा में अपना शिकंजा कस रहे थे और भारत, जो सोने की चिड़िया थी, उसे लूटपाट कर जनता को तबाह व बरबाद कर रहे थे । जनता के पहले आन्दोलनकारी मजनूं शाह, मूसा शाह, सिराज अली, नूर मुहम्मद तथा उनके अनेक साथियों ने 80 हज़ार मुजाहिद इकट्ठे किये और जनरल मैकेंजी, कमांडर केड्थ, लेफ्टीनेंट राबर्टसन् की फ़ौज को पहली बार बुरी तरह से हराया । यह युद्ध 1776 ई० में हुआ था, मगर बाद में देशप्रेमियों की सेना कमज़ोर पड़ गयी और उनकी शक्ति अंग्रेज़ों ने छिन्न-भिन्न कर दी, फिर भी इन्होंने भारत की आज़ादी की मशाल अपने ख़ून से जलाकर जनता को देशप्रेम के लिए तैयार कर दिया था ।

मौलवी शरीअतुल्लाह ख़ान ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध बहुत बड़ा आन्दोलन शुरू किया था । उनका साथ बंगाल के दादू मियां ने दिया । इस फ़ौज के कमांडर मुहम्मद मीर मिसाल अली उर्फ़ टीटू मियां थे, जिन्होंने अंग्रेज़ों की नाक में दम कर दिया था । आज भी इनकी वीरगाथा बंगाली में बंगाल के लोग बड़े उत्साह व गौरव से गाते हैं, किन्तु इनका भी अंत अंग्रेज़ों ने अपनी फूट डालो नीति के तहत किया और उनके साथियों को फांसी के फंदे पर लटकाया गया, कई

को काले पानी भेजा गया । दक्षिण में भी अंग्रेज़ों को देश से खदेड़ने के लिए महान सेनानी शेरे कर्नाटक हैदर अली और उनके वीर पुत्र मुहम्मद टीपू सुल्तान ने अंग्रेज़ों की नाक में दम कर लोहे के चने चबवाये । किन्तु यहां भी कुछ देशद्रोहियों ने उनके साथ विश्वासघात किया और टीपू सुल्तान को इस देश के लिए अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी । आज उनकी मज़ार भी रंगापट्टम में देश को याद दिलाती है कि आज़ादी का क्या महत्व है ।

अंग्रेज़ देश में फूट डालकर और देशवासियों को लड़ाकर अपना साम्राज्य बड़ी तेज़ी से फैला रहे थे । हमारा ही पैसा और हमारे ही सिपाही उनका साथ दे रहे थे । किन्तु जब उन्होंने अन्याय की सीमा लांघ दी तो सारे देश में 1857 की एक ज़ोरदार क्रांति की तैयारी प्रारंभ हुई । दिल्ली के मुग़ल सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र, फ़िरोज़ शाह, नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे, झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई व कई देशी राज्यों के सिपाही इस क्रांति में कफ़न बांधकर कूद पड़े । इस क्रांति के सूत्रधार नाना साहब पेशवा के प्रधानमंत्री अज़ीमुल्लाह ख़ां थे, जिन्हें नाना साहब पेशवा ने अपना वकील बनाकर लंदन भेजा था । जहां वे दस वर्ष तक अंग्रेज़ों की चालों को समझते रहे और भारत आकर उन्होंने एक गुप्त योजना बनायी जो साधु, फ़क़ीरों के भेष में कमल के फूल और रोटियों के अन्दर देश की छावनियों में भेजी गयी । 31 मई 1857 को रविवार आता है, इस दिन सारे अंग्रेज़ स्त्री-बच्चों के साथ गिरजाघर अवश्य जाएंगे और उस दिन प्रार्थना के बाद जब अंग्रेज़ बाहर निकलेंगे । हर दरवाज़े पर दो-दो सिपाही तलवार व बन्दूक़ लेकर इनका ख़ात्मा कर देंगे ताकि देश में एक भी अंग्रेज़ बच न सकेगा ।'' दुर्भाग्य से मार्च 1857 को मेरठ की छावनी में कारतूसों के चर्बी के संबंध में सिपाही मंगल पांडे ने क्रांति का बिगुल बीच में ही बजा दिया और क्रांति भड़क उठी और वह 31 मई वाली योजना कार्य रूप न ले सकी । फिर भी अज़ीमुल्लाह ख़ां ने मेजर लारेंस व उसके पन्द्रह साथियों को कोलकाता जाने वाली नांव में नहीं जाने दिया और सारे अंग्रेज़ों को अपने सिपाहियों से कटवाकर गंगा को लाल कर दिया ।

देशी राज्यों के सिपाहियों में झांसी के गुलाम ग़ौस, तोपख़ाने के इंचार्ज थे और उनके साथ हज़ारों पठान सिपाही इस क्रांति में कूद गये और प्राणों की आहुति दी । इस क्रांति में अपने प्राणों की आहुति देकर इंदौर का नाम ऊंचा करने वालों में अमर शहीद शहादत ख़ां तथा भागीरथ सिलावट के नाम उल्लेखनीय है । अवध की बेगम हज़रत महल ने भी इस क्रांति में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था । उनके साथ मौलवी रहमतुल्लाह शाह भी थे, जिन्हें अंग्रेज़ों ने जेल में डाल दिया था । किन्तु सिपाहियों ने जेल तोड़कर उनको रिहा कराया । ऐसे कई देश प्रेमियों ने इस महान क्रांति में अपना योगदान दिया ।

इस 1857 की क्रांति में हिन्दू-मुस्लिम सब मिलकर अंग्रेज़ों से लड़े थे, सबका ख़ून भारत के काम आया था । यह क्रांति कई कारणों से असफल रही वह अलग विषय है । लेकिन अंग्रेज़ों ने इसके बाद भारत पर अपना शिकंजा मज़बूत कर लिया था और वे भारतीयों पर जुल्म व सितम का पहाड़ तोड़ने के लिए पूरी तरह तैयार हो गये थे ।

अंग्रेज़ भारत में राज करने के साथ-साथ ईसाई धर्म का प्रचार करना चाहते थे । उसके लिए इंग्लैंड से पादरी, जिनमें मशहूर पादरी पिंडर तथा अन्य बिशप, डॉक्टरों को भारत भेजना शुरू किया । इन लोगों ने आकर अपना मिशन बड़ी तेज़ी से चलाया और देश के ग़रीब निर्धन लोगों को ईसाई बनाने के लिए लालच, पैसा धौंस आदि दी । कुछ ने धर्म परिवर्तन कर लिया, किन्तु उनका सबसे पहला विरोध मुस्लिम उलेमा ने किया । इनमें मुख्य हज़रत शाह वलीउल्लाह रहमतुल्लाह, शाह अब्दुल अज़ीज़ ने 1803 में अंग्रेज़ों के विरुद्ध जिहाद का फ़तवा जारी किया कि अंग्रेज़ों को भारत से बाहर किया जाए और उनसे जिहाद किया जाए । इनके इस फ़तवे का सारे मुस्लिम जगत में बड़ा स्वागत हुआ और मुसलमान तब से अंग्रेज़ों के विरुद्ध हो गये । उसमें सैयद अहमद शहीद, सैयद इस्माईल शहीद तथा उनके कई साथी शहीद हुए । कहा जाता है कि इस आन्दोलन में 50 हज़ार से ज़्यादा मौलवी, मुल्ला व दीन के रहबर शहीद किये गये। उन्हें तोपों के मुंह पर बांधकर उड़ा दिया गया । कईयों को मस्जिद में ख़ानक़ाहों में फांसी पर लटका दिया गया और यह तय किया गया कि अगर इन मौलवी, मुल्लाओं को भारत में ख़त्म कर दिया जाए तो ईसाइयत आराम से फैल सकेगी ।

25 दिसम्बर 1885 को कांग्रेस की स्थापना की गयी, इसमें भी कई मुस्लिम रहनुमाओं ने अपना योगदान दिया । आज़ादी से पहले सात मुसलमान कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये, उनमें सबसे पहले अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयब जी 1887, रहमत

उल सियानी 1896, हसन इमाम 1918, हकीम अजमल ख़ां 1921, मौलाना मुहम्मद अली 1923, डॉ॰ मुख़्तार अहमद अंसारी 1927 व आख़िरी अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आज़ाद 1940-1946 तक रहे। किन्तु दुर्भाग्य है कि आज़ाद भारत में 1947 के बाद आज तक किसी मुसलमान को कांग्रेस अध्यक्ष नहीं बनाया गया। हालांकि कांग्रेस को ताक़त देने के लिए मौलवी मुहम्मद शौकत अली, मुहम्मद अली जौहर, सर आग़ा ख़ां, फ़िरोज़ शाह, हसरत मोहानी, डॉ॰ अंसारी, मुशीर अहमद क़िदवई, सैयद अमीर अली, बी अम्मा, जाफ़र अली, डॉ॰ मुहम्मद अशरफ़, ज़ाकिर हुसैन, फ़ख़रुद्दीन अली अहमद, रफ़ीउद्दीन क़िदवई, मौलाना हफ़ीजुर्रहमान आदि की बहुत लंबी लिस्ट है।

इन्होंने कांग्रेस के लिए लाठियां खायीं, जेल गये और अन्य कांग्रेसियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भारत को जो आज़ादी दिलायी है उसमें आज इनका योगदान भी किसी से कम नहीं है। जहां गांधी जी हैं वहां सरहदी गांधी अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां भी हैं, जवाहरलाल नेहरू हैं, बैरिस्टर आसफ़ अली भी हैं। इंदौर में देशी राज होने से कांग्रेस की शाखा प्रजामंडल थी और उसमें इंदौर के मशहूर मुस्लिम नेता अब्दुर्रऊफ़, सैयद हामिद अली, चौधरी फ़ैज़ुल्लाह, अमीर मुहम्मद ख़ान, अब्दुल हमीद वग़ैरह ने उत्तरदायी शासन की मांग की।

क्रांतिकारियों में जहां चन्द्रशेखर का नाम है वहां अशफ़ाकुल्लाह की क़ुरबानी भी कम नहीं है। जलियावाला बाग़, जहां अंग्रेज़ जनरल डायर ने निहत्थे देशवासियों के ख़ून से होली खेली थी, उसमें आधे से ज़्यादा मुसलमानों के ख़ून की नदी बही थी, जिसमें सभा के सदर अज़मतुल्लाह भी थे। काबुल में पहली आज़ादी सरकार राजा महेन्द्र प्रताप सिंह के नेतृत्व में बनी थी उसके प्रधानमंत्री और सारी योजना का सूत्रधार मशहूर स्वतंत्रता सेनानी बरक़तुल्लाह ख़ां भोपाली थे।

आज़ाद हिन्द फ़ौज नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने क़ायम की, तो सारा पैसा रंगून के प्रसिद्ध सेठ अबू बक्र व उनके साथी अब्दुल करीम सेठ आदि ने लगाया। आज़ाद हिन्द फ़ौज के जनरल शाहनवाज़ थे तो नेताजी के अंगरक्षक अब्दुल रहीम अब्दुल करीम भी थे और इस सेना में काफ़ी तादाद में मुसलमान सिपाही व अफ़सर भी देश के लिए भूखे-प्यासे असम व रंगून की पहाड़ियों में सिर पर कफ़न बांधे शामिल थे।

स्वतंत्रता संग्राम में मुस्लिम महिलाएं जिनमें प्रसिद्ध हज़रत महल का वर्णन तो ऊपर आ ही चुका है बथौर की अज़ीज़न ने 1857 में क्रांतिकारियों में अपने गीतों से और औजस्वी भाषणों से जोश पैदा किया था।

बी अम्मां, जो मौलाना मुहम्मद अली व शौकत अली की मां थीं, जिन्होंने अपने दोनों वीर पुत्रों को इतना उत्साह व जोश भर दिया था कि वे इस महान स्वतंत्रता युग में अमर हो गये। इन दोनों अली ब्रदर से शिमला में डिप्टी सुपरिटेंडेंट अब्दुल मजीद ने अंग्रेज़ों के पक्ष में एक शपथ पत्र हस्ताक्षर कराने के लिए ज़ोर डाला तो बी अम्मां ने परदे से निकलकर उस शपथ पत्र को फाड़ दिया और कहा कि मेरे बेटे देशद्रोही नहीं बन सकते, उन्हें तो मैंने देश आज़ाद करने के लिए पैदा किया है।

बेगम हसरत मोहानी (निशातुन्निसा) 1908 में जब हसरत मोहानी की गिरफ़्तारी हुई, उस वक़्त उनकी एक दूध पीती बच्ची नईमा बहुत बीमार थी, उस वक़्त अंग्रेज़ों ने हसरत मोहानी को गिरफ़्तार किया तो उस वक़्त जो उदार उस बेगम ने सुनाया था, उसे अंग्रेज़ सुनकर दंग रह गये। ये हसरत मोहानी वही हैं जिन्होंने 1921 में हैदराबाद कांग्रेस में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव रखा था। यह उनकी देशप्रेमी पत्नी थी। आज़ादी में इनके कई कारनामे हैं।

बीबी इसमतुस्सलाह पटियाला की एक रईस परिवार कर्नल अब्दुल हमीद ख़ान की पुत्री थीं और इन्होंने भी आज़ादी के आन्दोलन में ख़ूब बढ़-चढ़कर भाग लिया था। आमना कुरैशी जिनके पिता इमाम अब्दुल क़ादिर व पति ग़ुलाम रसूल कुरैशी, जिन्होंने गांधी जी के साथ साबरमती आश्रम में बरसों रहकर देश को आज़ाद कराने में अपनी पूरी ज़िन्दगी वक़्फ़ कर दी। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की पत्नी ज़ुलेख़ा बेगम को बीमार हालत में छोड़कर मौलाना जेल चले गये और 19 अप्रैल 1943 को ज़ुलेख़ा बेगम अल्लाह को प्यारी हुईं। जब मौलाना जेल से छूटे तो जनता ने उनकी कार को हारों से लाद दिया, उनके दिल में उस समय अपनी बेगम ज़ुलेख़ा की याद में डूबे हुए मौलाना पर क्या गुज़र रही थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आख़िर मौलाना जेल से छूटते ही अपनी बीवी की क़ब्र पर गये, फ़ातिमा पढ़ी और अपनी ज़िन्दगी की पुरानी यादों को ताज़ा किया। ऐसी कई बीवियों ने इस देश की आज़ादी के लिए अपने सुहागों की क़ुरबानी दी, बच्चों को क़ुरबान किया जिनके नाम गिनाना बेहद कठिन है।

हमारी पाठ्य पुस्तकें

आसान कहानियाँ	अफ़ज़ल हुसैन		10.00
अख़लाक़ी कहानियाँ – 1	अफ़ज़ल हुसैन		10.00
अख़लाक़ी कहानियाँ – 2	अफ़ज़ल हुसैन		10.00
अख़लाक़ी कहानियाँ – 3	अफ़ज़ल हुसैन		12.00
अख़लाक़ी कहानियाँ – 4	अफ़ज़ल हुसैन	[set 44.00]	12.00
क़ुरआन की बातें–1(बच्चों के लिए)	सय्यद नज़र ज़ैदी		20.00
क़ुरआन की बातें–2(बच्चों के लिए)	सय्यद नज़र ज़ैदी	[set 38.00]	18.00
नेक औरतें–1	मतीन तरिक़ बाग़पती		15.00
नेक औरतें–2	मतीन तरिक़ बाग़पती	[set 27.00]	12.00
नवीन सरल गणित–1	सम्पादन समिति		30.00
नवीन सरल गणित–2	सम्पादन समिति		35.00
नवीन सरल गणित–3	सम्पादन समिति		50.00
नवीन सरल गणित–4	सम्पादन समिति		50.00
नवीन सरल गणित–5	सम्पादन समिति	[set 279.00]	114.00
प्यारे रसूल (सल्ल0)	अफ़ज़ल हुसैन		14.00
सामान्य ज्ञान (भाग–1)	अफ़ज़ल हुसैन		08.00
सामान्य ज्ञान (भाग–2)	अफ़ज़ल हुसैन	[set 18.00]	10.00
सच्चा दीन (पहला भाग)	अफ़ज़ल हुसैन		55.00
सच्चा दीन (दूसरा भाग)	अफ़ज़ल हुसैन		60.00
सच्चा दीन (तीसरा भाग)	मौलाना मुहम्मद यूसुफ इस्लाही		75.00
सच्चा दीन (चौथा भाग)	मौलाना मुहम्मद यूसुफ इस्लाही		80.00

MARKAZI MAKTABA ISLAMI PUBLISHERS

D-307, Dawat Nagar, Abul Fazl Enclave, Jamia Nagar, New Delhi-110025
Phone: 26981652, 26984347, Fax: 26987858
E-mail: mmipublishers@gmail.com Website: www.mmipublishers.net


بسم الله الرحمن الرحيم
ऐ लोगो जो
ईमान लाए हो, (अल्लाह के आगे)
झुको और सजदा करो, और अपने रब
की बन्दगी करो, और अच्छे कर्म करो,
इसी से उम्मीद की जा सकती है कि
तुमको सफलता प्राप्त हो ।
–कुरआन
A Well Wisher
Kolkata

HOLY FAMILY PUBLIC SCHOOL

(AFFILIATED TO C.B.S.E., NEW DELHI)

Class NUR. To Xth

KALWAN, SHERGHATI

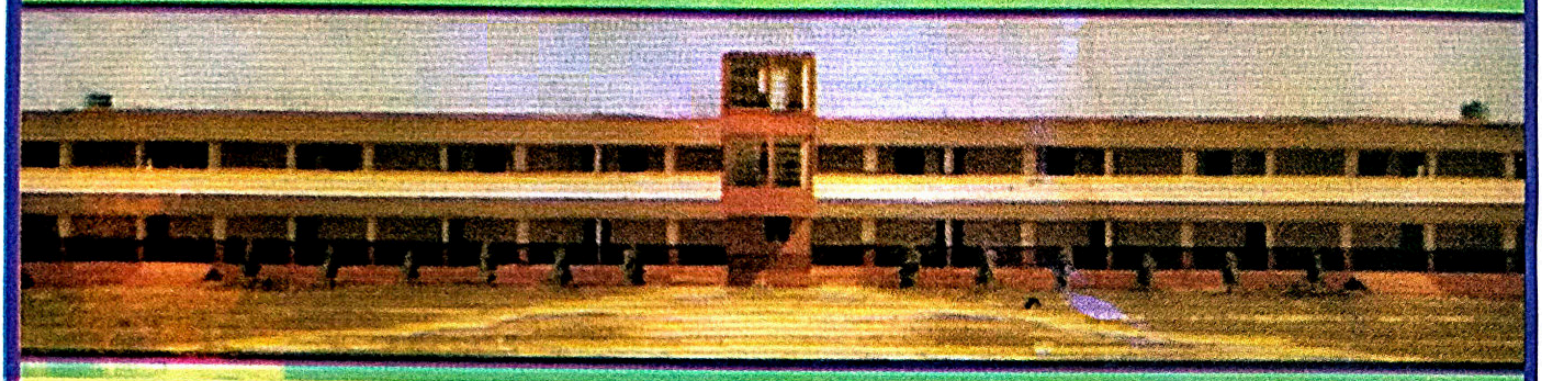

Salient Features :

- Smart Class Facility.
- Computer Lab Facility.
- Spacious and Lush Green Campus in 2 Acres.
- Experienced Learned & Affectionate Teachers.
- Weekly Test for Continuous Evalution of the Students.
- Library Facility with Books & Magazines on all Subjects.
- Well Equipped & Functional Biology, Chemistry, Physics & Math Laboratory.
- Regular Extra Curricular Activities for all round Development of the Student.
- Calm & Peaceful location very suitable & Attractive for Education.
- Physical Development by Sports Activities.
- Transport Facility for Conveyance.
- Generator Facility.

100% C.B.S.E. Result



Registration / Admission
Open For Session 2015-16

Contact Us : 9430674417, 9939287161

अल्लाह ने
गवाही दी कि उसके सिवा
कोई पूज्य नहीं और फ़रिश्तों ने
और उन लोगों ने भी जो न्याय और
संतुलन स्थापित करने वाली एक सत्ता
को जानते हैं, उस प्रभुत्वशाली,
तत्वदर्शी के सिवा कोई
पूज्य नहीं ।
–क़ुरआन

A Well Wisher

(JSR)

ambar
Lifestyle Products

THE WORLD OF
Luxurious
LIVING



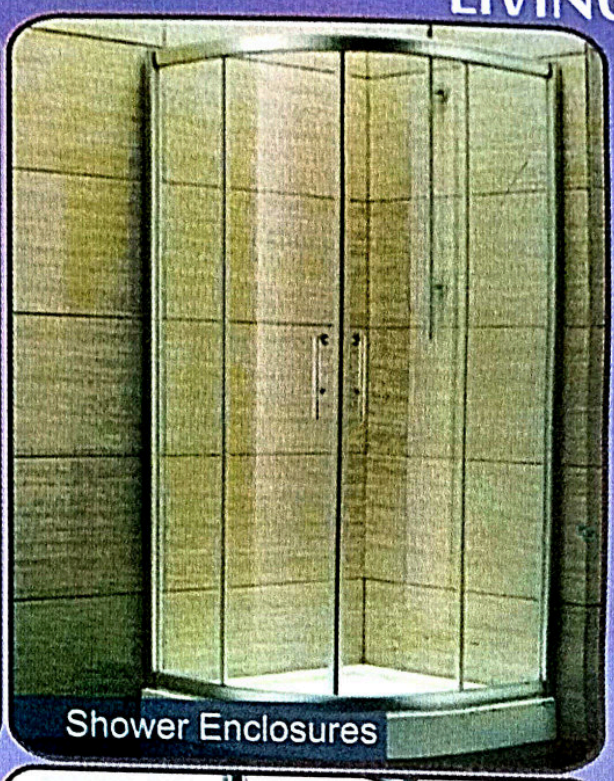





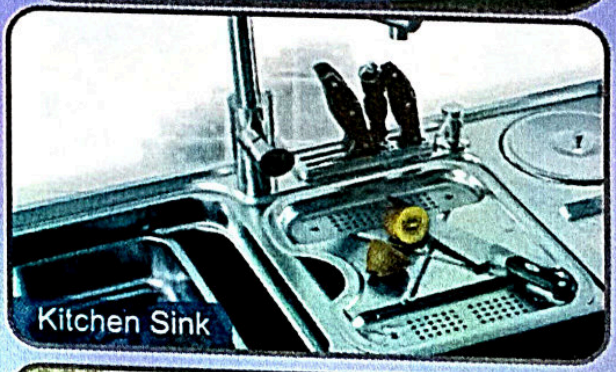





www.ambarlifestyle.com

For More Information Call Customer Care on 09341210407
e-mail us at : customercare@ambarlifestyle.com or ambarlifestyle1@gmail.com
Dealer / Distributor & Project Enquiry Solicited

21, St. Johns Church Road, Fraser Town, Bangalore 560 005

ambar
Lifestyle Products

ऐ लोगो जो ईमान लाए हो,
(अल्लाह के आगे) झुको और
सजदा करो, और अपने रब की बन्दगी
करो, और अच्छे कर्म करो, इसी से
उम्मीद की जा सकती है कि तुमको
सफलता प्राप्त हो ।
(क़ुरआन)

AP

MUHAMMED JAMAL

AZAD PHARMA

B-Sainik Market, Main Road, Ranchi-834001
Phone : 0651-2330144, 2330604 (S)
Mob. : 9334706965, 9835192234



ھولی ویژن پبلک اسکول و ھاسٹل

HOLY VISION PUBLIC SCHOOL

SAMANPURA, PATNA-14

English Medium
C.B.S.E. Curriculum
Islamic Atmosphere
Computer Lab, Library
Contemporary Education
Separate Hostel for Boys & Girls

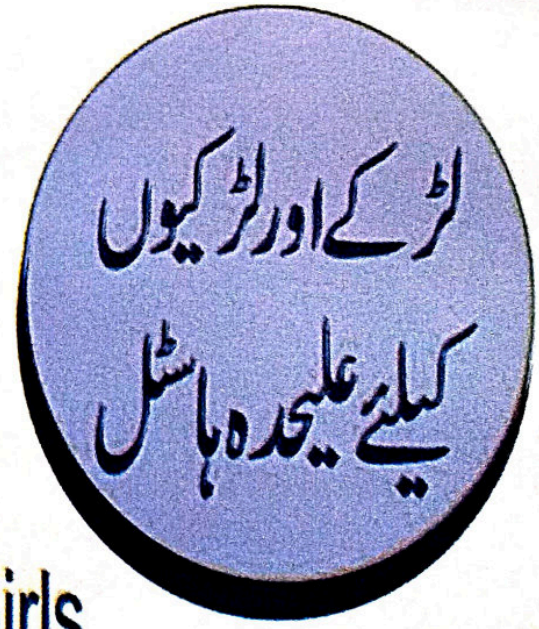

H.O. Samanpura, Patna-14 Ph: 0612-2295242
9430838961, 947008585643 E-ID: hvpssabir@gmail.com
B.O. Lahra, Kishanganj, Ph: 06456-226144 & Powakhali. Thakurganj Mob: 7782983978

Speak English बेझिझक!

Learn Correct English

OXFAME



Yaqub Ashrafi
Director

Spoken & Written English

Phonetics

Group Discussion Personal Interview

Personality Development

Fundamental English

Advance English

Correct Pronunciation



H.O. : Deep Ganga Complex, Near Arvind Hospital, Ashok Rajpath, Patna-4, Call : 7858921174 Visit us : www.oxfame.org

B.O. : Rampur Nahar Road, Sai Chowk, Patna-6, Call : 9308736235

B.O. : Flat No. 201, Anand Vihar Colony, Landmark : Next to Rahmani 30, Anisabad, Patna-800 002 Mob. : 8540975765

قال اللہ تعالیٰ

احل اللہ البیع وحرم الربوا (القرآن)

اللہ تعالیٰ نے تجارت کو حلال کیا ہے اور سود کو حرام فرمایا۔

HALAL
INVESTMENT & FINANCE

Eat Halal Earn Halal

HALAL
INVESTMENT & FINANCE

Best Concept For Bright Future & Best Economic Conditions

Nihal Co-Operative Credit Society Ltd.

Eat Halal Earn Halal
INTEREST FREE INVESTMENT & FINANCE

Regd No. TNA/(TNA)/RSR/1029 Year : 1998/99
Regd. Office : 3rd Floor, Nihal House,
N. H. School Road, Opp. Ideal Tower, Mira Road (E)

Chairman
Janab Imammuddin Nihaluddin Shaikh

Contact Us : 9022665544, 9869641648

With Best Wishes From :



QUALITY FOODS

Seafood Processors & Exporters
AN ISO 9001 : 2008 COMPANY

FACTORY
PLOT NOS. 5B 39 & 5B 50A, CUNCOLIM INDUSTRIAL ESTATE,
CUNCOLIM, SALCETE, GOA-403 703
TEL. : 91 832 2865610/11/12, FAX : 832 2865609
E-mail : qualityfoods@sancharnet.in/qualityfoods@rediffmail.com

QUALITY EXPORTS

SEAFOOD PROCESSORS & EXPORTERS

FACTORY

Plot Nos. 5B 64, 65 66 & 67 Cuncolim Industrial Estate
Cuncolim, Salcete, GOA-403 703
E-mail : qualityexportsgoa@yahoo.com/mmigoa@yahoomail.com

رَبِّ زِدْنِی عِلْمًا

اپنے بچوں کو ایسی تعلیم دیجیے

جو انھیں اس دنیا میں سر اٹھا کر جینے کا سلیقہ سکھائے

اور آخرت میں جنّت الفردوس کا وارث بنائے!



اسلامی ماحول میں عصری تعلیم

کے لیے

الحراء پبلک اسکول شریف کالونی، پٹنہ

Contemporary Education in Islamic Atmosphere

AL-HIRA PUBLIC SCHOOL

A unit of Iqra Educational & Welfare Trust

★ CLASSES-I TO VIII & HIFZ
★ ENGLISH MEDIUM
★ CBSE CURRICULUM
★ HOSTEL FACILITY

SHARIF COLONY, PATNA - 800006
Ph. No.: 0612-2660644 & 6531127
www.alhirapatna.net email: alhirapatna@gmail.com



With Best Compliments from :

MAKING THE
[EXTRA]ORDINARY

LIS (INDIA)
CONSTRUCTION CO. PVT. LTD.

BUILDERS & DEVELOPERS

Regd. office: A/2, Swati Apartment, Juhu Lane, Andheri (W), Mumbai - 400 058
Ph.: 2625 5702-34 Fax: 262 88474 Email: lis.co.in.@gmail.com

Cell no:9822150053(R.K)
9822100083(R.K)
9822163036(J.K)
8600825867(S.K)
Office no: 08326450183

KHAN BROS



M/s. GOA BARREL SUPPLIERS
M/s. HINDUSTAN CONTAINERS
M/s. GOA GUNNY TRADERS
M/s. JAY KAY PLASTICS

PLOT: S/2, COLVALE INDUSTRIAL ESTATE-COLVALE-MAPUSA- GOA
(Dealers in all industrial Scrap materials & reconditioning of input materials)





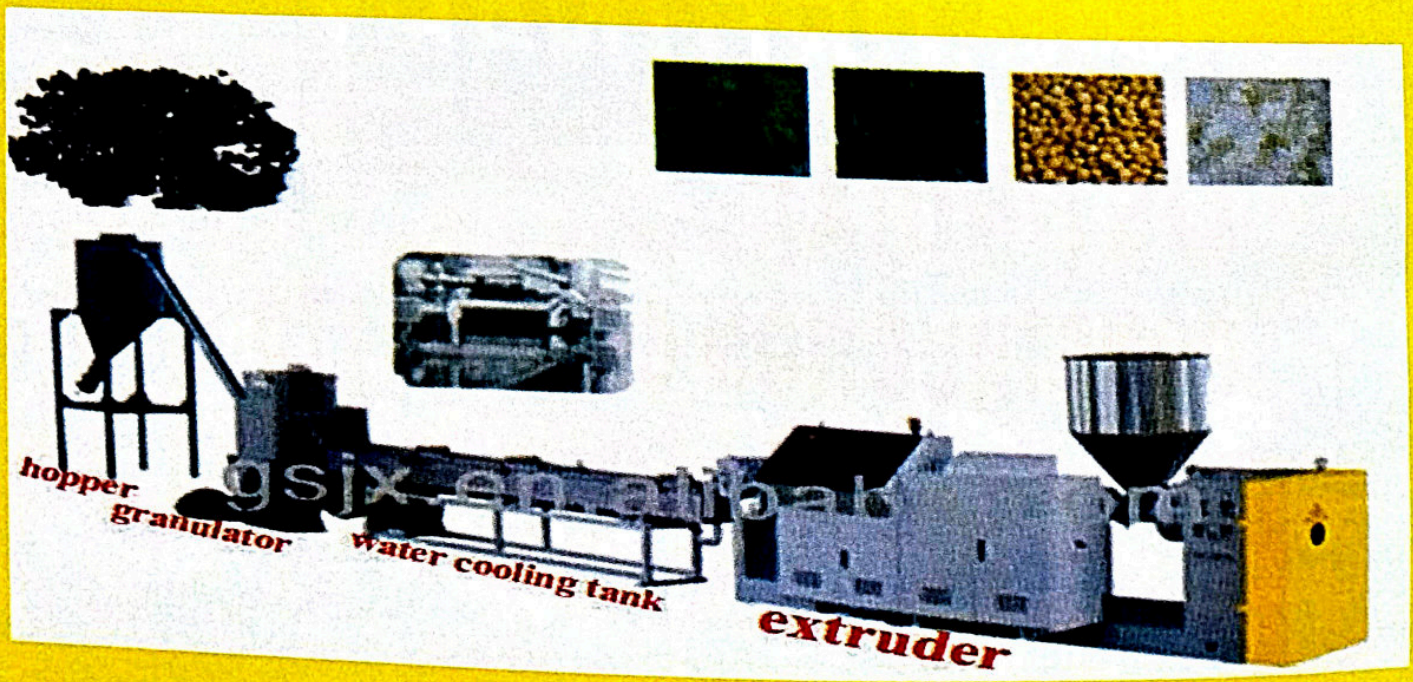



شمال مشرقی ہند میں علم وادب اور انفارمیشن ٹکنالوجی کا ایک ممتاز تعلیمی وفلاحی رجسٹرڈ ٹرسٹ

مرکزِ ادب و سائنس

تعلیمی و فلاحی رجسٹرڈ ٹرسٹ، رانچی



را.ا.سُ.پ्री.सं NIELIT





چند حقائق:

چار شعبے: (الف) تقابلی مذاہب، (ب) ادبیات
(ج) کیریر گائڈنس اور ٹریننگ، (د) تحقیقی اشاعت

- اندرا گاندھی نیشنل اوپن یونیورسٹی کے کورسیز: CIT,BCA,MCA,MBA وغیرہ۔
- قومی کونسل برائے فروغ اردو زبان وزارت تعلیم حکومت ہند کے کورسیز: CABA-MDTP نیز NIELIT چنڈی گڑھ، وزارت انفارمیشن ٹکنالوجی، حکومت ہند۔
- مولانا آزاد نیشنل اردو یونیورسٹی (مانو کوڈ 158) کا نٹاٹولی چوک، ایم۔اے (اردو انگریزی، تاریخ)، ٹیچ انگلش، صحافت وابلاغ عامہ، ٹورزم مینجمنٹ، بی۔اے وغیرہ۔
- NCPUL یک سالہ الیکٹرونکس ریپیر اینڈ مینٹینینس کورس (DREAM)

قائم شدہ چند اہم ادارے:

- ★ (اگنو) اندرا گاندھی نیشنل اوپن یونیورسٹی، کوڈ (0531-D) کا نٹاٹولی چوک۔
- ★ (مانو) مولانا آزاد نیشنل اردو یونیورسٹی، کوڈ (158) کا نٹاٹولی چوک۔
- ★ سجاد کمپیوٹر ٹریننگ اینڈ گائڈنس سنٹر (SCTGC) بریاتو۔
- ★ سجاد انسٹی ٹیوٹ آف انفارمیشن ٹکنالوجی (SIIT) کا نٹاٹولی۔
- ★ نائلٹ 'او' اور 'اے' لیول اکریڈیٹیڈ انسٹی ٹیوٹ
اکریڈیشن نمبر: 'O-2037' اور 'A-2136'





پروفیسر احمد سجاد کی تازہ ترین تصانیف:

☆ بندۂ مومن کا ہاتھ ☆ جھارکھنڈ میں اردو نثر و شاعری کی سمت و رفتار 1960ء کے بعد ☆ جنوبی ہند کا ایک علمی و ادبی سفر ☆ کیا برصغیر کی اردو آبادی عذاب مسلسل کا شکار ہے؟ ☆ اکیسویں صدی کا چیلنج اور ملی تعلیمی ایجنڈا ☆ اردو زبان و ادب کے فروغ وارتقا میں اسلامی تہذیب کا کردار

رابطہ: ★ سنڈیکیٹ لین، عقب جے۔جے سیلس، کانٹاٹولی چوک، رانچی۔834001 (جھارکھنڈ)
فون: 0651-2532060,2530522 (موبائل) 09431587148
★ 2K/3، بریاتو ہاؤسنگ کالونی، رانچی۔834009 (جھارکھنڈ)
فون: 0651-2543838,2540534 (موبائل) 09835136361
ای میل markazadab@yahoo.com، ویب سائٹ: http://www.markazadab.org

RASHTRIYA TECHNICAL® INSTITUTE

AN ISO 9001 : 2008 CERTIFIED INSTITUTE

देश-विदेश में नौकरी हेतु

भारत का विश्वसनीय प्रशिक्षण केन्द्र

OPERATING TRADES



JCB OPERATOR



FORKLIFT OPERATOR



EXCAVATOR OPERATOR

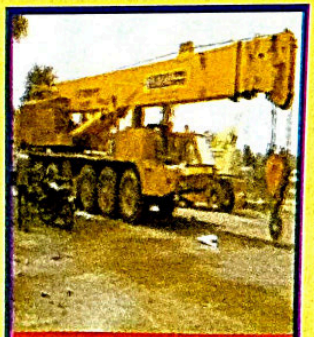

MOBILE CRANE OPRT.

- GRADER OPERATOR
- TOWER CRANE OPERATOR

INTERNATIONAL COURSES

- nebosh - HSW
- iosh
- OSHA
- NDT Level-II

OTHER COURSES

- Plant Electrician
- Civil QC / Foreman
- Plant AC Technician
- Material Management
- Mechanical Technical
- Quantity Surveyor
- Auto CAD & Draftsman
- Pipe Fitter Fabricator

JOB ORIENTED COURSES



INSTRUMENT TECH.

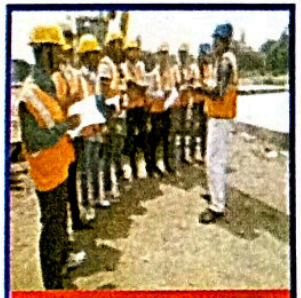

INDUSTRIAL SAFETY



LAND SURVEYOR



QUALITY CONTROL (QA/QC)

Ph: 0657-2364067, 9334858068, 9334617411, www.rtijsr.com

Office : Near Hanuman Mandir, Opp. Gandhi Maidan, Azadnagar, Mango, Jamshedpur (Tata), Jharkhand.

SZ AHMAD HOSPITAL

Run, By Rabia Anjum Health & Education Welfair Socity, Regd. No-1131 (2007/08)

At-Karge (Charima) Nair, Nagjua Railway Station, P.O-Sero, P.S-Narkopi, Ranchi (JH) 835325

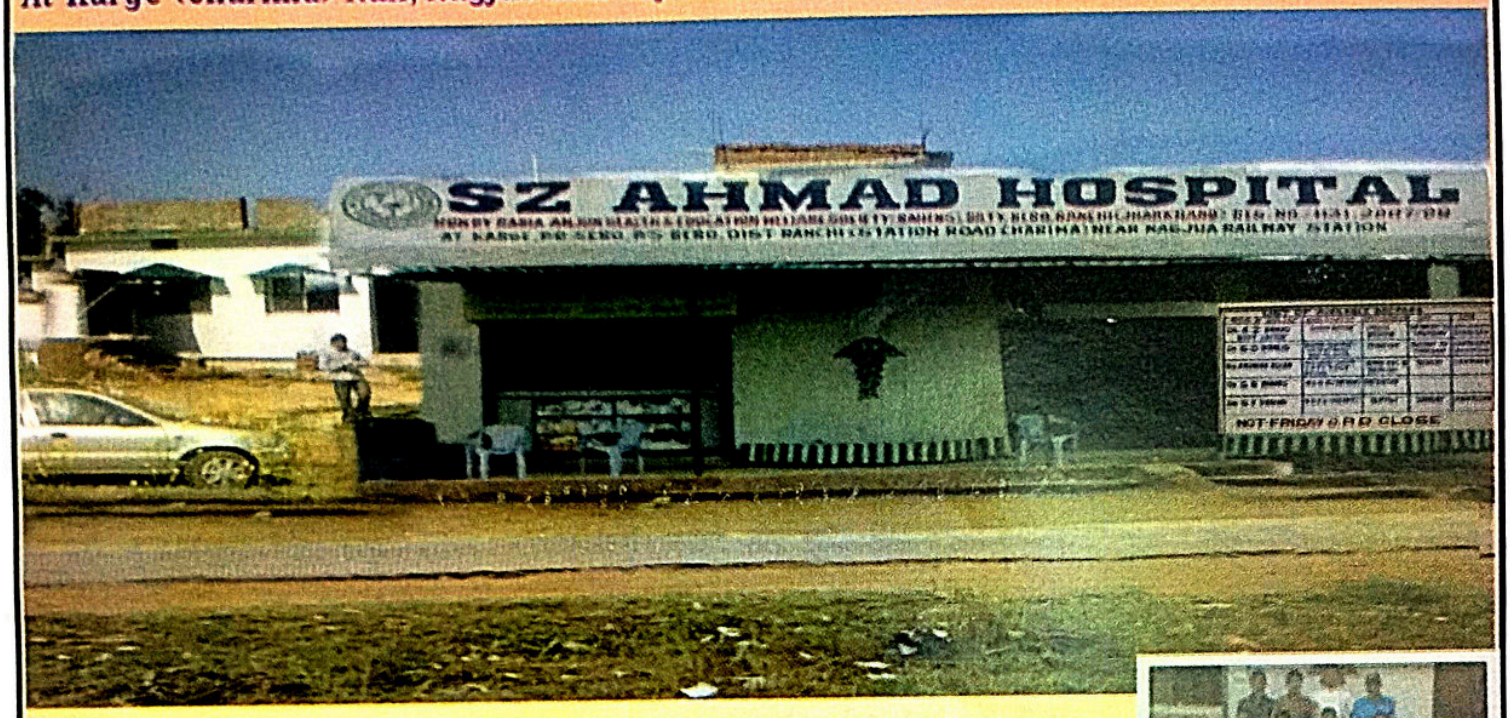

एसजेड अहमद हॉस्पिटल करगे जो रांची शहर से 60 किमी॰ एवं लोहरदगा से 25 किमी॰ की दूरी पर है जहां 20 किमी॰ की परिधि में कोई अस्पताल नहीं है ।

उद्देश्य

ग्रामीण एवं भ्रमित जनता, जो सदियों से बीमारी को भू-प्रेत जादू-टोना मानकर इलाज के अभाव में काल के गाल में समा जाते हैं या इलाज के लिए तैयार भी हुए तो अप्रशिक्षित चिकित्साभ्यार्थि (Quack) के चक्कर में पड़ कर अपनी मोटी रक़म बर्बाद करने के बाद भी उचित चिकित्सा लाभ नहीं प्राप्त कर पाते हैं ऐसी परिस्थिति में लोगों को भ्रम से निकाल कर साफ़-सुथरा एवं विश्वसनीय चिकित्सा उपलब्ध कराने की कोशिश ।

वर्तमान में उपलब्ध सुविधाएं

- **चिकित्सक :** शिक्षित एवं अनुभवी चिकित्सकों की एक टीम ।
- **मेडिकल स्टोर :** यूनानी, आयुर्वेदिक, एलोपैथिक दवाओं का पर्याप्त भंडार ।
- **पैथोलोजी :** ख़ून, पेशाब, विर्य एवं आवश्यक चिकित्सकीय जांच की सुविधा उपलब्ध।
- **बैतुलमाल :** ग़रीब-लाचार व्यक्तियों की मदद एवं मुफ़्त इलाज ।
- **आउटडोर/इंडोर :** रोगी को एडमिट होकर भी चिकित्सकीय लाभ प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध ।
- **O.T. :** Operation theatre









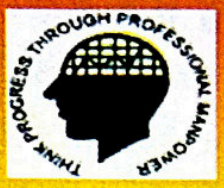

A. A. SYED
Chairman

APPLE TRAVELS

INTERNATIONAL HRD CO.
Authorised by Govt. of India as International Recruitment Co.



68, DCB BANK BLDG., 3RD FLOOR,
PALTON ROAD, CRAWFORD MARKET,
MUMBAI-400001 (INDIA)
Phone : 0091-22-6631-1733, 6631-6946
0091-22-6635-5519, 6610-7869,
Fax : 0091-22-66310937
Mobile : 0091-9820673953
E-mail : hr@appleconsultancy.com
Website : www.appleconsultancy.com

मौलवी बाक़र की क्रान्तिकारी पत्रकारिता

■ मुहम्मद इलियास हुसैन

1857 के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम का प्रथम शहीद पत्रकार मौलवी मुहम्मद बाक़र ने 'देहली उर्दू अख़बार' के नाम से एक साप्ताहिक पत्र 1836 ई॰ प्रकाशन आरंभ किया । यह दिल्ली से प्रकाशित होनेवाला उर्दू का पहला और देश का तीसरा उर्दू अख़बार था । इससे पहले कोलकाता से पंडित सदासुखलाल के संपादन में, गुरबचन चंदन के अनुसार 27 मार्च 1822 ई॰ को 'जामे-जहांनुमा' (जिसका अर्थ है–विश्वदर्पण) निकला और उसके बाद कुछ ही महीनों के अन्तर से फ़ारसी अख़बार 'आईना-ए-सिकन्दरी' 1822 में ही मुम्बई निकला । आईना-ए-सिकन्दरी ने 1834 ई॰ से उर्दू परिशिष्ट के रूप में उर्दू में समाचार आदि छापना शुरू किया ।

मौलवी मुहम्मद बाक़र के सुपुत्र मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने अपनी मशहूर किताब 'आबे-हयात' में 'देहली उर्दू अख़बार' की प्रकाशन-तिथि 1836 लिखी है; हालांकि उर्दू पत्रकारिता के कई इतिहासकारों ने इसकी प्रकाशन-तिथि 1837 बताई है । मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' लिखते हैं –

"1836 ई॰ में उर्दू का अख़बार दिल्ली से जारी हुआ और यह इस ज़बान में पहला अख़बार था कि मेरे दिवंगत पिता की क़लम से निकला ।" (आबे-हयात, 1950)

'देहली उर्दू अख़बार' अपने समय का सजग और क्रांतिकारी अख़बार था । तत्कालीन भारत की दो दुनियाओं (शोषक और शोषित, शासक और शासित) का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता किया है–जिनमें से एक तेज़ी से उभरती हुई नज़र आती है और दूसरी डूबती हुई ।

'देहली उर्दू अख़बार' देश पहला क्रान्तिकारी अख़बार है, जिसने अंग्रेज़ी-शासन के ख़िलाफ़ आमजन के दिलों में विरोध की चिन्गारी सुलगाई । इस अख़बार ने लोगों के लोगों के अन्दर आज़ादी का जज़्बा पैदा किया और इसे दूर-दूर तक फैलाया ।

व्यापार के लिए भारत आई ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपनी कूटनीति, षड्यंत्र और बाहुबल के ज़रिये भारत पर अधिकार जमा लिया और यहां के राजे-महाराजे, नवाब और

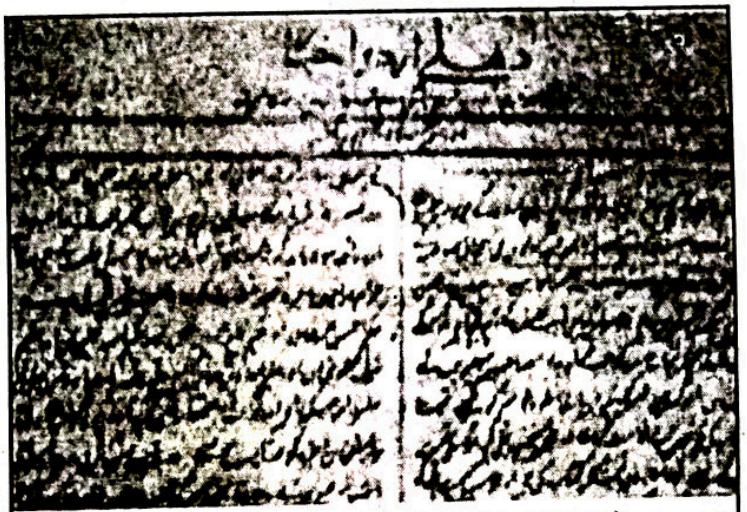

देहली उर्दू अख़बार (1936-1857)

बादशाह आपसी फूट और झगड़े के कारण अंग्रेज़ों के वज़ीफ़ाख़ोर गुलाम हो गए और जनता की क्या बिसात, उसकी क़िस्मत तो प्राय: राजा या शासक की क़िस्मत के साथ ही लगी-बंधी होती है । सत्ता हासिल करने के बाद अंग्रेज़ों ने यहां की जनता का हर प्रकार से शोषण शुरू कर दिया ।

शोषण के जितने प्रकार हो सकते थे, उसके हर रूप को अंग्रेज़ों ने भारतीयों पर आज़माया । जनता अपमान, शोषण और अत्याचार की चक्की के बीच कराहने लगी । फलस्वरूप भारतवासियों के दिलों में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ विरोध-भाव पैदा हो गया, जिसमें दिल्ली उर्दू अख़बार ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी । भारतवासियों के दिल में अंग्रेज़ों के प्रति नफ़रत और आक्रोश का लावा प्रतिदिन बढ़ता गया । यह मई का महीना था और 18587 साल कि नफ़रत का वह लावा, जो दिलों में बहुत दिनों से पक रहा था, अचानक फट पड़ा । अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ बग़ावत का सिलसिला चल पड़ा । इसकी शुरुआत मेरठ से हुई और देखते-देखते दिल्ली इसका केन्द्र बन गयी इसी तूफ़ान की आशंका जताते हुए हातिम ने कहा था–

गर्म है जुल्म का बाज़ार खुदा ख़ैर करे
कहीं मज़्लूमों के रोने से न आए तूफ़ां

1857 की क्रांति के दौरान और उसके बाद भारतवासियों के विरुद्ध अंग्रेज़ों का जो दमन-चक्र चला, उसमें हज़ारों लोग शहीद हुए और दिल्ली की गलियां शहीदों के ख़ून से

लथपथ हो गयी, जिसका वर्णन मीर 'दर्द' ने दर्द भरे लहजे किया था–

'हर गुल है इस चमन में
साग़र बिखरा लहू का ।'

दिल्ली में हर तरफ़ ख़ून-ख़राबा का बाज़ार गर्म था । दिल्ली की दिल को दहलाने देने वाली परिस्थिति पर ग़ालिब ख़ून के आंसू शब्दों में बहाते नज़र आते हैं–

चौक जिसको कहें वो मक़तल है
घर बना है नमूना ज़िन्दां का

1857 की जनक्रांति में अंग्रेज़ों किये गये भयंकर दमन और अत्याचार के कारण उर्दू अख़बारों की संख्या में बहुत गिरावट आ गयी । इसकी संख्या 1853 ई॰ में 35 थी, जो 1857 में घटकर 12 रह गयी । जनक्रांति के फूट पड़ने के बाद ही उत्तर भारत के बहुत-से अख़बारों को अंग्रेज़ों ने ज़ब्त कर लिया और उनके प्रकाशन पर रोक लगा दी गयी और जनक्रांति की असफलता के बाद मौलवी मुहम्मद बाक़र को अंग्रेज़ों ने गोली से उड़ा दिया ।

मौलवी मुहम्मद बाक़र हिन्दू-मुस्लिम एकता के बहुत बड़े पक्षधर थे । जनक्रांति को कमज़ोर करने के उद्देश्य से अंग्रेज़ों ने दोनों समुदायों के बीच नफ़रत के बीच बोने शुरु किये तो 'देहली अख़बार' ने उन्हें चुनौती दी । 4 जून 1857 को मौलवी साहब ने जनता को अंग्रेज़ों की साज़िश से आगाह किया और उनसे एकजुट रहने की अपील की।

पहली जंगे-आज़ादी में देहली अख़बार ने बड़ा ही सक्रिय और महत्त्वपूर्ण रोल अदा किया । संपादक की क़लम तलवार बनी गयी और शब्द देश-प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए बैनर बन गये । देश की आज़ादी के लिए अपनी जान तक देने से भी वे नहीं चूके ।

मौलवी मुहम्मद बाक़र, जिनके बाप-दादा मुहम्मद शाह के शासनकाल में ईरान से भारत आए थे, दीनी (धार्मिक) शिक्षा पूरी करने के बाद दिल्ली कॉलेज में आगे की पढ़ाई करने गये । पढ़ाई पूरी करने के बार वहीं फ़ारसी के अध्यापक नियुक्त हुए । कॉलेज में रहते हुए उनकी दोस्ती प्रिंसिपल टेलर से हो गयी । उन्होंने मिस्टर टेलर को उर्दू और फ़ारसी पढ़ाई । फिर राजस्व विभाग में तहसीलदार की नौकरी की। सरकारी नौकरी में रहते हुए उन्होंने दिल्ली कॉलेज का प्रेस प्रिंसिपल टेलर के सहयोग से ख़रीद लिया । यह प्रेस पाठ्यपुस्तक छापने के लिये लगाया गया था, लेकिन जब पाठ्यपुस्तकों की मांग घटने लगी तो घाटे से बचने के लिए प्रेस बन्द कर दिया गया था । मौलवी मुहम्मद बाक़र ने उसी प्रेस से 'देहली उर्दू अख़बार' निकाला ।

उनके पिता मौलाना अकबर अली अपने समय के बहुत बड़े आलिम और धार्मिक विद्वान थे । उनकी इच्छा थी कि बाक़र धार्मिक शिक्षा दे और इसके प्रचार-प्रसार में लग जाये । उन्होंने अपने पिता की इच्छा का सम्मान करते हुए नौकरी छोड़ दी और धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार में लग गये । लेकिन वह कुछ नया करना चाहते थे । इसलिए जब 1836 ई॰ में अंग्रेज़ अधिकारियों ने प्रेस पर से पाबंदी हटा ली तो उन्होंने 'देहली उर्दू अख़बार' का प्रकाशन आरंभ किया, जिसको ख़बरों, पत्रों और लेखों की भाषा, तथ्यों, संपादन और प्रस्तुति की दृष्टि से अत्यन्त कुशलता के साथ सजा-संवारकर बहुत ही मनमोहक रूप में मंज़रे-आम पर लाया जाता था ।

देहली उर्दू अख़बार अपने समय की दृष्टि से एक पूरा अख़बार था, जिसमें पाठकों की दिलचस्पी की हर क़िस्म की ख़बरें छापी जाती थीं । दुनिया भर की ख़बरें, भारतीय राज्यों और शहरों की ख़बरें, क़िला मुअल्ला की गतिविधियां, ईस्ट इंडिया की जीतों की ख़बरों के अतिरिक्त सामाजिक, शैक्षिक, साहित्यिक, व्यापारिक, अदालतों की ख़बरें–हर प्रकार की ख़बरें इसके पन्नों पर नज़र आती हैं । उस ज़माने में ख़बर हासिल करने के सीमित साधनों के बावजूद अख़बार के संपादक ने अपनी बुद्धि और बेहतरीन संपादन-योग्यता को काम लाते हुए अख़बार को सूचना प्रदान करने का अत्यन्त प्रभावशाली साधन बना दिया ।

डॉ॰ ताहिर मसऊद के अनुसार, यह अख़बार संभवत: फ़रवरी 1837 में पहली बार प्रकाशित हुआ होगा । इस साप्ताहिक ने अपनी 21 साल के निरंतर प्रकाशन के दौरान तीन बार अपना नाम बदला । 1837 ई॰ में यह 'अख़बारे-देहली' के नाम से प्रकाशित हुआ; मई 1840 में इसका नाम 'देहली उर्दू अख़बार' हो गया और अंत में जंगे-आज़ादी छिड़ी तो बादशाह की हिमायत में तत्कालीन बादशाह मुहम्मद शाह ज़फ़र के नाम पर 12 जुलाई 1857 को इसका नाम 'अख़बारुल-ज़फ़र' हो गया । नया नाम धारण करने के बाद इस अख़बार का तेवर और और तीख़ा हो गया ।.अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ इसने निडर भाव पहले से ज़्यादा आग उगलना शुरू

कर दिया । ऐसा लगता था कि यह अंग्रेज़ी-सत्ता को जला कर रख देगा ।

आज़ादी की पहली लड़ाई में शहीद होने वाले पहले पत्रकार 'देहली उर्दू अख़बार' के संपादक मौलवी मुहम्मद बाक़र थे, जिन्हें अंग्रेज़ों ने भारतीय जनता को बग़ावत पर उकसाने और आमादा करने के आरोप में 16 सितम्बर 1857 को सरेआम गोली से उड़ा दिया । बग़ावत को हवा देने के जुर्म में मौलवी मुहम्मद बाक़र को गोली से उड़ा दिया गया । उनके पुत्र मुहम्मद हुसैन आज़ाद भी अंग्रेज़ी सरकार की नज़र में मुजरिम थे । इसलिए वह दिल्ली से फ़रार हो गए और बरसों इधर-उधर छिपते फिरते रहे और आख़िर में 1864 ई॰ में लाहौर में शिक्षा विभाग में नौकरी कर ली ।

जंगे-आज़ादी में अंग्रेज़ी हुकूमत को भारतीय उपमहाद्वीप से जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए देहली उर्दू अख़बार नंगी तलवार बन गया था । अख़बार ने स्वतंत्रता-सेनानियों को 'मुजाहिदीन' और 'जंगे-आज़ादी' को 'जिहाद' के नाम से संबोधित किया है और उनको हर प्रकार का समर्थन दिया है ।

मौलवी मुहम्मद बाक़र की गिनती उन पत्रकारों के उस वर्ग में होती है जो 'मक़सदी सहाफ़त' (उद्देश्यपरक पत्रकारिता) करते थे । उन्होंने संपादक के कर्तव्य शीर्षक लेख में लिखा है कि अगर एडीटर झूठी और बेबुनियाद ख़बरें छापेंगे तो पढ़ने वालों का अख़बार पर से विश्वास उठ जाएगा और यह उनकी गरिमा के विपरीत बात होगी । अख़बार आमजन की नैतिक हालत को सुधारने का एक प्रभावशाजली ज़रिया है और यह मक़सद तभी हासिल हो सकता है जब ख़ुद एडीटर का अपना व्यक्तित्व अनुकरणीय हो । एडीटर ही क्यों किसी भी संस्था के अधिकारियों पर

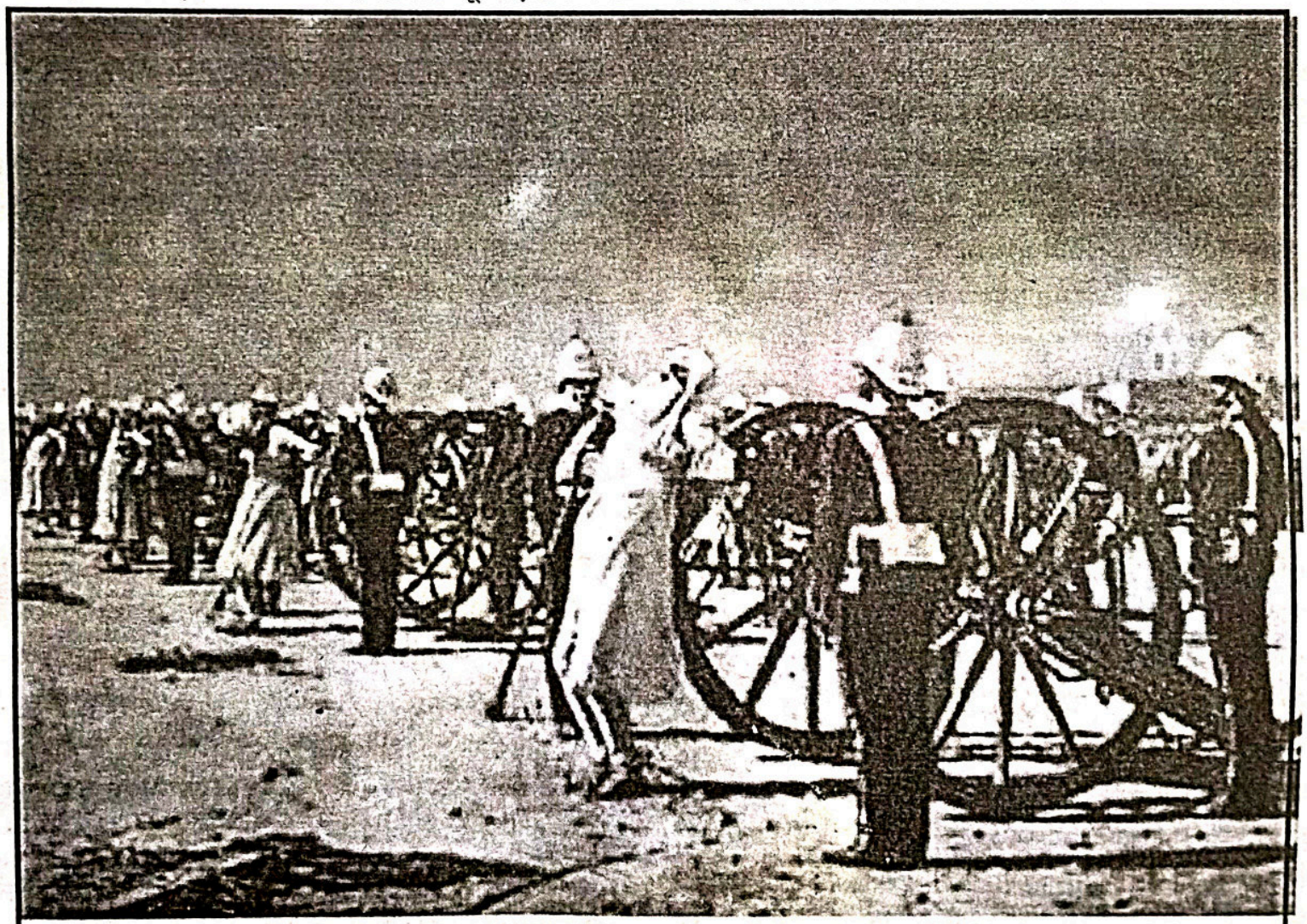

मौलवी मुहम्मद बाक़र को 16 सितम्बर 1857 को सरेआम गोली से उड़ा दिया गया था । उनके साथ दूसरे बहुत-से उलमा और आमजन को भी अंग्रेज़ों की दरिंदगी का शिकार होना पड़ा था ।

(रूसी कलाकार द्वारा बनाया गया चित्र)

यह बात लागू होती है । उन्होंने लिखा है कि कोई एडीटर अपने पढ़ने वालों से उनकी नैतिक दशा में परिवर्तन की उम्मीद तब नहीं कर सकता है, जब तक कि खुद उसका चरित्र उस सिलसिले में प्रभावशाली न हो । उसके चरित्र का विरोधाभास तो खुद उसके चरित्र को हास्यास्पद बनाएगा । मौलवी मुहम्मद बाक़र के विचार में, अख़बार का सर्वप्रथम कर्तव्य सच्चाई को बेनक़ाब करना है । इसलिए उन्होंने एडीटरों को मनगढ़ंत और बदनीयती पर आधारित ख़बरें भेजनेवाले संवाददाताओं से होशियार रहने का परामर्श दिया ।

उनकी पत्रकारिता बेमिसाल थी । उन्होंने हमेशा ईमानदारीपूर्वक अपने कर्तव्यों का निवाह किया । अपने अख़बार के द्वारा अंगेज़ों से लोहा लेते रहे । यहां ख़बरों के कुछ नमूने पेशे ख़िदमत हैं–

''सुना गया है कि हफ़्ते बीच इलाक़ा पहाड़ी भोजला के एक लड़का ग्यारह-बारह बरस का बेजुर्म व बेक़सूर बेख़बर रात के वक़्त हलाक हुआ ।''

(देहली उर्दू अख़वार, 21 अगस्त 1840)

अख़बार अपने पाठकों को देश-दुनिया के हालात से अवगत के लिए दिन-रात एक करता था । वह दूसरे अख़बारों से ख़बरें लेता तो ज़रूर था, लेकिन ख़बरें नक़ल करते समय बहुत कड़ी मेहनत करता था । किसी घटना की पूरी हक़ीक़त को पेश करने या दो अलग-अलग ख़बरों से एक नतीजा निकालने के लिए अख़बारों से ख़बरें जमा करके उसे अपने अन्दाज़ में पेश करता था । मिसाल के तौर पर हैदराबाद दकन की एक ख़बर देखिए, जिसमें अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा निज़ाम हैदराबाद से नागौर ज़िला छीनने की बात कही गई है । देखिए–

''साहबे-अख़बार इंग्लिश रक़म फ़रमाते हैं कि मक़ामे-मज़कूर में हंगामा-ए-कश्तो-ख़ून और डकैती व ज़ुल्म और बेबन्दोबस्ती का बदस्तूर गरम है और 'अख़बारे-मदरास इस्पेक्ट्रेट' से वाज़ेह है कि ओज़ मुबालिग़ ख़ातिर सरकार अज़्मत मदार के नवाब निज़ामुल-मुल्क बहादुर से अज़ला नागौर लेकर ममालिके मक़्बूज़ा सरकारे -अंग्रेज़ी में शामिल किए जाएंगे ।'' (देहली उर्दू अख़बार, जुलाई 1840)

ईसाई मिशनरीज़ ने भारत-भूमि पर क़दम रखते ही अपने पादरियों की मदद से धर्मांतर का धंधा शुरू कर दिया । देश में धम-परिवर्तन की घटनाएं अक्सर घटने लगीं । इस पर अख़बार ने कड़ी टीका-टिप्पणी की । अख़्बार ने पादरियों के हाथों मुसलमान और हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन की ख़बरें छापीं । यह क्रांति के अनेक कारणों में एक धर्मांतर भी था । इसका एक पेशे-ख़िदमत है–

''आदरणीय महोदय (लार्ड बिशप) इस हफ़्ते में यहां आए, कर्नल ऑस्कर की कोठी में उतरे । जुमे दिन गिरजा हुआ, बहुत साहब लोग गये, कहते हैं कि आदमी हिन्दू और मुसलमान ने मज़हबे-मसीह इख़्तियार किया, उनमें तीन ब्राह्मण रहनेवाले सोहनीपत (सोनीपत) के और दो हिन्दू क़ौम के और तीन मुसलमान थे ।''

(देहली उर्दू अख़बार, 8 मार्च 1840)

धर्मांतर की घटनाओं ने भारतवासियों के दिलों में यह बात गहरे पैठ गयी कि अंग्रज़ी हुकूमत पूरे भारत को ईसाइयत के रंग में रंग देना चाहती है ।

1857 की क्रांति को जन्म देने में उर्दू पत्रकारिता का बहुत बड़ा योगदान था । इसलिए सबसे बड़ा झटका इसी को लगा । यह संग्राम जिसे अंग्रेज़ों ने ग़दर (बेवफ़ाई) और उर्दू अख़बारों ने जंगे-आज़ादी और जिहाद का नाम दिया है, ईस्ट इंडिया कम्पनी से सत्ता छीनने की आख़िरी भरपूर कोशिश थी, जो असफल हुई ।

क्रांति सर्वप्रथम अंग्रेज़ी कमान के मातहत देशी फ़ौजियों में फूटी और उसका कारण इस अफ़वाह का फैल जाना था कि उन्हें जो राइफ़लें दी गयी हैं, उनके कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगी हुई है । चूंकि कारतूस को इस्तेमाल करने से पहले दांतों से काटना पड़ता था । इसलिए हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों ने इसे अपनी धार्मिक भावना का अपमान समझा और घृणा की गंभीर अनुभूति के नतीजे में अराजकता का फैल जाना स्वाभाविक कारण था । देखा जाए तो यह मसला इतना पेचीदा नहीं । थोड़ी-सी हिकमत और बुद्धिमानी के बल पर इसपर क़ाबू पाया जा सकता था, लेकिन असल में यह एक चिंगारी थी, जो बारूद-भंडार में भड़की और देखते-देखते इसके शोले आसमान से बातें करने लगे ।

कम्पनी अपने छल-छद्मों से एक सदी से भारतवासियों की दौलत लूट कर ब्रिटेन भेज रही थी, जिसके नतीजे में यहां की अर्थव्यवस्था की कमर टूट कर रह गयी थी । काग-धंधा, व्यापार और उद्योग-धंधे पर अंग्रेज़ों का क़ब्ज़ा

था । गुलाम जनता बेरोज़गारी का शिकार थी, दाने-दाने का तरसती थी । दिल्ली की गद्दी पर बैठे निर्बल और असहाय वेतनभोगी बादशाह और उनके कारिन्दों की हालत भी बहुत पतली हो चुकी थी । अंग्रेज़ी हुकूमत के समर्थकों, जिनमें कुछ गिने-चुने लोग ऐसे भी थे जो अंग्रेज़ों को अवतार के रूप में देखते थे और मानते थे कि अंग्रेज़ उन्हें मुक्ति दिलाने भारत आये हैं, की चांदी थी, लेकिन उनके विरोधी, विशेषकर बादशाह और उनके नौकर-चाकर अंग्रेज़ों की आर्थिक मदद के मुहताज होकर रह गए थे और अंग्रेज़ और उनके कारिन्दे बात-बात पर उनका अपमान करने पर तुले थे । वज़ीफ़ा और वेतन की अदायगी में काफ़ी टाल-मटोल से काम लेते थे ।

इसलिए कम्पनी के हस्तक्षेप को सहते हुए और अत्याचार और अपमान के दुखदायी एहसास को झेलते हुए जब अन्याय और अत्याचार पीड़ित भारतीयों के सब्र का पैमना भर गया तो कारतूस की घटना मुक्ति पाने का बहाना बन गयी । 10 मई 1857 को मेरठ में भारतीय सिपाहियों ने बग़ावत की । उन्होंने अंग्रेज़ अफ़सरों को क़त्ल किया और दिल्ली की तरफ़ रवाना हो गये । अगली सुबह जब वे दिल्ली पहुंचे तो दिल्ली के सिपाही जैसे उन्हीं की प्रतीक्षा में बैठे रहे थे । उनके आते ही दिल्ली के सिपाहियों ने भी बग़ावत का एलान कर दिया । बग़ावत ने एक व्यापक रूप धारण कर लिया ।

थामसन के शब्दों में, "बेटी को मारनेवाले राजपूत, ब्राह्मण, पक्षपाती मुसलमान और ऐशपसन्द तोंदवाला मनचला मराठा भी इस जिहाद में शामिल हो गये । गाय का क़ातिल और गाय का पुजारी, सूअर से घृणा करने वाला और सूअर का गोश्त खाने वाला, 'ला इला-ह इल्लाह मुहर्दुरसूलुल्लाह' का कलिमा पढ़ने और ब्रह्मा के मंत्रों का जाप वाला सभी ने मिलकर बग़ावत की ।"

(उर्दू सहाफ़त 19वीं सदी में,
डॉक्टर ताहिर मसऊद, पृ॰ 352)

शोषण के जितने प्रकार हो सकते थे, उसके हर रूप को अंग्रेज़ों ने भारतीयों पर आज़माया । जनता अपमान, शोषण और अत्याचार की चक्की के बीच कराहने लगी । फलस्वरूप भारतवासियों के दिलों में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ विरोध-भाव पैदा हो गया, जिसमें दिल्ली उर्दू अख़बार ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी ।

इस प्रकार उर्दू अख़बारों ने, विशेषकर 'देहली उर्दू अख़बर' ने, जंगे-आज़ादी में हरावल दस्ते की भूमिका निभायी ।

उर्दू अख़बारों ने पहले ही जनक्रांति की संभावना व्यक्त कर दी थी कि आसमान में उड़ते हुए काले बादलों से आने वाले क़ियामत बरपा करने वाले तूफ़ान की भविष्यवाणी कर दी थी । पादरी लाइंग फेलो ने अपनी एक रिपोर्ट में इसको इन शब्दों में लिखा है–

"अगर दिल्ली के जनवरी महीने के देशी अख़बारों का अध्ययन यूरोप के अधिकारियों ने किया होता, तो उन्हें पता चल जाता कि देशी लोग बग़ावत के लिए कितने तैयार बैठे थे और फ़ारस और रूस से मदद की उम्मीद कर रहे थे ।"

जनक्रांति के शुरू होते ही दिल्ली उर्दू अख़बार के तेवर ही बदल गये । भारतवासियों के दिल में अंग्रेज़ी राज और उसके बढ़ती हुई अत्याचार और अन्यायपूर्ण सत्ता के ख़िलाफ़ ग़म और गुस्से और नफ़रत से भर गये । दूसरे अख़बारों के साथ देहली उर्दू अख़बार ने जनभावना और एहसासों का बड़ी हिम्मत के साथ चित्रण किया और जब चर्बी वाले कारतूस की घटना एक ज़बरदस्त जनक्रांति का बहाना बनी तो देहली उर्दू अख़बार का तेवर ही बदल गया । इसने सबसे ज़्यादा साहसपूर्ण भूमिका निभायी । दूसरे बहुत-से अख़बारों ने भी क्रांतिकारी रूप धारण कर लिया ।

जनक्रांति के बाद 17 मई को जब 'देहली उर्दू अख़बार' का अंक छपा तो इसके पन्ने क्रांति की ख़बरों से भरे पड़े थे । यह अख़बार जो अपेक्षाकृत संतुलित और बड़ी हद तक सावधान शैली अपनाता था, जनक्रांति के बाद इसका पूरा झुकाव क्रांतिकारियों की तरफ़ हो गया । यह क्रांतिकारियों के समर्थन में खुल कर मैदान में आ गया और अपनी आख़िरी सांस तक मैदान में डटा रहा, आततायी अंग्रेज़ों को ललकारता रहा ।

अचानक फूट पड़नेवाली इस जनक्रांति ने सबको झंझोड़ कर रख दिया था । किसी को यक़ीन न आता था

कि क्रांति बरपा हो गयी है और वे फ़िरंगी जो व्यावहारिक रूप से भारतवासियों के भाग्य और काले-सफ़ेद के मालिक बने बैठे थे, इतने मजबूर और बेबस हो गये हैं कि आक्रोश से भरे और बिफरे हुए भारतीयों के हाथों मार खाकर अपने भाग्य पर आंसू बहा लगे हैं । बहुत-से लोग तो दुविधा में पड़े हुए थे कि यह सच्चाई है या दिवास्वप्न । जनक्रान्ति का एक दृश्य देखिये, जिसे देहली उर्दू अख़बार के संपादक मौलवी मुहम्मद बाक़र ने ख़ुद आंखों देखा हाल के रूप में प्रस्तुत किया है–''बाज़ार में अजब आलम देखा कि जानिबे-बाज़ार कश्मीरी दरवाज़े से लोग बेतहाशा भागे चले आते हैं, मगर चूंकि मुझे अपने नाज़रीन का जान अज़ीज़ से अज़ीज़तर था, इसलिए बिला तकल्लुफ़ वास्ते दरयाफ़्त हाल के उसी तरफ़ रवाना हुआ कि ज़ेरे कोठी सिकन्दर साहब एक आवाज़ बन्दूक़ की बाड़ के सामने सुनाई दी और आगे चला तो साहब बहादुर ज्यू पैदल हाथ में नंगी तलवार लिये बदहवासी के आलम में बेतहाशा भागे चले आते हैं, पीछे-पीछे उनके चन्द तिलंगे बन्दूकें सर करते चले आते हैं और अवामे-शहर भी, किसी के हाथ में बांस का टोटा उसके दर पे चले आते हैं, बल्कि बाज़े-बाज़े आदमी शहर के जी चलाकर दूर से मार भी बैठते हैं...देखा कि चन्द तिलंगे मस्जिद में गये और पैहम बन्दूकें मारकर सबको वहां बन्दूक़ की राह से सीधा मुल्के-अदम (परलोक) को पहुंचा दिया ।'' (देहली उर्दू अख़बार, 17 मई 1857)

'अख़बारुल-ज़फ़र' ('देहली उर्दू अख़बार' का बदला हुआ नाम) का अंतिम अंक 23 मुहर्रमुल-हराम 1274 हिजरी (1857 ई॰) को प्रकाशित हुआ । उस समय तक दिल्ली का मैदान मुजाहिदीन के हाथों से निकल चुका था । उम्मीद की आख़िरी किरण यह अफ़वाह थी कि ईरान से मुजाहिदीन की मदद के लिए लश्कर आ रहा है । अख़बारुल-ज़फ़र में भी यह ख़बर छपी, लेकिन इस आख़िरी अंक में ख़ासी मायूसी की कैफ़ियत नज़र आती है । ऐसा मालूम होता है कि एडीटर को बाज़ी हार जाने का यक़ीन हो चला था । इसलिए वह ताज़ातरीन जंगी पोज़ीशन बताने की स्थिति में नहीं थे–

''चार दिन से दिन-रात ख़ूब लड़ाई तोप व तुफ़ंग (बन्दूक़) की हो रही है.। इन्कारियों ने कई मोर्चे बनाए । इधर से भी कई नए मोरचे बने । चूंकि अख़बार सिवाय शहर के बाहर तो नहीं जाता किस ज़रूरी तफ़सील के वास्ते अनजान पाठकों के ज़रूरी हो और शहर के लोग ख़ुद रोज़मर्रा अपनी आंखों से देखते हैं, तो कुछ ज़रूरत तफ़्सील नहीं मालूम होती ।''

इस अंक के बाद दिल्ली पर अंग्रेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया । पत्रकारिता के मैदान से मोर्चा संभाले हुए उर्दू के महान पत्रकार आज़ादी की पहली जंग में अपनी जान पर खेल जाने वाले शहीद मौलवी मुहम्मद बाक़र की देश-सेवा और कारनामे किसी बड़े से बड़े स्वतंत्रता सेनानियों से कम न थे, गिरफ़्तार कर लिए गये और कोई मुक़दमा चलाये बिना गोली से उड़ा दिए गए ।

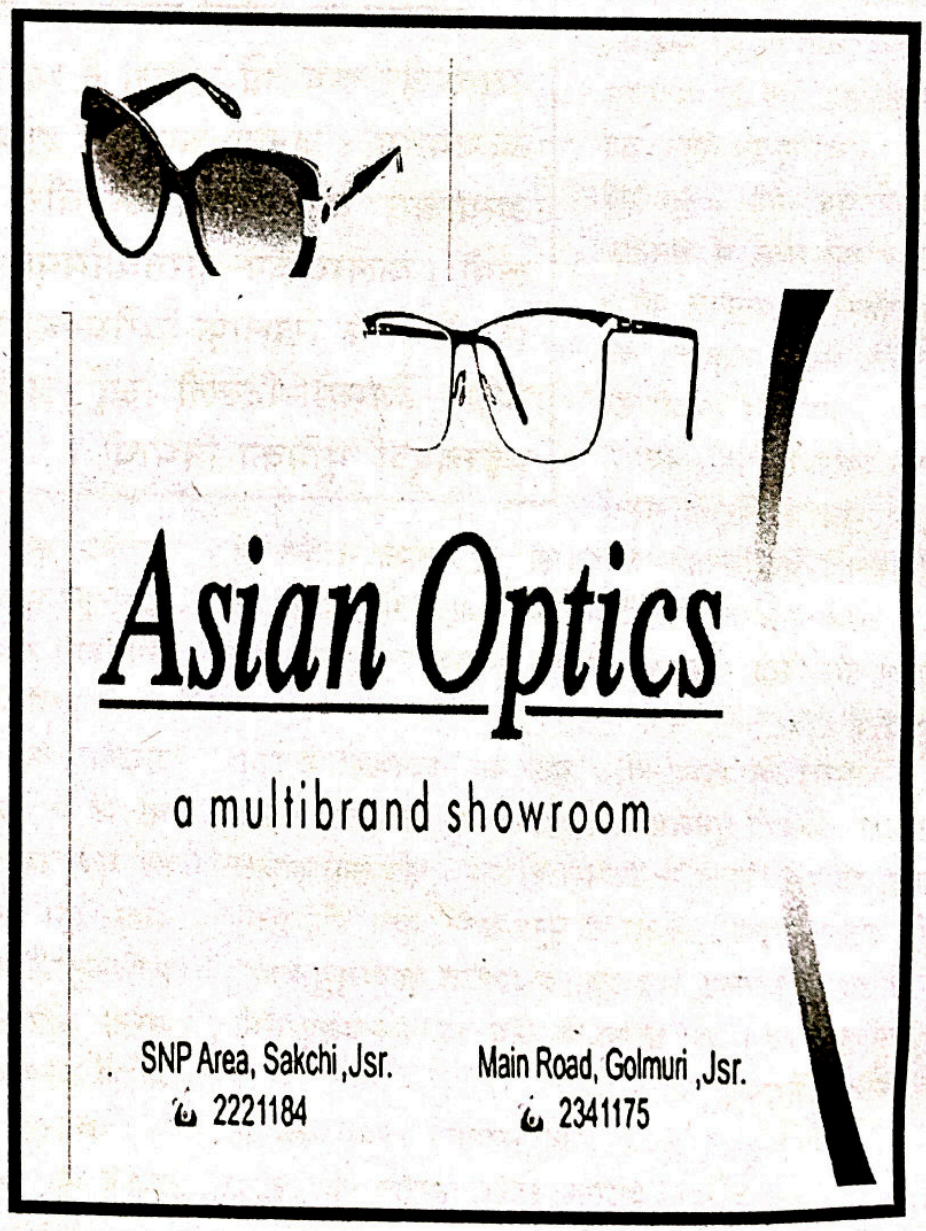

शहीद अशफ़ाक़ुल्लाह ख़ां

प्रस्तुति : इरशाद अली आज़मी

भारत के महान क्रांतिकारी शहीद अशफ़ाकुल्लाह ख़ां वारसी "हसरत" का जन्म उत्तर प्रदेश के शहीदगढ़ शाहजहांपुर में रेलवे स्टेशन के पास स्थित कदनख़ैल जलाल नगर के एक मुहल्ले में 22 अक्तूबर 1900 ई० को हुआ था। उनके पिता का नाम मुहम्मद शफ़ीकुल्लाह ख़ां और मां का नाम मज़हूरुन्निशां बेगम था, जिनकी गणना समाज के सभ्य व सुचरित्र महिलाओं में होती थी।

शहीद अशफ़ाकुल्लाह ख़ां ने स्वयं अपनी डायरी में लिखा है कि जहां तक एक ओर उनके पिता, दादा व परदादा के ख़ानदान में कोई एक भी व्यक्ति स्नातक तक की शिक्षा प्राप्त न कर सका, वहीं दूसरी ओर उनकी ननिहाल में सभी लोग उच्च शिक्षित थे। उनमें से तो कई लोग डिप्टी कलेक्टर व सब जुडीशियल मजिस्ट्रेट के पदों पर काम कर चुके थे। सन् 1857 ई० की क्रांति में अशफ़ाकुल्लाह ख़ां के ननिहाल वालों ने जब भारतीय आन्दोलनकारियों का साथ नहीं दिया तो आन्दोलनकारियों ने क्रोध में आकर उनकी भव्य कोठी में आग लगा दिया था। आज भी वह कोठी पूरे शहर में 'जली कोठी' के नाम से प्रसिद्ध है। बहरहाल अशफ़ाकुल्लाह ख़ां ने देश के लिए अपने प्राणों की आहुति देकर अपने ननिहाल वालों के नाम पर लगे उस बदनुमा दाग़ को हमेशा के लिए धो डाला।

अशफ़ाकुल्लाह ख़ां अपने माता-पिता की सबसे छोटी सन्तान थे। बचपन का नाम आपका 'अच्छू' था, लोग आपको इसी नाम से पुकारते थे। एक दिन उनके बड़े भाई रियासतुल्लाह ख़ान ने अशफ़ाकुल्लाह को बिस्मिल के बारे में बताया कि वह बड़ा ही योग्य व प्रतिभाशाली व्यक्ति है और उच्चकोटि का शायर भी। शायद आजकल मैनपुरी कांड में गिरफ़्तारी की वजह से शाहजहांपुर में दिखाई नहीं दे रहा है। काफ़ी दिनों से पलायन है, ख़ुदा जाने किन परिस्थितियों में ज़िन्दगी बसर कर रहा होगा। पंडित रामप्रसाद बिस्मिल, रियासतुल्लाह ख़ां का सबसे योग्य व भला सहपाठी है। अपने बड़े भाई के मुंह से रामप्रसाद बिस्मिल की प्रशंसा सुनने के बाद अशफ़ाकुल्लाह उसी



समय से उनसे मिलने के लिए बेताब हो गए।

वक़्त गुज़रता रहा। सन् 1920 ई० में अंग्रेज़ी सरकार के 'आम माफ़ी' के बाद रामप्रसाद बिस्मिल अपने शहर शाहजहांपुर आए और अपने घरेलू कारोबार में लग गए। अशफ़ाक़ ने कई बार बिस्मिल से मुलाक़ात करके उनका विश्वास प्राप्त करना चाहा, मगर सफलता प्राप्त नहीं हुई। अत: एक दिन रात के समय खन्नौत नदी के किनारे एक सुनसान स्थान पर मीटिंग हो रही थी कि अशफ़ाक़ अचानक वहां जा पहुंचे। बिस्मिल के एक शेर पर जब अशफ़ाक़ ने आमीन कहा तो, बिस्मिल ने उन्हें पास बुलाकर उनका परिचय पूछा। यह जानकर कि अशफ़ाक़ उनके घनिष्ठ मित्र व सहपाठी रियासतुल्लाह ख़ां का छोटा भाई है और उर्दू का शायर भी है, तो रामप्रसाद बिस्मिल ने उससे आर्यसमाज मंदिर में आकर उनसे अलग से मिलने को कहा।

घरवालों के लाख मना करने पर भी अशफ़ाक़ आर्यसमाज मंदिर पहुंचे और रामप्रसाद बिस्मिल से काफ़ी देर बातचीत करने के बाद उनकी पार्टी 'मातृवेदी' के सक्रिय सदस्य भी बन गए। यहीं से उनके जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ, वे शायर के साथ-साथ राष्ट्र के सेवक भी बन गए।

अशफ़ाकुल्लाह ख़ां बहुत ही दूरदर्शी व्यक्ति थे। उन्होंने रामप्रसाद बिस्मिल को सलाह दी कि क्रांतिकारी गतिविधियों के साथ-साथ कांग्रेस पार्टी में भी अपनी पैठ बनाकर रखना

हमारी सफलता में सहायक ही सिद्ध होगी । अत: अशफ़ाक़ व बिस्मिल के साथ शाहजहांपुर के कई और नवयुवकों ने कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की और पार्टी को राष्ट्रीय शक्ति प्रदान की । सन् 1921 ई॰ में अहमदाबाद में कांग्रेस के अधिवेशन में रामप्रसाद बिस्मिल व प्रेमकृष्ण खन्ना के साथ अशफ़ाक़ भी शामिल हुए । इस अधिवेशन में उनकी मुलाक़ात मौलाना हसरत मोहानी से हुई जिनकी गणना कांग्रेस के वरिष्ठ मालदारों में होती थी ।

मौलाना हसरत मोहानी द्वारा प्रस्तुत 'पूर्णस्वराज' के प्रस्ताव का जब गांधी जी ने विरोध किया, तो शाहजहांपुर के कांग्रेसी स्वयंसेवकों ने गांधी जी का डटकर विरोध किया और ख़ूब हंगामा मचाया । अन्तत: गांधी जी को न चाहते हुए भी वह प्रस्ताव स्वीकार करना ही पड़ा । इसी प्रकार सन् 1922 ई॰ में गया कांग्रेस में भी नवयुवकों द्वारा गांधी जी की जमकर खिंचाई की गयी, इसमें बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के नवयुवक एक हो गए । उन सबका गांधी जी से एक ही प्रश्न था–

''आपने किससे पूछकर असहयोग आन्दोलन वापस लिया है ?''



सन् 1922 ई॰ में गया कांग्रेस के बाद पार्टी में दो दल बन गए, एक धनिक वर्ग के लोगों का और दूसरा साधारण वर्ग से आए हुए नवयुवकों का । प्रथमदल ने 1 जनवरी सन् 1923 ई॰ को ''स्वराज पार्टी'' बना ली और दूसरे दल ने क्रांतिकारी पार्टी के गठन का मन बना लिया । बंगाल के कुछ नवयुवक सीधे शाहजहांपुर आकर मैनपुरी षड्यंत्र के अनुभवी क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल से मिले और उनसे नयी पार्टी के गठन में सहयोग करने का आग्रह किया । बिस्मिल उन दिनों सिल्क की साड़ियों के कारोबार में उलझे हुए थे, उनके पास समय नहीं था । इस पर अशफ़ाक़ ने उन्हें समझाया और अपनी ओर से पूरा सहयोग करने का वचन दिया । इसके बाद बिस्मिल ने अपने साझीदार बनारसी लाल को अपना सारा कारोबार सौंपकर पूरे मन से क्रांतिकारी पार्टी के काम में जुट गए । पार्टी की ओर से 1 जनवरी सन् 1925 ई॰ को अंग्रेज़ी में छापे गए घोषणापत्र 'दि रिवोल्यूशनरी' को पूरे उत्तर प्रदेश के प्रत्येक ज़िले तक पहुंचाने में अशफ़ाक़ुल्लाह ख़ां की सराहनीय भूमिका को देखते हुए ''एच॰ आर॰ ए॰ के केन्द्रीय कार्यकारिणी के सदस्य योगेश चन्द्र चटर्जी ने अशफ़ाक़ को बिस्मिल का सहकारी (लेफ़्टीनेन्ट) मनोनीत किया और प्रदेश की ज़िम्मेदारी इन दोनों के कंधे पर डालकर स्वयं बंगाल चले गए ।

बंगाल में शचीन्द्रनाथ सान्याल और योगेश चन्द्र चटर्जी जैसे दो प्रमुख व्यक्तियों के गिरफ़्तार हो जाने पर 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' का पूरा दारोमदार रामप्रसाद बिस्मल के कंधों पर आ गया । जब आयरलैंड के क्रांतिकारियों के तर्ज़ पर जबरन धन छीनने की योजना बनायी गयी, तो अशफ़ाक़ ने अपने बड़े भाई की लाइसेंसी बन्दूक़ और दो पेटी कारतूस बिस्मिल को उपलब्ध कराए, ताकि धनवानों से धन छीनकर पार्टी के लिए पैसा इकट्ठा किया जा सके । किन्तु जब बिस्मिल ने सरकारी ख़ज़ाना लूटने की योजना बनाई तो अशफ़ाक़ ने अकेले ही कार्यकारिणी की मीटिंग में इसका खुलकर विरोध किया । उनका तर्क था कि अभी यह क़दम उठाना ख़तरे से ख़ाली न होगा, ब्रिटिश सरकार हमें विनष्ट कर देगी ।

इस पर सब लोगों ने बिस्मिल पर व्यंग कसा ''पंडित जी ! देख ली न इस मियां जी की करतूत । हमारी पार्टी में एक मुस्लिम को शामिल करने की ज़िद का प्रभाव अब आप ही भुगतिये, हम लोग तो चले ।'' इस पर अशफ़ाक़ ने यह कहा कि–पंडित जी हमारे नेता हैं उनका निर्णय हमें स्वीकार है । आज हम कुछ नहीं कहेंगे, लेकिन कल सारी दुनिया देखेगी कि एक पठान ने इस ऐक्शन को किस तरह अंजाम दिया और वही हुआ, अगले दिन 9 अगस्त 1925 की शाम ''काकोरी स्टेशन'' से जैसे ही ट्रेन आगे बढ़ी, राजेंद्रनाथ लाहड़ी ने चेन खींची, अशफ़ाक़ुल्लाह ख़ान ने ड्राइवर की कनपटी पर माउजर (रिवाल्वर) रखकर उसे अपने क़ब्ज़े में ले लिया और रामप्रसाद बिस्मिल ने गार्ड को औंधे मुंह ज़मीन पर लिटाते हुए ख़ज़ाने का बक्सा नीचे गिरा दिया । लोहे की मज़बूत तिजोरी जब किसी से न टूटी तो अशफ़ाक़

ने अपना माउजर मम्मथनाथ गुप्त को पकड़वाया और घन लेकर पूरी ताक़त के साथ तिजोरी पर टूट पड़े और तिजोरी को तोड़ दी ।

इस घटना के बाद 26 सितम्बर 1925 की रात जब पूरे देश में एक साथ गिरफ़्तारियां हुईं तो अशफ़ाक़ पुलिस की आंखों में धूल झोंककर पलायन हो गये । पहले वे नेपाल गये कुछ दिन वहां रहकर कानपुर आ गये और गणेश शंकर विद्यार्थी के प्रताप प्रेस में दो दिन रुककर वहां से बनारस होते हुए बिहार के एक ज़िले डाल्टनगंज में कुछ दिनों नौकरी की, परन्तु पुलिस को इसकी भनक लगने से पहले ही वे कानपुर आ गए । विद्यार्थी जी ने अपने पास से कुछ रुपये देकर भोपाल उनके बड़े भाई रियासतुल्लाह खां के पास भेज दिया । कुछ समय वहां रहकर अशफ़ाक़ राजस्थान गये और अपने भाई के मित्र अर्जुनलाल सेठी के घर ठहरे । सेठी जी की लड़की उन पर आशिक़ हो गयी और उनके सामने शादी का प्रस्ताव रखा । अन्ततः वहां से निकल कर वे अपने शहर शाहजहांपुर में अपने एक दोस्त के घर पर ठहरे । परिस्थितियों से परेशान होकर अशफ़ाक़ ने पासपोर्ट बनवा कर किसी प्रकार दिल्ली से बाहर जाकर लाला हरदयाल से मिलने की योजना बनायी ही थी कि किसी भेदिये की ख़बर पर दिल्ली गुप्तचर शाख़ा के पुलिस उपकप्तान इकरामुल हक़ ने उन्हें पकड़ लिया । ऐसा कहा जाता है कि उस दोस्त ने ही अशफ़ाक़ को पकड़वाने में पुलिस की सहायता की थी ।

यह एक ऐतिहासिक वास्तविकता है कि 'काकोरी कांड' का फ़ैसला 6 अप्रैल 1926 को ही सुना दिया गया था, मगर अशफ़ाकुल्लाह ख़ान और शचीन्द्रनाथ सान्याल को पुलिस बाद में गिरफ़्तार कर पाई थी । अतः स्पेशल सेशन जज जे॰ आर॰ डब्लू॰ बैनेट (डॉ॰ एन॰ सी॰ मेहरोत्रा व मनीष टंडन, स्वतंत्रता आंदोलन में शाहजहांपुर जनपद का योगदान, पृष्ठ-134) की अदालत में 7 दिसम्बर 1926 को एक मुक़दमा दायर किया गया । मुक़दमे के न्यायाधीश ऐनुद्दीन ने अशफ़ाक़ को सलाह दी कि वे किसी मुस्लिम वकील को नियुक्त करें, परन्तु अशफ़ाक़ ने ज़िद करके कृपाशंकर हजेला को अपना वकील नियुक्त किया । इस पर एक दिन सी॰ आई॰ डी॰ के पुलिस कप्तान ख़ानबहादुर तसद्दुक़ हुसैन

بسم الله الرحمن الرحيم

"जिस आदमी की यह ख़्वाहिश हो कि ख़ुदा उसको क़ियामत के दिन की घुटन और ग़म से बचाए, तो उसे चाहिए कि तंगदस्त क़र्ज़दार को मोहलत दे या क़र्ज़ का बोझ उसके ऊपर से उतार दे।"

(हदीस)

A Well Wisher

Ashraf Jahan Sb., Kolkata

जेल में जाकर अशफ़ाक़ से मिले और उन्हें फांसी की सज़ा से बचने के लिये सरकारी गवाह बनने की सलाह दी और उन्हें एकान्त में ले जाकर समझाया–

"देखो अशफ़ाक़ भाई ! तुम भी मुस्लिम हो और अल्लाह के फ़ज़्ल से मैं भी मुस्लिम हूं । इस वजह से मैं तुम्हें सूचित कर रहा हूं, कि ये रामप्रसाद बिस्मिल इत्यादि सारे लोग हिन्दू हैं और ये यहां हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहते हैं । तुम इन लोगों के चक्कर में आकर अपना जीवन क्यों व्यर्थ करने पर तुले हुए हो । मैं तुम्हें अन्तिम बार समझाता हूं, मान जाओ, फ़ायदे में रहोगे ।"

ख़ानबहादुर तसद्दुक़ हुसैन की इतनी बात सुनते ही अशफ़ाकुल्लाह ख़ां की त्योरियां चढ़ गयीं और वे गुस्से में डांटकर बोले–

"ख़बरदार ! जुबान संभाल कर बोलिए । पंडित जी को आपसे ज़्यादा जानता हूं । उनका उद्देश्य यह बिल्कुल नहीं है और अगर है भी तो हिन्दू राज्य तुम्हारे इस अंग्रेज़ी राज्य से अच्छा ही होगा । आपने उन्हें काफ़िर कहा, इसके लिए मैं आपसे यही अनुरोध करूंगा कि आप इसी क्षण यहां से चले जायें । अन्यथा मेरे ऊपर दफ़ा 302 (क़त्ल) का एक केस और क़ायम हो जाएगा ।"

इतना सुनते ही बेचारे कप्तान साहब तसद्दुक़ हुसैन की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी और वे वहां से चुपचाप चले गये । बहरहाल 13 जुलाई 1927 को पूरक मुक़दमे (सप्लीमेंट्री केस) का फ़ैसला सुना दिया गया । दफ़ा 120 बी० व 121 ए० के अन्तर्गत आजीवन कारावास और 396 के अन्तर्गत सज़ाये मौत अर्थात फांसी की सज़ा ।

जज ने अपने फ़ैसले में साफ़-साफ़ लिखा था कि इन अभियुक्तों ने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए यह षड्यंत्र नहीं किया था, मगर फिर भी अगर ये लोग अपने कृत्य पर पश्चाताप करें तो इनकी सज़ा कम की जा सकती है । वकील की सलाह पर लखनऊ जेल में जाकर अशफ़ाक़, रामप्रसाद बिस्मिल से मिले और उनका मत जानना चाहा । बिस्मिल ने उन्हें समझाया कि जिस प्रकार शतरंज के खेल में हारी हुई बाज़ी जीतने के लिए कभी-कभार अपने एक या दो मोहरे मरवाने ही पड़ते हैं, ठीक उसी प्रकार हम लोग भी माफ़ीनामा दायर कर अपने-आपको मौत की सज़ा से बचा सकें तो अच्छा होगा । पारस्परिक सहमति से इधर रामप्रसाद बिस्मिल ने और उधर अशफ़ाकुल्लाह ख़ां ने अपनी-अपनी दया याचिका दायर की । अशफ़ाक़ ने पहली दयायाचिका 11, अगस्त 1927 व दूसरी दयायाचिका 29, अगस्त सन् 1927 को लिखकर भेजा। इसके अतिरिक्त वकील की सलाह पर एक दयायाचिका अशफ़ाक़ की मां मज़हूरुन्निशां बेगम की ओर से वायसराय और गवर्नर जनरल को भेजी गयी, परन्तु उस पर कोई विचार नहीं हुआ । अशफ़ाकुल्लाह ख़ां व उनकी मां के बाद विधानसभा सदस्यों ने संयुक्त रूप से हस्ताक्षर करके एक स्मरणपत्र संयुक्त प्रांत के गवर्नर विलियम मोरिस को एक मेमोरेंडम नैनिताल भेजा । उसके साथ ही पं० गोविन्द वल्लभ पन्त व सी० वाई० चिन्तामणि ने भी एक प्रार्थना पत्र भेजा किन्तु सब प्रयत्न बेकार ही रहे । अत: 22 सितम्बर 1927 को होम सेक्रेट्री एच० डब्लू० हेग ने अपनी फ़ाइनल रिपोर्ट दी, जिसके अन्त में उसने स्पष्ट लिखा था–

"इन लोगों का उद्देश्य एक स्थापित सरकार को उलटना था । चूंकि यह पूरी तरह सिद्ध हो चुका है, अत: इस मामले में फांसी ही दी जा सकती है, जबकि बंगाल षड्यंत्र में, जिसकी यह एक शाखा थी अब तक ऐसी कोई तथ्यात्मक पुष्टि नहीं हुई है, अत: वहां के लोगों को फांसी की सज़ा से मुक्त रखा गया है । मुझे पक्का विश्वास है कि यदि इन्हें फांसी की सज़ा न देकर जीवित छोड़ दिया गया, तो ये बंगाल तो क्या पूरे हिन्दुस्तान में फैल जाएंगे ।"

(डॉ० मदन लाल वर्मा 'क्रान्त, स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी साहित्य का इतिहास, भाग-2, पृष्ठ-537-538)

इन तमाम अपीलों व दलीलों का इतना प्रभाव ज़रूर पड़ा कि फांसी की तारीख़ दो बार आगे बढ़ा दी गयी । पहले तारीख़ 16 सितम्बर 1927 ई० थी, जो बाद में बढ़ाकर 11 अक्तूबर 1927 कर दी गयी । चूंकि लन्दन की प्रिवी-कौंसिल में दयायाचिका जा चुकी थी, अत: फांसी की तारीख़ फिर से आगे के लिए टाल दी गयी। आख़िरकार 19 दिसम्बर 1927 की तारीख़ निश्चित की गयी और इसकी सूचना चारों जेलों में भेज दी गयी । फ़ैज़ाबाद जेल में यह सूचना पहुंचते ही अशफ़ाक़ ने 29, नवम्बर 1927 ई० को अपने बड़े भाई रियासतुल्लाह ख़ां को, 15 दिसम्बर 1927 को अपनी मां मज़हूरुन्निशां बेगम तथा 16 दिसम्बर 1927 ई० को अपनी मुंह बोली बहन नलिनी दीदी को पत्र लिखा और खुदा की इबादत में लग गये ।

15, दिसम्बर 1927, दिन गुरुवार की शाम फ़ैज़ाबाद

जेल की काल कोठरी से अशफ़ाकुल्लाह खां ने अपना यह अन्तिम संदेश भारतीय जनता के नाम लिखकर उर्दू भाषा में भेजा । उनका उद्देश्य यह था कि मुस्लिम समुदाय के लोग इस पर विशेष ध्यान दें । एक पुलिस अधिकारी पं॰ विद्यार्णव शर्मा की पुस्तक "युग के देवता : बिस्मिल और अशफ़ाक़" में पृष्ठ संख्या 172 से 178 तक यह पूरा सन्देश दिया हुआ है, जो इस तरह है–

"ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर एजेंट धार्मिक आधार पर दुष्प्रचार कर रहे हैं । इन लोगों का उद्देश्य धर्म की रक्षा करना या उन्नति नहीं है, बल्कि चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना है । मेरे पास समय नहीं है और न अवसर है कि सब कच्चा-चिट्ठा खोलकर रख देता, जो मुझे भूमिगत रहने में और उसके बाद मालूम हुआ । जहां तक मुझे मालूम है कि मौलवी नियामतुल्लाह क़ादयानी कौन था, जिसको काबुल में संगसार कर दिया गया । वह ब्रिटिश एजेंट था, जिसके पास हमारे मेहरबान ख़ानबहादुर तसद्दुक़ हुसैन साहब डिप्टी सुपरिंटेंडेंट सी॰ आई॰ डी॰ भारत सरकार संदेश लेकर गये थे । मगर कुशाग्र काबुल सरकार ने उसका उपचार शीघ्र कर दिया और रोग को वहां पर फैलने न दिया ।" (विद्यार्णव शर्मा, युग के देवता : बिस्मिल और अशफ़ाक़, पृष्ठ-173)

इसके बाद उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के हित में और अहमदाबाद कांग्रेस जैसा मेल-मिलाप, गोरी अंग्रेज़ियत का भूत उतारने की बात करते हुए देश के सभी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से विदेशी मोह व देशी चीज़ों से नफ़रत का त्याग करने की अनमोल नसीहत देते हुए चन्द अंग्रेज़ी पंक्तियों के साथ रुख़सत होने की गुज़ारिश की थी ।

"मेरे भाइयो ! मेरा सलाम कुबूल करो और इस अधूरे काम को, जो हमसे रह गया है, तुम पूरा करना । तुम्हारे लिये हमने उत्तर प्रदेश का कार्य-क्षेत्र तैयार कर दिया है । अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने । मैं कुछ पंक्तियों के बाद विदा होता हूं ।"

(विद्यार्णव शर्मा युग के देवता : बिस्मिल और अशफ़ाक़ पृष्ठ-177)

" The every man upon this Earth, death cometh soon or late. But how can man die better, Than facing fearful odds. For the ashes of his fathers, and Temples of his goods."

फांसी वाले दिन सोमवार 19 दिसम्बर 1927 ई॰ को अशफ़ाक़ हमेशा की तरह सुबह उठे, शौच आदि क्रिया से निवृत्त होकर स्नान किया । कुछ देर तक पवित्र कुरआन की आयतों को पढ़ा, फिर किताब बन्द करके उसे आंखों से लगाया, फिर अपने-आप जाकर फांसी के तख़्ते पर खड़े हो गये और कहा, "मेरे ये हाथ इन्सानी ख़ून से नहीं रंगे, ख़ुदा के यहां मेरा न्याय होगा ।" फिर आपने फांसी का फन्दा अपने गले में डाल लिया ।

शहीद अशफ़ाकुल्लाह ख़ां का मृत शरीर फ़ैज़ाबाद ज़िला कारागार से शाहजहांपुर लाया जा रहा था । लखनऊ स्टेशन पर गाड़ी बदलते समय कानपुर से बीमारी के बावजूद चलकर आये गणेश शंकर विद्यार्थी जी ने उनके पार्थिव शरीर पर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किये । पारसी शाह फ़ोटोग्राफ़र से अमर शहीद अशफ़ाकुल्लाह ख़ां के शव का फ़ोटो खिंचवाया और अशफ़ाक़ ख़ां के परिवारजनों को यह हिदायत देकर कानपुर वापस चले गये कि शाहजहांपुर में इनका पक्का मक़बरा ज़रूर बनवा देना । अगर रुपयों की ज़रूरत पड़े, तो पत्र लिख देना, मैं कानपुर से मनी आर्डर भेज दूंगा ।

शहीद अशफ़ाक़ ख़ां की लाश को उनके पुश्तैनी मकान के सामने वाले बग़ीचे में दफ़्ना दिया गया । उनकी मज़ार पर संगमरमर के पत्थर पर शहीद अशफ़ाकुल्लाह ख़ां की ही कही हुई ये पंक्तियां लिखवा दी गयीं–

"ज़िन्दगी बादे-फ़ना तुझको मिलेगी 'हसरत',
तेरा जीना तेरे मरने की बदौलत होगा ।"

अमर शहीद अशफ़ाकुल्लाह ख़ां यह पहले से ही जानते थे कि उनकी शहादत के बाद भारत में लिबरल पार्टी अर्थात कांग्रेस ही पॉवर में आएगी और उन जैसे साधारण वर्ग के बलिदानियों की कोई चर्चा न होगी, केवल शासकों के स्मृति-लेख ही सुरक्षित रखे जाएंगे । तभी तो उन्होंने ये क़ता कहकर वर्तमान हालात की भविष्यवाणी बहुत पहले सन् 1927 में ही कर दी थी–

"ज़ुबाने हाल से अशफ़ाक़ की तुर्बत ये कहती है,
मुहिब्बाने वतन ने क्यों हमें दिल से भुलाया है ?"

बहुत अफ़सोस होता है बड़ी तकलीफ़ होती है, शहीद अशफ़ाक़ की तुर्बत है और धूपों का साया है।

(डॉ॰ मदन लाल वर्मा, क्रान्त, स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी साहित्य का इतिहास, भाग-2, पृष्ठ-545)

अनाथ लड़कियों की पुकार

VOICE OF ORPHAN GIRLS

मुस्लिम लड़कियों का यतीमख़ाना गया।

एक दृष्टि में

लड़कियों के लिए आधुनिक और इस्लामी तालीम से लैस राष्ट्रीय स्तर का एक आदर्श रिहाइशी (Residential) इदारा

● 28 वर्षीय संस्थान ● 19 विभाग ● शिक्षा: प्राथमिक से मैट्रिक तक ● पत्राचार शिक्षा (Distance Education). I, A., B.A., M.A. एवं Library Science (BLIS) ● मंजूरशुदा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी ● शोबा-ए-हिफ्ज व नाजरा: 9 छात्राओं ने हिफ्ज के साथ मैट्रिक पास किया ● प्रौढ़ शिक्षा (ADULT EDUCATION) ● वोकेशनल सेन्टर (Vocational Centre) ● कटिंग और सिलाई 11 बैच 103 छात्राएं ● जरी वर्कस 8 बैच 65 छात्राओं ने Certificate हासिल की ● शिहार रोकेण्डरी बोर्ड 1993 से 2015 ई० तक 77 अनाथ बच्चियों और 58 माँ-बाप वाली बच्चियों ने मैट्रिक पास किया ● कम्प्यूटर (COMPUTER) की भी शिक्षा ● वार्षिक खर्च: 30 लाख रूपये से अधिक ● आमदनी के स्रोत: मुस्लिम आवाम के चन्दे ● इदारा 120 अनाथ बच्चियों का सारा खर्च पूरा करता है ● कफाला स्कीम (KAFALA SCHEME) के तहत एक यतीम बच्ची का वार्षिक खर्च 16,000/- रूपये है-आप भी एक अनाथ बच्ची का खर्च उठा कर सवाब में शरीक हों।

सहायता के विभिन्न रूप: उदाहरण स्वरूप ● जकात ● सदकात ● अतियात ● पैदावार की जकात ● दीनी किताबें ● जमीन की खरीदारी और कर्ज की अदायगी आदि ● स्टाफ की मासिक वेतन के लिए 1,00,000/- रूपये से अधिक ● माँ/बाप या रिश्तेदारों के नाम कमरा या हॉल बनवाना और निर्माण कार्यों के लिए ईंट, सीमेन्ट, सरिया और अन्य सामग्री या उसका मूल्य आदि देना ● यहाँ प्रतिवर्ष हिसाब चेक किए जाते हैं और ऑडिट होता है। ● हर चीज खुली किताब की तरह है। इदारा में खुद आकर बराबरी का नमूना देखें कि अनाथ बच्चियाँ और वे बच्चियाँ जिन के माँ-बाप हैं किस तरह मिल-जुलकर रहा करती हैं। नोट: इस्लामी माहौल, खुला स्थान, इस्लामी लिबास, इस्लामी यूनिफार्म और इस्लामी तालीम के साथ-साथ कम खर्च में मेयारी तालीम। **एक बात याद रखें:-** (1) बैंक (Bank) की वह रकम जो सूद (INTEREST) के तौर पर मिलती है जो मुसलमानों के लिए हराम है, उस रकम को गरीब यतीम लड़कियों की अशिक्षा और जहालत दूर करने और तालीम फैलाने के लिए लड़कियों के दारूल यतामा फण्ड में दें। (2) यतीम बच्चियाँ जिन के पिता का देहान्त हो चुका है उनको भोजन एवं आवास के साथ-साथ एक बेटी की तरह यहाँ सारी सहूलत बिल्कुल निःशुल्क दी जाती है। (3) बाहरी छात्राओं के लिए अपने खर्च पर होस्टल की भी व्यवस्था है। (4) कौम के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से अनुरोध है कि कौम की यतीम बच्चियों को अदारह में दाखिल कराने के लिए रहनुमाई करें और तवज्जा दिलाएँ।

यह इदारा आप से उदार सहायता की अपील करता है।

विदेशी चन्दा देने वाले :- भारत सरकार से "मुस्लिम लड़कियों का यतीमखाना (गया) को विदेशों से चन्दा लेने का इजाजतनामा प्राप्त है।

Foreign Donors विदेशी चन्दा देने वाले

- विदेशों में रहने वाले अब BANK A/c No. 300402010009042
- BANK : SWIFT CODE : UBININBBJAM or IFS Code No. : UBIN 0530042
- BANK : Union Bank of India (Main Branch, Gaya) में अपनी रकम भेज सकते हैं।

चेक या बैंक ड्राफ्ट पर केवल यह लिखें- THE GAYA MUSLIM GIRLS ORPHANAGE

- Address for correspondence : रकम भेजने और संपर्क करने का पता
  GENERAL SECRETARY, THE GAYA MUSLIM GIRLS ORPHANAGE
  At : KOLOWNA, P.O. CHERKI-824237, Distt. : GAYA (BIHAR) INDIA, ☎ : 9934480190
- E-mail : thegayamuslimgirlsorphanage@gmail.com, Website: www.gmgo.org

INDIAN DONORS भारतीय चन्दा देने वाले

- CORE BANKING A/c No. : 300402010007752
- BANK : IFS CODE No. - UBIN0530042 BANK: UNION BANK OF INDIA (MAIN BR[illegible] GAYA)

Note:- Documentary Film-NAZR-E-ENAYAT जिसमें इदारे का इतिहास है। इंटरनेट यू ट्यूब पर देखें।

नोट:- कोर बैंकिंग वाले हजरात E-mail या डाक से अपना मुकम्मल पता भेज दिया करें ताकि उसी पते पर रकम की रसीद रवाना की जा सके।.....

संस्थापक महासचिव:इकबाल अहमद खां मो0नं0:-09934480190

मुस्लिम उलमा एवं योद्धा : जिन्होंने सरज़मीने हिन्द को अपने ख़ूने जिगर से सींचा

● संपादन प्रभाग

टीपू सुल्तान
(1750 से 1799 ई॰)

टीपू सुल्तान स्वतंत्रता संग्राम का वह महान योद्धा है जिसकी बहादुरी, साहस और वीरता की मिसाल दी जाती है । टीपू सुल्तान का अस्ली नाम फ़तह अली ख़ान था । मैसूर सलतनत के बानी सुल्तान हैदर अली ख़ान का बेटा था । 20 ज़िलहिज्जा सन 1163 हिजरी तदानुसार 11 नवम्बर 1750 ई॰ को देवन हल्ली (कोलार) में टीपू सुल्तान का जन्म हुआ । आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ उसने युद्ध-कला एवं राजनीति शास्त्र में भी महारत हासिल कर ली ।

7 नवम्बर 1782 ई॰ को जब सुल्तान हैदर अली ख़ान का इन्तिक़ाल हो गया तो टीपू सुल्तान मैसूर की सल्तनत संभाल ली । तख़्त पर बैठते ही उसे फ़िरंगियों से जंग करनी पड़ी । लेकिन टीपू सुल्तान ने अंग्रेज़ों से कभी समझौता नहीं किया और लड़ते-लड़ते 4 मई 1799 को श्रीरंगापट्टम के मैदान में शहीद हो गया । इस महान योद्धा की ख़ून में सनी हुई लाश को देखकर लार्ड हॉर्स ने राहत की सांस ली और कहा कि : "आज़ हिन्दुस्तान हमारा हो गया ।"

शाह वलीउल्लाह देहलवी
(1703-1762)

हुज्जतुल इस्लाम शाह वलीउल्लाह देहलवी भारत के एक अज़ीम मुहद्दिस, बेमिसाल मुफ़क्किर (विचारक) और इंक़िलाब बरपा करने वाली शख़्सियत थे । उनका उल्लेख किये बिना भारतीय इतिहास पूरा नहीं हो सकता । यह एक सच्चाई है कि पूरे भारत उपमहाद्वीप में उसी के दम से रौशनी फैली हुई है और उसी ख़ानवादा का फ़ज़्लो कमाल जारी है ।

21 फ़रवरी 1703 (4 शव्वाल 1114) हि॰ को मुज़फ़्फ़रनगर के फ़लित क़स्बे में आपका जन्म हुआ । आपके अपने पिता शाह अब्दुर्रहीम से जो भारत के शहंशाह औरंगज़ेब आलमगीर के शासन काल के नामवर आलिम गुज़रे हैं, से आरंभिक शिक्षा हासिल की । 1143 हि॰ में वे हज के लिए मक्का मुअज़्ज़मा गये और 14 महीनों तक वहां उनका क़ियाम रहा । इस अवधि में वे हरमैन शरीफ़ैन के फ़ाज़िल उस्तादों से फ़ैज़याब होते रहे । दिल्ली वापस आने के बाद आप इस्लाम के प्रचार-प्रसार और इस्लामी शिक्षाओं पर आधारित पुस्तकों के लेखन एवं संकलन में लग गये । आपने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की सुन्नत और हदीसे रसूल (सल्ल॰) को बढ़ावा देने का बेमिसाल कारनामा अंजाम दिया ।

21 अगस्त 1762 ई॰ (29 मुहर्रम 1176 हि॰) को दिल्ली में आप अपने मालिके हक़ीक़ी से जा मिले । आपकी मृत्यु के बाद आपके चारों बेटों ने आपके मिशन को पूरा करने का बीड़ा उठाया, और किताबो सुन्नत के प्रकाशन का लाजवाब कारनामा अंजाम दिया । शाह अब्दुल अज़ीज़ (1746-1824), शाह रफ़ीउद्दीन (1750-1818), शाह अब्दुल क़ादिर (1755-1815) और शाह अब्दुल ग़नी (1757-1789) आपके ही बेटे हैं और चारों देश की बड़ी इल्मी शख़्सियतें समझे जाते हैं ।

शाह वलीउल्लाह देहलवी की लगभग 200 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जो आपकी इल्मी यादगार हैं ।

शाह अब्दुल अज़ीज़
(1746-1824 ई॰)

शाह अब्दुल अज़ीज़ शाह वलीउल्लाह देहलवी (रह॰) के बड़े बेटे थे । आप अपने समय के अह्ले इल्म के सरताज और तहरीक इस्लाहो जिहाद के संस्थापक थे । 30 सितम्बर 1746 ई॰ (25 रमज़ानुल मुबारक सन 1159 हि॰) को दिल्ली में पैदा हुए । आपका तारीख़ी नाम "गुलाम हलीम था ।

अपने पिता शाह वलीउल्लाह देहलवी, शाह मुहम्मद आशिक़ फ़लती, शाह नूरुल्लाह बुढ़ानवी और ख़्वाजा मुहम्मद अमीन काश्मीरी से 15 वर्षों तक शिक्षा ग्रहण करते रहे । तद्पश्चात पठन-पाठन का काम शुरू किया ।

16 वर्ष के थे कि 1762 ई॰ में पिता की मृत्यु हो गयी । आप अपने पिता के उत्तराधिकारी घोषित हुए और अपने पिता के उन कारनामों को आगे बढ़ाया जिसे उनके पिता अधूरा छोड़ गये थे । जीवन के हर क्षेत्र में आपकी सेवाएं बेमिसाल रहीं ।

इस्लाम का प्रचार-प्रसार, कुरआन की तर्वीज, हदीसे रसूल (सल्ल॰) का प्रकाशन, भटके हुए लोगों की इस्लाह, तहरीके जिहाद और स्वतंत्रता संग्राम की शुरुआत आदि आपके कारनामों की सूची में शामिल है ।

6 मई 1824 ई॰ (7 शव्वाल 1239 हि॰) को आप अपने मालिके हक़ीक़ी से जा मिले और दिल्ली के मेंहदियान में दफ़्न किये गये । आपकी मृत्यु के समय आपका हलक़ा इतना बढ़ चुका था कि भारत में ऐसा कोई इल्मी हलक़ा ऐसा नहीं था कि जिसका ताल्लुक़ आपके इल्मी मर्कज़ से न हो ।

मौलाना सिंधी ने लिखा है कि एक आलिम ने केवल इसलिए पूरे देश का भ्रमण किया कि उसे हदीस का कोई ऐसा उस्ताद मिले जो इमाम अब्दुल अज़ीज़ का शागिर्द न हो, परन्तु पूरे देश में उसे एक भी उस्ताद नहीं मिला ।

नवाब अमीर ख़ान
(1768-1834 ई॰)

नवाब अमीर ख़ान टोंक रियासत के संस्थापक और हाकिम थे । पिता का नाम मुहम्मद हयात ख़ान और दादा का नाम ताले मुहम्मद ख़ान था । ताले मुहम्मद ख़ान मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह के दौर में सरहद से रुहेलखंड के इलाक़े में आया ।

अमीर ख़ान का जन्म 1768 ई॰ (1182 हि॰) में संभल (ज़िला मुरादाबाद) में हुआ । अमीर ख़ान बहुत ही बेबाक, निडर और बहादुर थे । उन्होंने मराठा सरदार जसवंत राव हल्कर के साथ मिलकर अनेक मुहिमों में कामयाबी हासिल की । सन् 1817 ई॰ तक वे अंग्रेज़ों के विरोधी रहे । अनेकों बार मुक़ाबले किये और अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ाये ।

लेकिन 6 जनवरी 1818 ई॰ को अंग्रेज़ों को साथ मजबूरी में उन्हें संधि करनी पड़ी । इस संधि के अनुसार अमीर ख़ान को टोंक रियासत का हुक्मरां मान लिया गया । इस संधि से पहले सैयद अहमद शहीद सात वर्षों तक आपकी सेना में रहे । 3 सितम्बर 1934 ई॰ को अमीर ख़ान की मृत्यु हो गयी ।

सैयद अहमद शहीद
(1786-1831 ई॰)

सैयद अहमद बिन सैयद मुहम्मद इरफ़ान, वह महान सुधारक और मुजाहिद हैं, जिन्होंने ज़ुल्म के घटाटोप अंधेरे में भारत को जिहाद की स्प्रिट से अवगत कराया । जिहाद का झंडा बुलन्द किया और पूरे देश में ऐसा दीनी इंक़िलाब बरपा कर दिया जिसकी मिसाल सदियों के इतिहास में नहीं मिलती ।

कहते हैं कि चालीस हज़ार से अधिक लोग आपके हाथ पर इस्लाम में आये और तीस लाख मुसलमानों ने आपके हाथ पर बैअ्त की ।

28 नवम्बर 1786 ई॰ (6 सफ़र 1201 हि॰) को तकिया शाह इल्मुल्लाह में राय बरेली के मशहूर हस्नी ख़ानवादा में पैदा हुए । जिहाद का शौक़, इबादत का ज़ौक़ और समाज सेवा की भावना आपकी घुट्टी में पड़ी थी । शुरू में पढ़ाई में दिल नहीं लगता था । जब थोड़ा बड़े हुए तो, दिल्ली आकर ख़ानवादा ए वलीउल्लाह में शिक्षा-दीक्षा हासिल की । फिर हज़रत शाह अब्दुल अज़ीज़ से बैअ्त होकर ख़िलाफ़त से सरफ़राज़ हुए ।

सात साल तक वाली-ए-टोंक अमीर ख़ान की सेना में रहकर प्रशिक्षण हासिल किया । वहीं जिहाद की तर्बियत हासिल की । फिर दिल्ली आकर बैअ्त व इरशाद का सिलसिला शुरू किया । इसके बाद दो-आबा का इस्लाही दौरा किया । सन् 1822 ई॰ में आठ सौ रफ़ीक़ों के साथ हज के लिए रवाना हुए ।

17 जनवरी 1826 ई॰ को 500 मुजाहिदों के साथ सिर पर कफ़न बांधकर जिहाद का सफ़र शुरू किया । भारत के विभिन्न इलाक़ों से मुजाहिदीन के क़ाफ़िले पहुंचने लगे । एक समय ऐसा भी आया कि मुजाहिदीन की संख्या बढ़कर एक लाख तक पहुंच गयी । अनेकों बार झड़पें हुईं जिसमें इस्लाम के जांबाज़ मुजाहिदीन ने इस्लाम के जौहर दिखाए । अन्त में 6 मई 1831 को अपने 300 साथियों समेत बालाकोट में शहीद हो गये ।

शाह इस्माईल शहीद
(1779-1831 ई॰)

शाह इस्माईल शहीद शाह वलीउल्लाह देहलवी के ख़ानवादा से ताल्लुक़ रखते हैं । आप एक जय्यद आलिम और सैयद अहमद शहीद की तहरीक के एक बुनियादी रुक्न

थे ।

शाह वलीउल्लाह (रह०) के बेटे शाह अब्दुल ग़नी मुहद्दिस देहलवी के घर में 1779 ई० (1193 हि०) आपका जन्म हुआ । आरंभिक शिक्षा अपने पिता से ही ली । दस वर्ष के हुए तो पिता की मृत्यु हो गयी । पिता की मृत्यु के बाद शाह अब्दुल क़ादिर (रह०) ने उनके तालीम तर्बियत की ज़िम्मेदारी ली ।

शाह इस्माईल ने शाह अब्दुल अज़ीज़ से हदीस की सनद हासिल की । फिर सैयद अहमद शहीद के हाथ पर बैअ्त करके ज़िन्दगी भर के लिए उनके दामन से वाबिस्ता हो गये ।

सैयद अहमद (शहीद) जहां जाते आप भी साथ जाते और आप ही के साथ 6 मई 1831 ई० को बालाकोट में शहादत का जाम पिया । शहादत के समय आपको एक बेटा था, जिसका नाम शाह मुहम्मद उमर था ।

नवाब सिराजुद्दौला
(1736-1757 ई०)

नवाब सिराजुद्दौला बंगाल का वह जांबाज़ सपूत है, जिसने सबसे पहले फ़िरंगी सेना से युद्ध किया । नवाब सिराजुद्दौला का अस्ल नाम मिर्ज़ा मुहम्मद था और नवाब अली वर्दी का नवासा था ।

9 रजब सन 1169 हिजरी (10 अप्रैल 1756 ई०) को नवाब अली वर्दी का इन्तिक़ाल हुआ । उनकी मृत्यु के बाद मिर्ज़ा मुहम्मद अपने नाना का उत्तराधिकारी बना और नवाब सिराजुद्दौला के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

नवाब सिराजुद्दौला को अंग्रेज़ों से बड़ी नफ़रत थी। उसने ईस्ट इंडिया कंपनी के क़िले और फ़ैक्ट्री पर क़ब्ज़ा कर लिया और कलकत्ता में अंग्रेज़ों के लिए ज़िन्दगी तंग कर दी । 23 जून 1757 ई० को पलासी के मैदान में अंग्रेज़ों से जंग हुई । मीर जाफ़र जैसे ग़द्दारों के कारण उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा । पराजित होने के बाद नवाब सिराजुद्दौला वहां से फ़रार हो गया परन्तु ग़द्दारों की मदद से जल्द ही गिरफ़्तार हो गया और 2 जुलाई 1757 ई० को बर सरेआम उनकी हत्या कर दी गयी ।

मौलाना मुहम्मद बिन क़ासिम पानीपती

मौलाना मुहम्मद बिन क़ासिम पानीपती (रह०) बड़े ही मुख़्लिस मुजाहिदे आज़ादी थे और सैयद अहमद शहीद की तहरीके जिहाद के एक अहम सदस्य थे । सरहद से सैयद साहब ने जिन लोगों को देश के विभिन्न भागों में इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए भेजा था उनमें आप भी शामिल थे । आपको मुम्बई भेजा गया था । बालाकोट के बाद आपके नेतृत्व में ही बचे-खुचे लोग अस्थाना पहुंचे थे ।

आपकी मृत्यु के बारे में मौलाना गुलाम रसूल मेहू ने तीन रिवायतें उल्लेख की हैं । (1) मौलवी नसीरुद्दीन के साथ लड़ते हुए शहीद हुए । (2) युद्ध की समाप्ति के बाद 54 आदमियों को लेकर हसन अली ख़ान के पास पहुंचे और वहीं रहते हुए उनकी मौत हुई । (3) 1853 ई० में अंग्रेज़ों ने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया और सियालकोट में क़ैद कर लिया, क़ैद में ही उनकी मृत्यु हो गयी ।

बहादुर शाह ज़फ़र
(1775-1862 ई०)

अबू ज़फ़र सिराजुद्दीन मुहम्मद बहादुर शाह ज़फ़र मुग़ल सल्तनत का आख़िरी शहंशाह था । 30 अक्तूबर 1775 ई० को लाल क़िला में एक हिन्दू रानी की कोख से जन्म लिया । हाफ़िज़ मुहम्मद इबराहीम और क़ारी मुहम्मद ख़लील आदि उस्तादों से क़ुरआन करीम और इस्लामी शिक्षाएं हासिल कीं । सैयद जलालुद्दीन हैदर और मीर इबराहीम अली से पढ़ना लिखना और किताबत सीखी । इसके अलावा तीरअन्दाज़ी, तलवारबाज़ी, निशानाबाज़ी और घुड़सवारी में भी महारथ हासिल की ।

बहादुर शाह ज़फ़र को शेरो-शायरी से बहुत लगाव था । जफ़र तख़ल्लुस था । शायरी में ज़ौक़, ग़ालिब और शाह नसीर आदि से ख़ूब छनती थी ।

28 सितम्बर 1837 ई० का अकबर शाह सानी की मृत्यु के बाद दिल्ली के गद्दी पर बैठे । सन् 1857 ई० का स्वतंत्रता संग्राम आपकी ही कमान में लड़ा गया । स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेज़ों की जीत हुई । 21 सितम्बर 1857 ई० को हुमायूं के मक़बरे के पास से बहादुर शाह को गिरफ़्तार कर लिया गया । शहज़ादों की तो हत्या कर दी गयी, लेकिन इनके ख़िलाफ़ बग़ावत का मक़दमा चलाया गया ।

27 जनवरी 1858 को मुक़दमे की कार्रवाई शुरू हुई । 9 मार्च 1858 को फ़ैसला सुनाया गया । आपको जलावतन करके मलिका ज़ीनत महल और बेटे जवान वख़्त के साथ रंगून भेज दिया गया ।

600 रुपये महीना वज़ीफ़ा सुनिश्चित किया गया, जिसे बहादुर शाह ने लेने से इंकार कर दिया और शेष चार साल

शैतान तो यही
चाहता है कि शराब और
जुए के द्वारा तुम्हारे बीच वैमनस्य
और द्वेष पैदा कर दे और तुम्हें
अल्लाह की याद और नमाज़
से रोक दे ।
(क़ुरआन)

With Best Compliments From :

Companions of Jamaat-e-Islami Hind
Park Side, Vikuroli (W)
Mumbai

बहुत ही तंगदस्ती में गुज़ारे । 7 नवम्बर 1862 ई० को अपने मालिके हक़ीक़ी से जा मिले ।

कितना है बदनसीब जफ़र दफ़्न के लिए
दो गज़ ज़मीन भी मिल न सकी कूए यार में।

मौलाना मुहम्मद क़ासिम नानौतवी (रह०)

(1832-1880 ई०)

मौलाना मुहम्मद क़ासिम नानौतवी (रह०) की शख़्सियत किसी परिचय की मुहताज नहीं । भारतीय मुसलमानों के इतिहास में आपका नाम बहुत ऊपर आता है । आप अपने समय के महान आलिमे दीन, देवबन्द के सरबराह और अरबाबे फ़ज़्लों कमाल के मुसल्लिमा इमाम थे ।

आप का जन्म 1832 ई० (1248 हि०) में सहारनपुर ज़िले के नानोता क़स्बे में हुआ । आपका तरीख़ी नाम खुर्शीद हसन है । आरंभिक शिक्षा मौलाना मेहताब अली देवबन्दी और मौलवी मुहम्मद नवाज़ सहारनुपरी से हासिल की । सन् 1844 ई० में दिल्ली आए और मौलाना ममलूक अली नानौतवी और मुफ़्ती सदरुद्दीन देहलवी से शिक्षा प्राप्त की ।

मौलाना शाह अब्दुल ग़नी मुजद्ददी और मौलाना अहमद अली मुहद्दिस सहारनपुरी से हदीस का दर्स लिया । सैयदुल ताइफ़ा हाजी इम्दादुल्लाह मुहाजिर मक्की के हाथ पर बैअ्त और ख़िलाफ़त से सरफ़राज़ हुए । आपके हल्क़ा-ए-दर्स से फ़ैज़याब होने वालों में शैखुल हदीस मौलाना महमूद हसन, मौलाना अहमद हसन मुहद्दिस अमरोहवी, मौलाना फ़ख़रुल हसन गंगोही, मौलाना अब्दुल अली मेरठी जैसे लोग शामिल हैं ।

1857 ई० के स्वतंत्रता संग्राम में आपने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और शामली के निकट अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जो मोर्चा बना था, उसका नेतृत्व मौलाना मुहम्मद क़ासिम नानौतवी ने ही किया था । युद्ध में अंग्रेज़ों की जीत हो गयी और मौलाना के ख़िलाफ़ गिरफ़्तारी का वारन्ट जारी कर दिया गया । इनाम की घोषणा भी की गयी मगर ब्रिटिश पुलिस अपनी तमाम तर कोशिशों के बावजूद उन्हें गिरफ़्तार न कर सकी। दो वर्षों तक इसी तरह देहातों और शहरों में गुज़ारे । 1867 और 1876 ई० में दूसरी और तीसरी बार हज किया ।

मौलाना नानौतवी एक कुशल सम्पादक भी थे । रोज़गार के सिलसिले में वे कई प्रकाशकों की पुस्तकों का सम्पादन किया करते थे । पठन-पाठन का सिलसिला भी चलता रहा था । ईसाइयों और आर्यसमाजियों के साथ मुनाज़रे भी किया करते थे । इस्लाम के ख़िलाफ़ उठने वाले कई फ़ित्ने की रोकथाम भी की ।

1283 हिजरी में दारुल उलूम देवबन्द, मदरसा मुंबिउल उलूम गुलावठी, मदरसा शाही मुरादाबाद, मदरसा क़ासिमिया नगीना और दूसरे मदरसे क़ायम किये उनकी सरपरस्ती में हज़ारों इस्लाम के दायी, मुबल्लिग़, ग़ाज़ी और मुजाहिद तैयार हुए । उर्दू और फ़ारसी में शायरी भी करते थे । अधिकांश शायरी हम्द व नाअ्त की शक्ल में होती थी । आबे हयात, हुज्जतुल इस्लाम, तक़रीर दिलपज़ीर, तस्फ़ीयदुल अक़ायद, इन्तसारुल इस्लाम, आदि आपकी इल्मी रचनाएं हैं ।

15 अप्रैल 1880 ई० को आप अपने मालिके हक़ीक़ी से जा मिले ।

मौलाना फ़रीदुद्दीन देहलवी

(शहादत-1857 ई०)

मौलाना फ़रीदुद्दीन अपने समय के जाने-माने आलिम और दिल्ली के शाही धर्मोपदेशक थे । आपको बहादुर शाह ज़फ़र ने जामा मस्जिद में वाज़ देने के लिए मनोनीत किया था । मौलाना फ़रीदउद्दीन दिल्ली में ही पले-बढ़े । मौलाना करीमुल्लाह देहलवी और शेख़ शेर मुहम्मद क़न्धारवी आदि से शिक्षा हासिल की और शेख़ हाजी मुहम्मद क़ासिम से हदीस की तालीम हासिल की । शैख़ अब्दुल अज़ीज़ इलाही बख़्श देहलवी के हाथ पर बैअ्त हुए और एक अरसे तक आपकी सेवा में रहे । शैख़ ने अपनी बेटी का निकाह भी आप से कर दिया ।

आप ने 1857 ई० के स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया । जिहाद के फ़त्वे पर आपने भी आलिमों के साथ हस्ताक्षर किये । जंगे आज़ादी की नाकामी के बाद एक दिन अंग्रेज़ी सेना आपके घर में घुस गयी और आपको शहीद कर डाला । आपने कई किताबें भी लिखी हैं । "सैफ़ुल मस्लूल अली मन अंकरासर क़दमुर्रसूल" आपकी मशहूर किताब है । आप के बेटे शाह मुहम्मद उमर ख़ादंजी भी दिल्ली के मशहूर बुज़ुर्ग थे । फ़राशख़ाना में अरववंदजी गली उसी परिवार के नाम से मशहूर हैं।

मौलाना किफ़ायत अली काफ़ी शहीद

(शहादत-1858 ई०)

मौलाना किफ़ायत अली काफ़ी ख़ानवाद-ए-सालत के एक मुम्ताज़ रुक्न, आलिम, फ़ाज़िल, तबीब (हकीम) और

शायर थे। 'काफ़ी' तख़ल्लुस था। मुरादाबाद के रहने वाले थे। हज़रत शाह अबू सईद मुजद्दी से हदीस का इल्म हासिल किया। उन्हें हदीसे रसूल (सल्ल०) से काफ़ी लगाव था। सीरते रसूल से आपको इश्क़ था। इसी इश्क़ की भावना को वे अपनी शायरी में बयान किया करते थे।

बस आरज़ू यही दिले हसरतज़दा की है
सुनता रहे शुमाइले अह्वाले मुस्तफ़ा

आप ने कई किताबें भी लिखीं है और सभी किताबें हदीस और सीरते रसूल पर हैं। अहादीसे फ़िरदौस इनकी मशहूर किताब है।

1857 ई० की जंगे आज़ादी में आपने खुलकर हिस्सा लिया। नवाब मुजद्दीन उर्फ़ नवाब मज्जू ख़ान की आज़ाद हुकूमत में आप सदरुल शरीअत थे। जब मुरादाबाद नवाब रामपुर का वर्चस्व क़ायम हुआ तो अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जिहाद का एक फ़त्वा जारी किया गया। इस फ़त्वा को दूसरी जगहों पर भी पहुंचाया गया।

25 अप्रैल 1858 ई० को मुरादाबाद पर दोबारा अंग्रेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया। 30 अप्रैल 1858 ई० को (16 रमज़ानुल मुबारक 1274 हि०) आपको गिरफ़्तार करके फांसी पर लटका दिया गया।

जिस समय आपको फांसी के लिए ले जाया जा रहा था, तो आप इश्के रसूल (सल्ल०) में डूबे हुए उच्च स्वर में एक नज़्म पढ़ रहे थे। बोल थे :

"कोई गुल बाक़ी रहेगा,
न चमन रह जायेगा,
पर रसूलल्लाह का
दीने हसन रह जायेगा।

मौलाना काफ़ी मरहूम को मुरादाबाद जेल के बाहर इकटठी भीड़ के सामने फांसी दी गयी और फिर उन्हें उसी स्थान पर दफ़न कर दिया गया।

शैख़ुल हिन्द मौलाना महमूद हसन देवबन्दी
(1851-1920 ई०)

शैखुल हिन्द मौलाना महमूद हसन देवबन्दी (रह०) एक अज़ीम मुहद्दिस, बेमिसाल मुफ़स्सिर, बुलन्द पाया आलिम, मुदब्बिर, क़ायद, आज़ादी व इंक़िलाबी तहरीक के इमाम थे। निस्संदेह आपका शुमार चौदहवीं सदी हिजरी के सबसे अज़ीम इंसान के रूप में होता है।

आपका जन्म 1851 ई० में बरेली में हुआ था। आपके पिता मौलाना जुलफ़िक़ार अली नौकरी के सिलसिले में बरेली में ही रहते थे। देवबन्द आपका असली वतन था। शुरुआती लालन-पालन देवबन्द में ही हुआ। शुरू में आपने एक दीनदार बुजुर्ग मियांजी मंगलौरी से शिक्षा हासिल की और अरबी की तालीम अपने चचा मौलाना मेहताब अली देवबन्दी से हासिल की।

1867 ई० में दारुल उलूम देवबन्द क़ायम किया गया। और आप उसके पहले बैच में शामिल हुए। उस्ताद मुल्ला महमूद देवबन्दी व अन्य उस्तादों से शिक्षा हासिल की।

हदीस पाक और अन्य विषय मेरठ में रहकर हुज्जतुल इस्लाम मौलाना मुहम्मद क़ासिम नानौतवी से पढ़ा। कुछ किताबें अपने पिता से भी पढ़ीं। 1873 ई० में फ़ारिग़ होकर मौलाना नानौतवी के हाथ से दस्तारे फ़ज़ीलत हासिल की। 1874 ई० में दारुल उलूम में मुदर्रिस नियुक्त हुए और 1892 ई० में सदारते तदरीस के पद पर आसीन हुए और मरते दम तक इसी पद पर बने रहे।

आपके दौरे सदारत में 890 छात्रों ने दौरे हदीस को पूरा किया। आपके शागिर्दों में मौलाना अशरफ़ अली थानवी, अल्लामा अनवर शाह काश्मीरी, मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी, मौलाना हुसैन अहमद मदनी, मुफ़्ती क़िफ़ायतुल्लाह जैसी शख़्सियत शामिल हैं।

सलूक व मारफ़त की तहसील हज़रत हाजी इम्दादुल्लाह मुहाजिर मक्की, और कुत्बे इरशाद हज़रत मौलाना रशीद अहमद गंगोही से की और दोनों तरफ़ से इजाज़ते बैअत व ख़िलाफ़त हासिल हुई।

आज़ादी की लड़ाई में आपकी ख़िदमत और कारनामे मिसाल हैं। आपने एक लम्बी अवधि तक आज़ादी के लिए संघर्ष उस समय शुरू किया जब इंडियन नेशनल कांग्रेस का अस्तित्व भी नहीं था। 1878 ई० में आपने 'अंजुमन तमरतुतर्तीब' क़ायम करके आज़ादी के लिए संघर्ष शुरू किया था। 1909 में जमीअतुल अंसार, 1913 में नज़ारतुल मआरिफ़ अल-क़ुरआनिया और 1916 में तहरीक रेशमी रूमाल के नाम से आपकी इंक़िलाबी सरगर्मियां ज़ाहिर हुईं।

अंग्रेज़ों से देश को ख़ाली करने की ऐसी सुनियोजित योजना बनायी गयी थी, कि यदि वह सफल हो गयी होती तो संभवत: पूरी दुनिया से अंग्रेज़ों का वर्चस्व समाप्त हो जाता। आपके इस आन्दोलन का फैलाव हिन्दुस्तान से रूस, जर्मनी, तुर्की, अफ़ग़ानिस्तान और बिलादे अरब तक फैला

हुआ था । मगर अफ़सोस कि समय से पहले ही राज़ फ़ाश हो गया और आज़ादी के मतवाले सलाख़ों के अन्दर बन्द कर दिये गये ।

मौलाना महमूद हसन को भी अपने चार रफ़ीक़ों के साथ मक्का-मुअज़्ज़मा में गिरफ़्तार किया गया और मिस्र और माल्टा के जेलों में बन्द रखा गया । तीन साल जेल में रहने के बाद जून 1920 ई० को वे भारत लाये गये और 30 नवम्बर 1920 ई० को लंबी बीमारी के बाद आपका इन्तिक़ाल हो गया ।

मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी
(1872-1944 ई०)

शैख़ुल हिन्द मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी "आज़ाद हिन्द सरकार" के संस्थापक और इंक़िलाबी तहरीक के हीरो थे । आज़ादी हासिल करने के लिए 24 वर्षों तक लगातार एक देश से दूसरे देश की ख़ाक छानते रहे ।

मौलाना 12 मार्च 1873 ई० को सियालकोट (पंजाब) के एक सिक्ख घराने में पैदा हुए । स्कूल में ही थे कि इस्लाम का अध्ययन शुरू कर दिया । तोहफ़तुल हिन्द और तक़वीयतुल ईमान आदि पुस्तकों के अध्ययन से इस्लाम की हक़्क़ानियत उनके सामने वाज़ेह हो गयी और अपना घर-बार छोड़कर कोटला रहम शाह पहुंच गये ।

15 अगस्त 1887 को इस्लाम क़ुबूल करने का ऐलान कर दिया । कुछ महीने तक क़ादरिया सिलसिले के मशहूर बुज़ुर्ग हाफ़िज़ मुहम्मद सिद्दीक़ भरचोंदी के साथ रहे, जिससे इस्लाम की बरकत उनकी नज़र में वाज़ेह हो गयी । कोटला रहम शाह और दीनपुर में विभिन्न शिक्षकों से अरबी भाषा की शिक्षा ली और उच्च शिक्षा के लिए देवबन्द पहुंच गये । वहां आप ने हज़रत गंगोही (रह०) से हदीस का दर्स लिया ।

फ़ारिग़ होने के बाद शैख़ुल हिन्द ने आपको अपनी तहरीक और मिशन का राज़दार बना लिया और सदस्य बनाकर सिंध भेज दिया, जहां आप पठन-पाठन और अन्य दीनी व इल्मी गतिविधियों के अलावा तहरीक के काम को भी आगे बढ़ाने लगे ।

1909 में आप देवबन्द वापस आ गये और जमीअतुल इस्लाम की ज़िम्मेदारी संभाल ली । सन् 1913 में आप दिल्ली आए और नज़ारतुल मआरिफ़ अल-क़ुरआनिया की ज़िम्मेदारी संभाली । सन् 1914 में विश्व युद्ध के शोले भड़क उठे और आप शैख़ुल हिन्द के आदेश पर काबुल गये और फ़िरंगी हुकूमतों के ख़िलाफ़ इस्लामी सल्तनतों के एक-जुट करने की कोशिश की और आज़ाद हिन्द हुकूमत की बुनियाद डाली और इस सिलसिले में विभिन्न देशों का दौरा किया । भारत को आज़ाद कराने के लिए आप मास्को तक गये ।

लेकिन शैख़ुल हिन्द की आज़ादी की तहरीक नाकाम हो गयी और आप के लिए देश निकाला का आदेश जारी कर दिया गया । देश में जिन लोगों को गिरफ़्तार किया गया था उन्हें, तो कुछ वर्षों में छोड़ दिया गया लेकिन आपका जलावतनी का आदेश समाप्त नहीं हुआ ।

1937 में आपकी पाबन्दी हटायी गयी और 24 साल बाद आपने अपने देश की सरज़मीन पर क़दम रखा । कुछ दिन दिल्ली में रहे फिर लाहौर चले गये। 2 अगस्त 1944 को आपका इन्तिक़ाल हुआ ।

मौलाना सैयद हुसैन अहमद मदनी
(1879-1957 ई०)

शैख़ुल इस्लाम मौलाना सैयद हुसैन अहमद मदनी का जन्म 1879 ई० को बांगर मऊ, ज़िला उन्नाव में हुआ । आपके पिता सैयद हबीबुल्लाह नौकरी के सिलसिले में फ़ैज़ाबाद में ही रहते थे । आपकी आरंभिक शिक्षा वहीं हुई । दर्से निज़ामी की शिक्षा हज़रत शैख़ुल हिन्द मौलाना महमूद हसन देवबन्दी की निगरानी में देवबन्द में हुई । वहां आप लगातार सात वर्षों तक रहे । आध्यात्मिक शिक्षा हज़रत मौलाना रशीद अहमद गंगोही की सोहबत में प्राप्त की ।

सन 1316 हि० में आप के पिता परिवार के सभी सदस्यों के साथ मदीना मुनव्वरा तशरीफ़ ले गये । आप भी उनके साथ रहे और सन् 1335 हि० तक यानी लगातार 18 वर्षों तक वहां रहने का अवसर मिला । इस बीच वे केवल चार बार भारत आए और केवल कुछ महीनों तक ही भारत में रहे । फिर 1335 हि० में हज़रत शैख़ुल हिन्द (रह०) के साथ माल्टा, अमरोहा, कलकत्ता और सिल्हर का दौरा किया और पठन-पाठन में लगे रहे और शैख़ुल हदीस के पद पर रहकर अपनी ज़िम्मेदारियां निभाते रहे ।

इस अवधि में 3,826 छात्रों ने दौरे हदीस पूरा किया और 167 लोगों ने आपके हाथ पर बैअ्त की और ख़िलाफ़त से सरफ़राज़ हुए । सैंकड़ों लोगों ने आपके हाथ पर इस्लाम क़ुबूल किया । आपने देश भर में सैकड़ों मदरसे क़ायम किये और उनकी सरपरस्ती फ़रमायी ।

भारत की आज़ादी की तहरीक में बहुत ही सक्रिय भूमिका निभायी और रेशमी रूमाल आन्दोलन का नेतृत्व किया। जमीअत उलमा-ए-हिन्द की भी अनेक ज़िम्मेदारियां संभालीं।

शैखुल हिन्द (रह०) के इन्तिक़ाल के बाद मिल्ली क़ियादत की ज़िम्मेदारी भी निभायी और उनके मिशन को पूरा किया।

मौलाना सैयद हुसैन मदनी साहब देश की आज़ादी के लिए चार बार जेल भी गये और क़ैदोबन्द की आज़माइशें भी बरदाश्त कीं। आप कुल मिलाकर सात साल सलाख़ों के पीछे रहे।

1923 ई० में जमीअत उलमा-ए-हिन्द की कार्यकारिणी समिति के सदस्य बने। 1940 में आप को सदर चुन लिया गया और 1940 से 5 दिसम्बर 1957 तक यानी जब तक वे ज़िन्दा रहे जमीअत उलमा-ए-हिन्द का नेतृत्व करते रहे और 5 दिसम्बर 1957 को इल्मो अमल और ज़ुहदो-तक़्वा का यह आफ़ताब देवबन्द में ग़ुरूब हो गया।

मौलाना मुहम्मद अली जौहर
(1878-1931 ई०)

मुहम्मद अली जौहर भारत के उस महान व्यक्तित्व का नाम है, जो अंग्रेज़ी का ज़बरदस्त लेखक, उर्दू का मशहूर शायर, आग उगलने वाला वक्ता, परिपक्व राजनीतिज्ञ, और आज़ादी की लड़ाई का अलमबरदार था।

मुहम्मद अली जौहर का जन्म 10 दिसम्बर 1878 ई० को रामपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ। आरंभिक शिक्षा बरेली हाई स्कूल में हुई। उच्च शिक्षा के लिए पहले अलीगढ़ विश्वविद्यालय और फिर ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी गये।

मौलाना अब्दुल बारी फ़िरंगी महली से शर्फ़े इरादत हासिल की। मदरसा निज़ामिया से 'मौलाना' की एज़ाज़ी डिग्री हासिल की और 'मिस्टर' की जगह 'मौलाना' के नाम से मशहूर हुए।

आप जंगे आज़ादी के महान योद्धा एवं मुजाहिद थे। स्वतंत्रता संग्राम में आप की सेवाओं की कोई दूसरी मिसाल नहीं। आप ने अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'कामरेड' और उर्दू दैनिक 'हमदर्द' के ज़रिए आज़ादी के आन्दोलन को परवान चढ़ाया। कराची के मशहूर मुक़दमा के अस्ल हीरो आप ही थे।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद
(1888-1958 ई०)

इमामुल हिन्द मौलाना अबुल कलाम आज़ाद भारत के एक महान सपूत, जंगे आज़ादी के सिपहसालार, और एक अह्दे आफ़रीं इन्सान थे। 17 अगस्त 1888 ई० को मक्का मुअज़्ज़मा में पैदा हुए। पिता का नाम ख़ैरुद्दीन था। जो एक जय्यद आलिम और बाअमल सूफ़ी थे। कलकत्ता में ही पले-बढ़े। घर पर ही तालीम हासिल की। कला और संस्कृति पर गहरी नज़र थी। उसी के साथ उनके बयानों और तक़रीरों में जादू था।

आप ने अपनी ज़ुबान और क़लम से हज़ारों-लाखों सीनों में देश की आज़ादी की ज्वाला भड़कायी। आप के अख़बार "अल-हिलाल" ने देश के कोने-कोने में आज़ादी का बिगुल बजाया।

1915 ई० में आपकी राजनीतिक गतिविधियों के कारण बंगाल की हुकूमत ने आपको जलावतन करके रांची में नज़रबन्द कर दिया। उसके बाद भी आज़ादी की लड़ाई के सिलसिले में बार-बार गिरफ़्तार होते रहे। आप ने लगभग 16 वर्ष सलाख़ों के पीछे बिताए।

आप शुरू ही से जमीअत उलमा-ए-हिन्द की वर्किंग कमेटी के सदस्य रहे। लाहौर के इजलासे आम (1921) और कराची के इजलासे आम (1931) में आम कांग्रेस पार्टी ऑफ़ इंडिया के अध्यक्ष रहे। आज़ादी से पहले सात वर्षों तक कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। आप ही के नेतृत्व में 'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो' (Quit India Movement 1942) आन्दोलन चलाया गया। आज़ादी के बाद आप देश के पहले शिक्षा मंत्री बने।

आपकी इल्मी, सियासी, अदबी और सहाफ़ती सेवाओं पर इतना लिखा जा चुका है, कि यदि उसे एक जगह इकट्ठी कर दी जाए तो कई पुस्तकालय भर जायेंगे। सन् 1958 ई० में आप का इन्तिक़ाल हो गया।

मौलाना बरकतुल्लाह भोपाली
(1862-1927 ई०)

मौलाना बरकतुल्लाह भोपाली आज़ादी की लड़ाई के अज़ीम मुजाहिद, हुकूमते मुवक्कता के वज़ीर आज़म, ग़दर पार्टी के संस्थापक, और शैखुल हिन्द द्वारा चलायी गयी तहरीक के जांबाज़ सिपाही थे। 1862 ई० में भोपाल में पैदा हुए। पिता का नाम मौलवी शुजाअतुल्लाह ख़ान था। मदरसा

सुलैमानिया भोपाल में शिक्षा प्राप्त की । 1878 ई॰ में कैरियर की शुरुआत पठन-पाठन से की । कुछ दिनों तक बम्बई में रहकर अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त की । 1890 में इंग्लैंड तशरीफ़ ले गये । वहीं से उनपर देश को आज़ाद कराने का धुन सवार हुआ । इस सिलसिले में उन्होंने कई देशों का दौरा किया । यूरोप और एशिया का चप्पा-चप्पा छान मारा । लन्दन, अमेरिका, तुर्की, फ़्रांस, जर्मनी, डेनमार्क, जापान, रूस, अफ़ग़ानिस्तान और अरब देशों का छत्तीस सालों तक लगातार चक्कर लगाया । ज़िन्दगी का अधिकांश हिस्सा इंक़िलाबी कोशिशों में गुज़रा । 27 सितंबर 1927 ई॰ को अपने मालिके हक़ीक़ी से जा मिले ।

मुफ़्ती किफ़ायतुल्लाह
(1875-1952)

आप भारत के मुफ़्ती-ए-आज़म और आज़ादी के मतवालों के सिपहसालार थे । आप एक ही समय में मुहद्दिस, मुफ़क्किर, फ़क़ीह, अदीब, शायर, गणितज्ञ, राजनीतिज्ञ, और मुजाहिद सब कुछ थे ।

आप शाहजहांपुर के एक ग़रीब परिवार में पैदा हुए । आर्रभिक शिक्षा मदरसा एज़ाज़िया, शाहजहांपुर में हुई । उसके बाद दो साल जामिया क़ासमिया, मुरादाबाद और फिर तीन साल दारुल उलूम देवबन्द में शिक्षा प्राप्त की ।

22 वर्ष की आयु में ग़रीब परिवार का यह चिराग़ शैखुलहिन्द के साथ जुड़ गया और अपनी ख़ुदादाद सलाहियतों के कारण जल्द ही ऐसी हैसियत हासिल कर ली, जो शायद ही किसी को नसीब होता है । शरीअत का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं या जिसमें आप ने अपने इल्म का सिक्का न बिठा लिया ।

हज़रत गंगोही (रह॰) के दस्ते मुबारक़ पर बैअ्त होकर सलूक व मारफ़त की तकमील की । फ़ारिग़ होने के बाद लगभग 5 सालों तक मदरसा ऐनुल आम, शाहजहांपुर में इफ़्ता का दर्स दिया और फिर मदरसा अमीनियाा दिल्ली में सदर मुदर्रिस व मुफ़्ती के पद की ज़िम्मेदारी संभाली । मदरसा के संस्थापक मौलाना अमीनुद्दीन के इन्तिक़ाल के बाद आप ने ही मुहतमिम की ज़िम्मेदारी संभाल ली और फिर जब तक ज़िन्दा रहे अपनी ज़िम्मेदारी निभाते रहे । आप ने लगभग 55 वर्षों तक यह ज़िम्मेदारी संभाली । आप के शगिर्दों में मौलाना एजाज़ अली, मुफ़्ती मेहदी हसन और मौलाना अहमद सईद जैसी शख़्सियत शामिल हैं।

पठन-पाठन के अलावा आपने मिल्ली क़ौमी और सियासी तहरीकों में भी महती भूमिका निभाई । तहरीके शैखुल हिन्द में हिस्सा लिया । 1917 ई॰ में आपने 'अंजुमन अआनत नज़रबन्दाने इस्लाम' क़ायम की । जमीअत उलमा-ए-हिन्द की स्थापना में भी आपकी महत्वपूर्ण भूमिका रही । 20 वर्षों तक आप जमीअत के सदर रहे । आपके सदर रहते जमीअत अलमा-ए-हिन्द ने भारत की आज़ादी के लिए जो सेवाएं प्रदान की हैं उन्हें, भुलाया नहीं जा सकता । स्वयं आप भी इस सिलसिले में कई बार जेल गये ।

मौलाना शौकत अली
(1873-1933 ई॰)

मौलाना शौकत अली तहरीके ख़िलाफ़त के अज़ीम लीडर, अंजुमन ख़ुद्दामे काबा के संस्थापक और मौलाना मुहम्मद अली जौहर के बड़े भाई थे । 10 मार्च 1873 ई॰ को पैदा हुए । आर्रभिक शिक्षा बरेली हाई स्कूल से प्राप्त की । मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ से 1859 ई॰ में बी॰ ए॰ पास किया । ग्रेजूएट होने के बाद सरकारी नौकरी कर ली । सर आग़ा ख़ान के प्राइवेट सेक्रेट्री भी रहे । फिर मिल्लतो मुल्क की सेवा के लिए पेंशन ले ली ।

स्वतंत्रता संग्राम में मर्दानावार हिस्सा लिया । पहली बार 30 मई 1915 में गिरफ़्तार हुए । दिसम्बर 1919 को रिहाई हुई । फिर ख़िलाफ़त तहरीक के सिलसिले में मशहूर कराची मुक़दमे में दो बार सज़ा पायी और अपने साथियों के साथ दो साल कराची जेल में रहे । उसी ज़माने में दोनों भाई "अली बिरादरान" के नाम से मशहूर हुए और देश के गली-कूचे में बच्चा-बच्चा की जुबान पर यह शेर चढ़ गया ।

बोली अम्मा मुहम्मद अली की
जान बेटा ख़िलाफ़त पे दे दें ।

आपकी मिल्ली सेवाओं को देखते हुए आपके पीर व मुर्शिद मौलाना अब्दुल बारी फ़िरंगी महली ने आपको मौलाना की एज़ाज़ी सनद प्रदान की और फिर मौलाना ही के नाम से मशहूर हुए ।

जब ख़िलाफ़त तहरीक ने दम तोड़ दिया, तो मुस्लिम लीग में शामिल हो गए । 26 नवम्बर 1933 ई॰ को दिल्ली में इन्तिक़ाल हुआ । जामा मस्जिद के पूर्वी द्वार पर स्थित छोटी मस्जिद के अहाते में दफ़्न किया गया ।

हज़रत नोमान बिन बशीर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : "पारस्परिक प्रेम और पारस्परिक दया और पारस्परिक अनुग्रह में मोमिनों की मिसाल शरीर की है कि जब उसका कोई अंग पीड़ित होता है, तो सम्पूर्ण शरीर उसके साथ जागता और ज्वर में ग्रस्त हो जाता है ।"

–बुख़ारी, मुस्लिम

A WELL WISHER
Hameed & Co.
Kolkata

अद्भुत क्रांतिकारी मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी

● संपादन प्रभाग

सन् 1915-16 में भारत के क्रांतिकारियों ने काबुल में भारत की जो अस्थायी आज़ाद सरकार बनाई थी, उसके अध्यक्ष राजा महेन्द्र प्रताप थे और प्रधानमंत्री मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी ।

मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी 15 अक्तूबर 1915 को काबुल पहुंचे थे । वह वहां सात साल सात दिन रहे । वह कट्टर देशभक्त और गुरुभक्त भी थे । जब उनके गुरु मौलाना महमूदुल हसन ने सिंधी से कहा–काबुल चलो तो उनका कहना था–क्यों ? इसी तरह दोबारा भी हुआ और तीसरी बार मौलाना महमूदुल हसन के काबुल चलो–कहने पर वह चुपचाप राज़ी हो गये । लेकिन काबुल जाना इतना आसान न था, क्योंकि पास में कोई छोटी-मोटी रक़म तो थी ही नहीं । तब शेख़ अब्दुर्रहीम की बेगम और बेटियों ने अपने गहने बेचकर उन्हें मार्ग व्यय दिया ।

दो महीने में वह काबुल (अफ़ग़ानिस्तान) की सीमा पर पहुंचे और कन्धार (गांधार) होते हुए काबुल पहुंचे । उन दिनों काबुल में अमीर हबीबुल्लाह की सरकार थी । हबीबुल्लाह दो मुंही नीति पर चल रहा था । एक ओर वह इंडो-जर्मन, टर्किश मिशन के सदस्यों से मिलकर भारत में अंग्रेज़ हुकूमत के विरुद्ध युद्ध की योजना बना रहा था और युद्ध के लिए उक्त मिशनों से ख़ूब रुपया ऐंठ रहा था, तो दूसरी ओर वह उन तमाम योजनाओं को लिखकर अंग्रेज़ों को दे रहा था । बदले में वह उनसे भी मोटी रक़म बसूलता था ।

प्रधानमंत्री नसरुल्लाह ख़ां, जो अमीर के भाई थे, मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी को बहुत चाहते थे, इसलिए नसरुल्लाह ख़ां की मदद से वहां 'वजूदुल्लाह' नामक संस्था स्थापित की गयी, जो राजनीतिक गतिविधियों का संचालन करती थी । बाद में यह संस्था अस्थायी आज़ाद भारत सरकार में विलीन कर दी गयी ।

इसी दौरान भारत में अंग्रेज़ों के विरुद्ध जंग छेड़ने संबंधी पत्र जो मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी और मौलाना मन्सूरी ने मक्का स्थित मौलाना महमूदुल हसन को किन्हीं हाथों भिजवाए थे, वे ख़ान बहादुर हकनबाज़ ख़ां के हाथों पड़ गये और उसने उन पत्रों को सर माइकेल ओडायर को थमा दिया । उक्त घटना के घटते ही मक्का में मौलाना महमूदुल हसन को गिरफ़्तार कर लिया गया । जो लोग मुसलमान देश भक्त, क्रांतिकारियों से अपरिचित हैं, उन्हें उनकी क़ुरबानी और काम की महत्ता समझने की ज़रूरत है ।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर, जो सन् 1918 में ख़त्म हुआ, काबुल स्थित अस्थायी आज़ाद भारत सरकार भंग कर दी गई । मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी एक ऐसे कमरे में नज़रबन्द कर दिए गए जिसमें मुश्किल से दस आदमी रखे जा सकते थे, किन्तु उसमें 25 आदमी नज़रबन्द थे । इस बात की शिकायत जब आला अधिकारी से की गई तो उसने मौलाना उबैदुल्लाह को एक बाग़ में तम्बू लगवाकर उसमें भेज दिया ।

इसी मध्य अमीर हबीबुल्लाह ख़ां, काबुल के शासक की हत्या कर दी गई और शाह अमानुल्लाह शासक बन गए । अमानुल्लाह ने मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी को नज़रबन्दी से मुक्त कर दिया । अफ़ग़ान शासक शाह अमानुल्लाह मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी का बहुत आदर करता था, इसलिए राज-काज में भी उनसे सलाह-मशविरा लिया करता था । सन् 1919 में अफ़ग़ानिस्तान ने, भारत के पश्चिमी सीमान्त प्रांत पर आक्रमण भी मौलाना सिंधी की प्रेरणा और योजना के अनुसार ही किया था ।

जनरल नादिर ख़ां की बड़ी सेना के साथ सरहद के क़बीलों के शामिल हो जाने से अंग्रेज़ अधिकारी घबरा गए । मौलाना उबैदुल्लाह के साथी, सहयोगी मौलाना ज़फ़र हुसेन ने, जो लाहौर से काबुल गए थे, क़बीलों को प्रोत्साहित करने में महान योगदान किया था ।

अंग्रेज़ों की हवाई बम वर्षा और सरहद के क़बीलों का

काबुल का साथ देना, दोनों बराबर की टक्कर थी । अन्ततः अंग्रेज़ों का काबुल से संधि करनी पड़ी । यद्यपि काबुल की विदेश नीति की स्वतंत्रता अंग्रेज़ मान गए, लेकिन उन्होंने काबुल में मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी की राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध की शर्त भी संधि में जोड़ दी । शाह अमानुल्लाह, जो उसी दौरान गद्दी पर बैठे थे, अपनी सत्ता की ख़ातिर उन शर्तों को मान गए, जो भारतीय मुसलमान क्रांतिकारियों के संबंध में निषेधात्मक थीं । यह संधि 8 अगस्त 1922 को हुई थी ।

अन्ततः सात साल तक काबुल अवाध रूप से राजनीतिक गतिविधियों को संचालित करने वाले मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी को काबुल छोड़ना पड़ा । यह घटना सन् 1922 के 22 अक्तूबर की है । रूसी तुर्किस्तान होते हुए वह मास्को पहुंचे और वहां सात मास तक उन्होंने कम्युनिज़्म का अध्ययन किया । वहां से भी वह अंगोरा चले गए और वहां तुर्की के जन-जागरण को समझा, जाना । साथ ही पैन इस्लामिक आन्दोलन का भी उन्होंने बारीकी से अध्ययन किया । तब उन्होंने अपनी गतिविधियों को कांग्रेस आंदोलन में विलीन करने की ठानी । वहां से उन्होंने हिन्दुस्तान के मुसलमानों से कांग्रेस आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने की अपील की । पत्रक छपवाकर भिजवाए, जो उर्दू-अंग्रेज़ी- दोनों भाषाओं में थे । तीन वर्ष तक तुर्की में रहने के बाद वह इटली चले गए ।

इटली में मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी की भेंट स्व० जवाहर लाल नेहरू से हुई । दोनों में ख़ूब विचार विनिमय हुआ । अपने विगत जीवन की हलचलों से भी जवाहर लाल नेहरू को उन्होंने अवगत कराया ।

पं० नेहरू ने अपनी कहानी में लिखा है-

'इनके अलावा एक मौलवी उबैदुल्लाह सिंधी थे, जो कुछ समय के लिए मुझसे इटली में मिले थे ।...हिन्दुस्तान के संयुक्त राज्यों या हिन्दुस्तान के संयुक्त प्रजातंत्र की उन्होंने एक योजना बनाई थी, जो हिन्दुस्तान की साम्प्रदायिक समस्या को हल करने की काफ़ी अच्छी कोशिश थी ।'

कहने का मतलब यह है कि, पं० जवाहर लाल नेहरू भी मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी की प्रतिभा के क़ायल थे । एक दूसरी जगह पर भी नेहरू ने उनकी तारीफ़ की है ।

जब लाला लाजपतराय ने मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी पर मुस्लिम देशों द्वारा भारत पर अधिकार करवाने की साज़िश का आरोप लगाया था; तो पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था और मेरी कहानी में लिखा है-

'मुझे याद है कि जब मैंने स्विटज़रलैंड में हिन्दुस्तानी अख़बारों में लाला जी के इल्ज़ामों को पढ़ा तो मैं दंग रह गया ।' यानी भारत के मुसलमान, जो क्रांतिकारी थे, इस्लाम के पक्के अनुयायी होने के बावजूद सही मायने में भारतीय थे, देशभक्त थे । सन् 1936 में जब कांग्रेस सात प्रांतों में सत्ता में आई, तो सिंध प्रांत के मुख्यमंत्री स्व० अल्लाबख़्श ने मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी को भारत लौटने की सूचना भेजी । इससे पूर्व वे हिजाज़ में बसने के इच्छुक थे । वहां रहते उन्होंने एक मदरसा भी चलाया था । राजनीतिक गतिविधियों पर पाबंदी थी, लेकिन उक्त सूचना व पासपोर्ट मिल जाने पर वह मार्च 1939 में भारत लौट आए ।

भारत आते ही मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी ने घोषणा की कि मैं पहले भी कांग्रेसी था और अब भी । वह भारत के मुसलमानों को तुर्की के मुसलमानों जैसा जीवन बनाने की बात करते तो लीगी मुसलमान ख़फ़ा होते थे । अन्य मौलवी भी उनसे सहमत न थे ।

मौलाना उबैदुल्लाह ने कहा था- भारत के नौजवान मुसलमानों को तहबंद और पायजामे की जगह नेकर पैंट अपनानी चाहिए, सेना में भर्ती होना चाहिए, शिक्षित बनना चाहिए । टोप पहनकर नमाज़ अदा करनी चाहिए ।

ये सब बातें हिन्दुस्तान के मुसलमान मंज़ूर करने को तैयार न थे, अतः मौलाना उबैदुल्लाह भारत तो लौट आए, लेकिन मौत आने तक तंग हालत में ही रहे । जिन दिनों वह दिल्ली के ओखला में रह रहे थे, उनके पास दिल्ली आने के लिए बस किराया तक न होता था और दस किलोमीटर पैदल चलकर दिल्ली आते थे ।

मोटा खद्दर का कुर्ता, पायजामा और सर पर अंगोछा यही उनकी पोशाक थी । लंबी लाठी का सहारा लिए, बिल्कुल किसान की तरह ज़िन्दगी बिताने वाले मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी को देखकर यह अनुमान लगाना आसान नहीं था कि वह एक महान देशभक्त क्रांतिकारी हैं ।

सन् 1944 के 21 अगस्त को रियासत बहावलपुर (भावलपुर) के दीनपुर स्थान पर क्रांति का वह अनुपम योद्धा सदा के लिए सो गया, जिसने कभी अफ़ग़ानिस्तान के निर्माण में और भारत की स्वतंत्रता के संग्राम में अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी ।

'क्रान्तिदूत' अज़ीमुल्लाह ख़ां

● संपादन प्रभाग

अज़ीमुल्लाह ख़ां यूसुफ़ज़ई 1857 की क्रान्ति के आधार स्तंभों में से थे । उन्होंने नाना साहब (नाना राव पेशवा बाजीराव द्वितीय) के साथ मिलकर क्रान्ति की योजना तैयार की थी । नाना साहब ने इनके साथ भारत के कई तीर्थ स्थलों की यात्रा भी की व क्रान्ति का संदेश भी फैलाया । नाना साहब का जन्म बिठूर (कानपुर) में 19 मई 1824 को हुआ था । अज़ीमुल्लाह 'क्रान्तिदूत' की उपाधि से संबोधित किये जाते हैं ।

अज़ीमुल्लाह ख़ां का जन्म 1830 ई॰ में साधारण परिवार में हुआ था । इनके माता-पिता बहुत ग़रीब थे । बहुत ही मुश्किल से कानपुर के एक स्कूल में इनको दाख़िला मिला ये पढ़ने में मेधावी थे, इसलिए इनकी फ़ीस माफ़ की गई व छात्रवृत्ति भी दी गई । बाद में बड़े होने पर वे इसी स्कूल में शिक्षक बन गये ।

अज़ीमुल्लाह ख़ां की योग्यता व ईमानदारी की कहानी नाना साहब के कानों तक पहुंची तो, उन्होंने अज़ीमुल्लाह ख़ां को अपना मंत्री बना लिया । नाना साहब के यहां आने से पहले अज़ीमुल्लाह ख़ां एक ब्रितानी पदाधिकारी के यहां बावर्ची का काम करते थे । इसके सम्पर्क में आकर अज़ीमुल्लाह ख़ां ने अंग्रेज़ी व फ़्रांसीसी दोनों भाषाओं व ब्रितानियों के रीति-रिवाजों को सीखा । 26 जनवरी 1851 में जब बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हो गई, तो उनके दत्तक पुत्र नाना साहब को पेशवा की उपाधि व व्यक्तिगत सुविधाओं से वंचित रखा गया ।

1854 में नाना साहब ने अज़ीमुल्लाह ख़ां को अपना राजनीतिक दूत बनाकर इंग्लैंड भेजा । अज़ीमुल्लाह ख़ां ने ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों से मिलकर नाना साहब के लिए वकालत की, लेकिन उन्हें निराशा ही हाथ लगी । गवर्नर जनरल ने निर्णय सुनाया कि बाजीराव के दत्तक पुत्र (नाना साहब) को अपने पिता की पेंशन नहीं दी जाएगी । अज़ीमुल्लाह ख़ां निराश नहीं हुए । उन्होंने कुछ समय लंदन में ही रहना उचित समझा । वहां इनकी मुलाक़ात रंगों बापू जी से हुई, जो सतारा के उत्तराधिकारी को उनके अधिकार दिलाने के लिये उनके प्रतिनिधि बनकर आए थे, लेकिन उनको भी सफलता नहीं मिली । धीरे-धीरे अज़ीमुल्लाह ख़ां व रंगों बापू दोनों का हृदय प्रतिशोध के लिए तड़प उठा । दोनों ने मिलकर कंपनी सरकार का विरोध करने की योजना बनायी ।

ये दोनों क्रान्ति की योजना बनाने लगे । रंगों बापू तो भारत लौट आए परन्तु अज़ीमुल्लाह ख़ां ने अन्य देशों की यात्राएं कीं, जिनका उद्देश्य भारत की राजनीतिक स्थिति से विदेशियों को परिचित कराना था । भारत लौटने पर क्रान्ति की योजनाएं बनाई जाने लगी । अज़ीमुल्लाह ख़ां 1857 की क्रान्ति के प्रमुख विचारक थे, जिन्होंने भले ही मैदान में युद्ध न किया हो पर युद्ध करने वालों के लिए कई नीतियां बनाई सन् 1857 की क्रान्ति के वह एक प्रमुख योद्धा थे और वे अन्त तक नाना साहब के अति विश्वास पात्र रहे ।

अज़ीमुल्लाह ख़ां भारत वापस न लौटकर सीधे तुर्की जाकर वहां के सुलतान से मिले । उन दिनों तुर्की-रूस में युद्ध चल रहा था । फिर भी अज़ीमुल्लाह ख़ां वहां से रूस गए और भारत से अंग्रेज़ों को खदेड़ने के लिए वहां की सरकार से एक समझौता करना चाहते थे, जो संभव न हो सका ।

आख़िर वे कानपुर लौट आए और नाना साहब से कहकर उन्होंने भारत के प्राय: सभी नवाबों, राजाओं के पास दूत भेजकर क्रान्ति संदेश पहुंचवाया । अज़ीमुल्लाह ख़ां की डायरी से पता चलता है कि उन्होंने इलाहाबाद, गया, जनकपुर, पारसनाथ, जगन्नाथपुरी, पंचवटी, रामेश्वरम, द्वारिका, नासिक, आबू आदि स्थानों की यात्रा की । 4 जून को कानपुर में क्रान्ति हो गई जिसका नेतृत्व नाना साहब ने किया । इस युद्ध में अज़ीमुल्लाह ख़ां का महत्वपूर्ण योगदान रहा । 17 जुलाई को क्रान्ति पुन: कानपुर में फैल गई । अंत में क्रान्तिकारी पराजित हो गये, क्योंकि उन लोगों के पास साधनों का अभाव था । क्रान्ति के विफल होने पर अज़ीमुल्लाह ख़ां नेपाल की तराई की ओर चले गये । नेपाल का राजा राणा जंग बहादुर ब्रितानियों के हितैषी थे । ये क्रान्तिकारियों को क्षति पहुंचाना चाहते थे ।

यहां अज़ीमुल्लाह ख़ां को कई कष्ट उठाने पड़े, लेकिन उन्होंने घुटने नहीं टेके । अज़ीमुल्लाह ख़ां का देहांत 1859 के अक्तूबर के महीने में नेपाल की तराई भुरवल में हुआ था । उनके बलिदान को हमेशा याद रखा जाएगा ।

Regd. No. 200041100133
Prop. Md. Aslam

06546-321302
9931579552

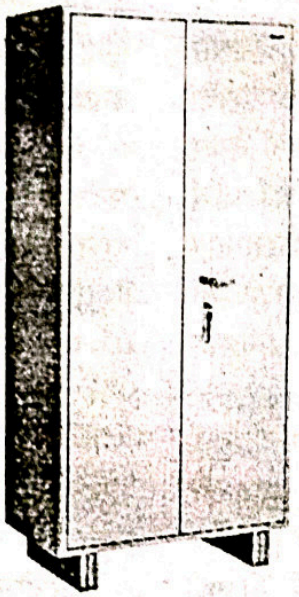

M/s SONU ENTERPRISES

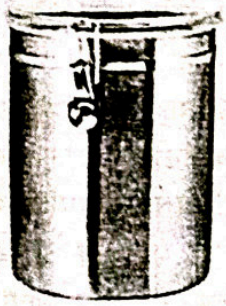

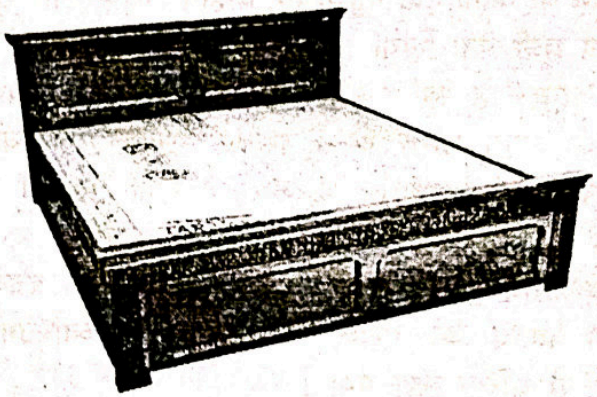

Manufacturer & Supplier :

STEEL ALMIRAH
Steel Box & Steel/Wooden Furniture

Ansar Nagar, Pugmil, Hazaribagh (Jharkhand)

गुमनाम नायक मौलवी अहमद शाह

■ संपादन प्रभाग

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के ज्वाज्वल्यमान नक्षत्रों में से एक मौलवी अहमद शाह भी थे । बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी यह राष्ट्र-पुरुष कुशल संगठक ओजस्वी वक्ता, क्रांतिकारी लेखक और छापामार युद्ध कला के कुशल योद्धा थे । अंग्रेज़ उनसे ऐसा थर्राते थे कि उनकी सूचना देने वाले व्यक्ति को पचास हज़ार रुपयों (आज के हिसाब से दो करोड़ रु॰) का पुरस्कार देने की घोषणा की गई थी ।

ऐसे तेजस्वी और देश-प्रेम से ओतप्रोत मौलवी अहमद शाह अयोध्या के ताल्लुक़ेदार थे । नाना साहब का गुप्त संदेश मिलते ही उन्होंने पूरे अवध में जन-जागरण शुरू कर दिया । लखनऊ में दस-दस हज़ार लोगों की सभा में उन्होंने सिंह गर्जना कर दी कि, "यदि तुम स्वदेश और स्वधर्म का मंगल चाहते हो तो उसके लिए फ़िरंगियों को तलवार की धार उतार देना ही एक-मात्र धर्म है ।" आगरा में उन्होंने एक मज़बूत संगठन बना दिया था । पूरे भारत में स्वतंत्रता की चेतना भर दी । जहां भी ये पहुंचे, वहीं लोगों ने क्रांति में सम्मिलित होने का निर्णय ले लिया । फलस्वरूप अंग्रेज़ों ने उनकी ताल्लुक़ेदारी छीन ली और बन्दी बनाकर उन्हें मृत्यु दंड का आदेश भी कर दिया । किन्तु ऐसी क़द्दावर शख़्सियत को फांसी पर लटका देना क्या अंग्रेज़ों के लिए आसान था ?

मेरठ में 10 मई 1857 को क्रांति का विस्फोट हो जाने के बाद भी लखनऊ पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार 31 मई तक शांत रहा । 31 मई को लखनऊ में सैनिक छावनी के भारतीय सैनिकों ने स्वतंत्रता की पताका फहरा दी । उसके बाद सीतापुर, फ़र्रुख़ाबाद, बहराइच, गोंडा, बलरामपुर आदि स्थानों से भी अंग्रेज़ी शासन समाप्त कर दिया । फ़ैज़ाबाद में मौलवी अहमद शाह अंग्रेज़ों के बन्दी थे । अत: वहां तो पहले ही से जनता में ज़बरदस्त आक्रोश था । 5 जून को फ़ैज़ाबाद में तैनात 15 वीं पलटन के जवानों और नागरिकों ने नारा लगाते हुए सूबेदार दिलीप सिंह के नेतृत्व में अंग्रेज़ों को मौत के घाट उतारकर मौलवी अहमद शाह को कारागार से छुड़ा लिया । इसी के साथ 10 जून तक लगभग पूरा अवध स्वतंत्रता की खुली हवा का आनन्द लेने लगा । अवध के केन्द्र लखनऊ में भी अंग्रेज़ सत्ता तो समाप्त हो चुकी थी, किन्तु वहां के कमिश्नर हेनरी लॉरेंस ने एक हज़ार गोरे, 800 भारतीय सिपाहियों और कुछ तोपों के साथ लखनऊ की रेज़ीडेंसी में मोर्चा जमा लिया था । इस तरह पूरे अवध में अंग्रेज़ सत्ता उस रेज़ीडेंसी तक सिमटकर रह गई थी । नवाब वाजिद अली शाह की बेगम हज़रत महल ने शासन अपने हाथ में ले लिया ।

मौलवी अहमद शाह अब लखनऊ आ गये और बेगम हज़रत महल की सहायता करने लगे । इसी के साथ वे अपने आग उगलते लेखों और भाषणों से अंग्रेज़ी सत्ता को निर्मूल कर देने का आह्वान भी कर रहे थे । इसी का परिणाम था कि अवध का बच्चा-बच्चा शस्त्र उठाकर क्रांति में कूद पड़ा । अकेले लखनऊ में बीस हज़ार से अधिक लोगों ने स्वातंत्र्य समर में हिस्सा लिया था । रेज़ीडेंसी में मोर्चा जमाये अंग्रेज़ों के साथ स्वातंत्र्य सैनिकों का घमासान अब पराकाष्ठा पर था । हेनरी लॉरेंस की मौत हो चुकी थी । जनरल हैवलाक ने कानपुर से लखनऊ आने के लिए गंगा पार करने की धृष्टता की ही थी, कि नाना साहब ने कानपुर पर धावा बोल दिया । परिणामस्वरूप हैवलाक को लौटना पड़ा । 20 सितम्बर को हैवलॉक फिर लखनऊ की ओर बढ़ा । इस समय नील, आउट्रम और आयर जैसे कुशल सेनापति भी उसके साथ थे । 25 सितम्बर को एक हज़ार फ़िरंगी सैनिक और जनरल नील की बलि चढ़ने के बाद हैवलॉक रेज़ीडेंसी तक पहुंचने में सफल हो गया, लेकिन स्वातंत्र्य सैनिकों ने अब हैवलॉक को चारों ओर से घेर लिया ।

23 नवम्बर को कोलिन केम्पवेल, आउट्रम और हडसन की संयुक्त सेनाओं ने भीषण संघर्ष के बाद रेज़ीडेंसी में घिरे अंग्रेज़ों को छुड़ा लिया फिर भी हैवलाक मारा गया । लखनऊ के आलम बाग़ में जमी फ़िरंगी सेना अब क्रांतिकारियों पर ज़बरदस्त हमले की तैयारी करने लगी । परिस्थिति निराशाजनक थी, किन्तु मौलवी अहमद शाह निरंतर लोगों में आशा का संचार कर रहे थे । अब युद्ध का मोर्चा खुद उन्होंने संभाला । 22 दिसम्बर को उन्होंने अलम बाग़ में जमी अंग्रेज़ सेना पर हमला किया । युद्ध में वे घायल हुए तथा उन्हें पीछे हटना पड़ा । अब बेगम हज़रत महल ने रणक्षेत्र में तलवार

उठाई, किन्तु अंग्रेज़ों की सहायता के लिए नई सेना आ गई, इसलिए उनको भी पीछे हटना पड़ा । आख़िर 14 मार्च 58 को जनरल कॉलिन ने तीस हज़ार सैनिकों के साथ गोमती को पार कर उत्तर की ओर से लखनऊ पर आक्रमण किया और इसे जीतने में सफलता पाई । बेगम हज़रत महल तथा मौलवी अहमद शाह अंग्रेज़ों का घेरा तोड़कर बच निकले । मौलवी साहब ने अब अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ छापामार युद्ध करने का निर्णय लिया । उन्होंने लखनऊ से 45 कि०मी० दूर बारी में पड़ाव डाल दिया । बेगम हज़रत महल छह हज़ार सैनिकों के साथ बोतौली में आ गई । अंग्रेज़ सेनापति होप ग्रांट उनके पीछे लगा हुआ था । इस समय अंग्रेज़ों की सेना लगभग एक लाख सैनिकों की हो गई थी । रूईयागढ़ में होप ग्रांट को भी नरपतिसिंह ने मौत के घाट उतार दिया । अंग्रेज़ों का घेरा कसते देख अब मौलवी साहब बरेली की ओर चल पड़े ।

बरेली रुहेलखंड की राजधानी थी । अंग्रेज़ों ने षड्यंत्रपूर्वक सन् 1801 ई० में अवध के नवाब से इसे छीन लिया था । पूरे रुहेलखंड में स्वातंत्र्य समर के लिए गुप्त संगठन ख़ान बहादुर ख़ान ने खड़ा किया था । 1857 के इतिहास में इस वीर पुरुष का नाम भी स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए । 31 मई 57 को बरेली और पूरा रुहेलखंड स्वतंत्र हो गया । सेनानायक बख़्त ख़ां को दिल्ली भेजकर ख़ान बहादुर ने रुहेलखंड में बादशाह के नाम पर प्रशासन चलाना शुरू कर दिया ।

4 मई, 1858 को मौलवी साहब तथा बेगम हज़रत महल के साथ-साथ नाना साहब पेशवा और दिल्ली के शहज़ादे फ़िरोज़ शाह भी बरेली पहुंच गए । ख़ान बहादुर के साथ सभी यहां आगे के संघर्ष की रणनीति तय की । पीछे-पीछे अंग्रेज़ सेनापति केम्पबेल भी दौड़ा चला आ रहा था । यहां मौलवी अहमद शाह ने युद्ध कला की बानगी दिखाई । 5 मई को केम्पबेल का घेरा पड़ते ही वे नाना साहब के साथ बरेली से निकल गये और शाहजहांपुर पर धावा बोल दिया । केम्पबेल पुन: लौटा, तो मौलवी साहब बिजली की तेज़ी से अवध की ओर बढ़े तथा छापामार युद्ध से अंग्रेज़ों की नाक में दम करने लगे । पूरे क्षेत्र में वे हवा की तरह घूमते और मौक़ा लगते ही अंग्रेज़ों पर अचानक हमला कर देते । हताश होकर अंग्रेज़ों ने उनकी सूचना देने वाले को पचास हज़ार रुपयों के पुरस्कार की घोषणा कर दी । पोवेन का देशद्रोही राजा जगन्नाथ इस लालच में आ गया । सहायता देने के बहाने उसने इस महान सेनानी की

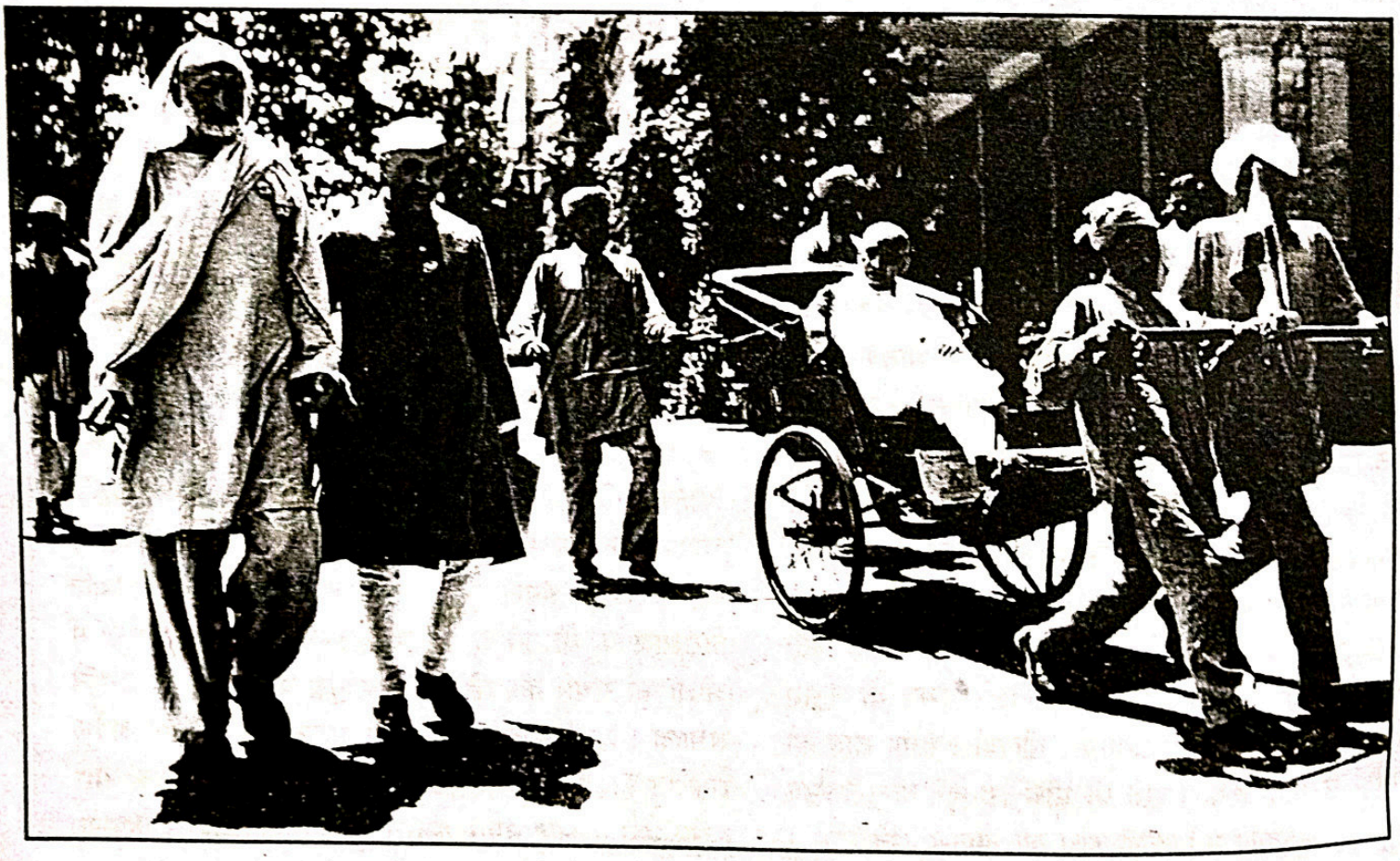

धोखे से अंग्रेज़ों के हवाले करवा दिया । उस विश्वासघाती ने उनका सिर क़लम कर अंग्रेज़ों के पास भिजवा दिया ।

आगरा में उन्होंने एक गुप्त संगठन की स्थापना की थी, लखनऊ में भी एक ऐसी गुप्त योजना तैयार की थी । जिसकी फ़िरंगियों को भनक तक न लग सकी थी उन्होंने अंग्रेज़ों को देश से बाहर निकालने के लिए व्यापक जाल बिछाया था । साथ ही अंग्रेज़ों के विरुद्ध पोस्टर, पुस्तिकाएं लिख और छापकर उन्हें जनता में बटवाया था । एह हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में क़लम पकड़े वह लगातार फ़िरंगियों के विरुद्ध प्रचार करने में लगे रहते ।

मौलवी अहमद शाह की इस कार्यवाही से अंग्रेज़ भयभीत रहते थे, अन्तत: उन्हें गिरफ़्तार करने को पुलिस को हुक्म दिया गया, लेकिन भारतीय पुलिस ने साफ़ कह दिया वह उन्हें गिरफ़्तार नहीं कर सकेगी । अन्त में एक फ़ौजी टुकड़ी को उन्हें गिरफ़्तार करने को भेजा गया । वह गिरफ़्तार कर लिए गए और उन पर राजद्रोह का दावा करके उन्हें फांसी की सज़ा सुनाकर फ़ैज़ाबाद जेल में बन्द कर दिया गया ।

मौलवी अहमद शाह को जेल भेजते ही सारा फ़ैज़ाबाद नगर और जनपद क्रांति की चिनगारियों से धधक उठा । सेना भी विद्रोह कर बैठी । जब अंग्रेज़ अधिकारी सैनिकों को नियंत्रित करने परेड मैदान गए तो सैनिकों ने यह कहकर–हम सिर्फ़ भारतीय अफ़सरों के हुक्म के सिवाय किसी और का हुक्म नहीं मानेंगे, उनका हुक्म मानने से इन्कार कर दिया और सूबेदार दिलीप सिंह को अपना नेता चुन लिया ।

सूबेदार दिलीप सिंह के हुक्म से सारे अंग्रेज़ अधिकारी गिफ़्तार कर लिए गए और हुक्म दिया गया कि वे बारह क़दम से आगे न बढ़ें । उधर जनता व सैनिक जेल पहुंचे और मौलवी अहमद शाह की बेड़ी-हथकड़ियां काटकर उन्हें मुक्त करा लिया गया । वह क्रांति के नेता घोषित कर दिए गए । उन्होंने अपनी महानता का परिचय देते हुए घोषणा की कि सारे अंग्रेज़ नगर छोड़कर चले जाएं । इसी में उनका भला है । यहां तक कि जिस कर्नल लेनोक्स ने उन्हें बन्दी बनाया था, उसे भी उन्होंने माफ़ कर दिया ।

अंग्रेज़ों से टक्कर लेने मुख्य क्रांतिकारी–नाना साहब, मौलवी अहमद शाह आदि शाहजहांपुर को अपना केन्द्र बनाए हुए थे, लेकिन अंग्रेज़ सेना ने बरेली को अपना निशाना बनाया । एक दिन की टक्कर के बाद रणबांकुरे, अंग्रेज़ सेना के काफ़ी सैनिकों को मार-काटकर बरेली के शासक ख़ां बहादुर भी क्रांतिकारियों में शामिल हो गए । अंग्रेज़ों का दबदबा बढ़ता जा रहा था, अत: मौलवी अहमद शाह ने पोवेल के राजा जगन्नाथ सिंह को एक पत्र लिखकर अपनी मदद करने क्रा उनसे आग्रह किया । राजा जगन्नाथ सिंह ने उत्तर दिया कि वह उनसे (मौलवी से) मिलना चाहते हैं । मौलवी अहमद शाह जब उससे मिलने गए तो, नगर के सभी मुख्य द्वार उन्हें बन्द मिले और सशस्त्र पहरे के बीच राजा जगन्नाथ सिंह अपने भाई के साथ खड़ा मिला । यद्यपि मौलाना अहमद शाह ने भांप लिया था कि शगुन अच्छा नहीं है, फिर भी वह राजा के समीप चले गए। उस कायर, देशद्रोही ने मौलवी अहमद शाह का सिर काट दिया और उसे एक कपड़े में लपेटकर शाहजहांपुर में अंग्रेज़ अधिकारियों को उपहार की तरह भेंट कर दिया तथा बदले में पचास हज़ार रुपयों की थैली लेकर अपने नगर लौट आया ।

कई अंग्रेज़ लेखकों ने अपनी क़लम से मौलवी अहमद शाह की उदारता, दयालुता और इन्सान परस्ती की तारीफ़ लिखी है, लेकिन एक क्रूर, दानव भारतीय के धोखे के शिकार होकर वह क्रांतिकारियों, देश भक्तों के एक महान प्रकाश स्तम्भ बने, जो भारत के क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में सदैव चमकते रहेंगे ।

"ऐ लोगो अपने रब का डर रखो जिसने तुमको एक जान से पैदा किया और उसी जाति का उसके लिए जोड़ा पैदा किया और उन दोनों से बहुत से पुरुष और स्त्रियां फैला दीं।"

–क़ुरआन

A Well Wisher

Tanti Bazar Road,

Kolkata

हज़रत इब्न उमर (रज़ि॰)
कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰)
को यह कहते हुए सुना : "तुममें से प्रत्येक
व्यक्ति ज़िम्मेदार है और तुममें से प्रत्येक व्यक्ति
से जो कुछ उसकी ज़िम्मेदारी में दिया गया है उसके
विषय में पूछा जाएगा। शासक ज़िम्मेदार है और उससे
उसकी ज़िम्मेदारी के सिलसिले में पूछा जाएगा। और पुरुष
अपने घर का ज़िम्मेदार है और उससे उसकी ज़िम्मेदारी के
बारे में पूछा जाएगा। और स्त्री अपने पति के घर में
ज़िम्मेदार है और उससे उसकी ज़िम्मेदारी के बारे में
पूछा जाएगा। और सेवक अपने स्वामी के माल का
ज़िम्मेदार है और उससे उसकी ज़िम्मेदारी के बारे
में पूछा जाएगा। इस प्रकार तुममें से प्रत्येक
व्यक्ति ज़िम्मेदार है और जो ज़िम्मेदारी उसे
सौंपी गयी है उसके बारे में
उससे पूछा जाएगा।"
(बुख़ारी, मुस्लिम)

A WELL WISHER
S. Rahmatullal & Sons
Kolkata

अंग्रेज़ों के ख़ूनी आतंक का गवाह कूचा चेलान

● संपादन प्रभाग

हाजी इमदादुल्लाह के मक्का चले जाने के बाद वली उल्लाही संगठन का भार मौलाना मुहम्मद क़ासिम और हाजी रशीद अहमद गंगोही के कंधों पर आ पड़ा । लेकिन अंग्रेज़ों ने मुसलमान, मौलवियों, विशेष रूप से दिल्ली के आलिमों का जिस तरह से क़त्ले आम करवाया, उससे हर मुसलमान का दिल दहल गया और दिमाग़ हिल गया । इस तरह मौलाना मुहम्मद क़ासिम और हाजी रशीद अहमद गंगोही कुछ भी सोचने अथवा करने की स्थिति में नहीं रहे ।

स्थिति यह थी कि हाजी रशीद अहमद गंगोही को गिरफ़्तार कर लिया गया था और वे बरेली जेल में फांसी का इन्तिज़ार कर रहे थे । मौलाना मुहम्मद क़ासिम के पीछे गिरफ़्तारी वारंट घूम रहा था । ऐसी स्थिति में कुछ सोचना अथवा कुछ करने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता । आतंक, नर-संहार और आगजनी के माहौल में कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यदि होश गंवा बैठे तो आश्चर्य करना बेकार है । कैसा था वह दहशत, आतंक भरा माहौल ? ख़्वाजा हसन निज़ामी के शब्दों में उसकी झलक काफ़ी साफ़ नज़र आती है–

''दिल्ली के तमाम मुहल्लों से ज़्यादा चेलों के कूचे पर मुसीबत आई थी । इस मुहल्ले में बड़े-बड़े शरीफ़ और नामवर उलमा रहते थे । मौलाना शाह वली उल्लाह और शाह अब्दुल अज़ीज़ मुहद्दिस का घराना भी इसी मुहल्ले में रहता था । सर सय्यद अहमद ख़ां का घर भी इसी मुहल्ले में आबाद था । मौलाना सुब्हानी भी इसी मुहल्ले में रहते थे । ग़रज़ यह है कि यह मुहल्ला बड़े-बड़े साहबे कमाल लोगों का मख़ज़न था । मुंशी ज़काउल्लाह भी इसी मुहल्ले के बाशिन्दे थे । अब भी इनके बड़े लड़के इसी मुहल्ले में आबाद हैं । मगर ग़दर के वक़्त मुंशी साहब कहीं बाहर गए हुए थे और सर सय्यद भी अपने कुन्बे समेत दिल्ली में न थे ।''

''हुक्म हुआ कि इस कूचे के तमाम मर्दों को क़त्ल कर दो या गिरफ़्तार करके ले आओ । इस हुक्म की पाबन्दी इस बेदर्दी से हुई कि मुहल्ले का कोई मर्द ज़िन्दा न बचा । या तो सिपाहियों ने घर में घुसकर मार डाला या गिरफ़्तार कर हाकिम के सामने ले गए, जिन्हें देखकर हाकिम ने हुक्म दिया कि जमुना किनारे ले जाकर गोली मार दो । चुनांचे ऐसा ही किया गया ।''

लार्ड राबर्ट का बयान भी कम सनसनीख़ेज़ नहीं । वह लिखता है–''हम सुबह को लाहौरी दरवाज़े से चांदनी चौक गए, तो हमको शहर सचमुच में मुर्दों का शहर नज़र आता था । कोई आवाज़ सिवाय हमारे घोड़ों की टापों के सुनाई नहीं देती थी, कोई इन्सान नज़र न आता था । सब तरफ़ मुर्दों का बिछौना बिछा हुआ था जिनमें कुछ सिसक रहे थे । हम लोग चल रहे थे तो बहुत धीरे-धीरे बात करते थे । डर था कि कहीं हमारी आवाज़ से मुर्दे चौंक न पड़ें ।''

रसल का लिखा तो और भी भयानक है । वह लिखता है–''कभी-कभी मुसलमानों को मारने के पहले उन्हें सूअर की खाल में सी दिया जाता था । उनपर सूअर की चर्बी मल दी जाती थी और फिर वे ज़िन्दा जला दिए जाते थे ।'' यह बात रसल की डायरी के दूसरे खंड के पेज 43 पर देखी जा सकती है ।

लेफ़्टीनेंट माजेंडी ने भी एक ऐसी घटना का ज़िक्र यों किया है–''एक घायल आदमी को कुछ सिपाहियों ने अपनी संगीनों से उसके मुंह को बार-बार बींधा और फिर धीमे आंच में उसे ज़िन्दा ही भून दिया ।''

ख़्वाजा हसन निज़ामी की पुस्तक–'दिल्ली की जांकनी' में ऐसी घटनाओं की भरमार है । लेकिन आज के हमारे तंत्र के कर्णधार शायद अपना और अपने बच्चों का भविष्य बनाने की चिंता के सिवाय न इतिहास से परिचित हैं और न कुर्बानी, बलिदान तथा त्याग-संघर्ष की शब्दावली तथा उसके अर्थ से वाक़िफ़ हैं । आचरण या व्यवहार की उनसे

उम्मीद करना खुद को धोखा देना है ।

ऐसे दहशत और आतंक भरे समय तथा सन् 1857 की क्रांति में हिस्सा लेने और अंग्रेज़ों द्वारा जेलों में ठूंसे लोगों को आम माफ़ी की घोषणा के बाद जब मौलाना मुहम्मद क़ासिम और हाजी रशीद अहमद गंगोही मुक्त हुए तो वे सोचने लगे कि भारतीय मुसलमानों में चेतना बनाए रखने के लिए कौन-सा रास्ता अपनाया जाए । दिल्ली का कूचा चेलान मदरसा तो रहा नहीं था । फिर शाह वली उल्लाह से हाजी इमदादुल्लाह तक, जो परंपरा बनी थी, उसे कैसे आगे बढ़ाया जाए ।

यह एक ऐसा मुसीबतों से भरा कठिन और नाज़ुक समय था, जब दो कानों के बजाय चार कान और दो आंखों की जगह चार आंखें सुनने, देखने को ज़रूरी थीं । क़दम-क़दम पर ख़तरा बात-बात में शक, फिर बिना हक़ के, नाहक़ करने वाली किसी घटना या बात को जन्म देना सचमुच में अक़्लमन्दी न थी । फिर भी मौलाना मुहम्मद क़ासिम चुप बैठ रहने को तैयार न थे क्योंकि राज-भक्त बल्कि अंग्रेज़ भक्त सर सय्यद अहमद ख़ां मुसलमानों को अंग्रेज़-परस्ती का पाठ उढ़ाने में जुटा था और उन्हें (अंग्रेज़ों को) भारी ईमानदार और दुनिया की सबसे सभ्य क़ौम बताकर भारतीयों को 'गंदा जानवर' बता रहा था । ऐसे में उनका चुप बैठना संभव ही न था ।

इस तरह 1857 की क्रांति के बाद भारतीय मुसलमान दो ख़ेमों में बंट गए थे वे जो देशप्रेमी और कुरआन के पाबन्द थे और दूसरे वे, जो राज या अंग्रेज़ भक्त हो गए थे और कुरआन की हिदायतों को वे अपने लिए ज़रूरी नहीं समझते थे ।

पहले वर्ग का नेतृत्व मौलाना मुहम्मद क़ासिम और उनके साथी कर रहे थे तो दूसरे वर्ग का नेता सर सय्यद अहमद ख़ां थे, जो 1857 से पहले ही अंग्रेज़ हुकूमत की नौकरी में दाख़िल हो चुके थे । देश-भक्तों के लिए उनकी आलोचना करना भी ख़तरे से ख़ाली न था । सर सय्यद अहमद ख़ां की आलोचना का अर्थ था किसी झूठ-मूठ के षड्यंत्र में बिना अपराध ही फंसकर काले पानी की सज़ा या फांसी के रस्से में गर्दन को कसवाना ।

अंग्रेज़ हुकूमत ने पटना षड्यंत्र, अंबाला षड्यंत्र केस बनाकर भारतीयों, ख़ासकर मुसलमानों को चेतावनी दे दी थी कि वे हिन्दुस्तान को दारुल इस्लाम बनाने के चक्कर में न पड़ें । यदि कोई ऐसा करेगा तो सज़ा मिलनी लाज़िमी है फिर चाहे वह काला पानी की सज़ा हो या फांसी के फन्दे पर झूलने की ।

मौलाना मुहम्मद क़ासिम अन्ततः उस रास्ते पर उतरे जो ज़्यादा ख़तरे वाला न था । उन्होंने गुरु परंपरा के प्रथम गुरु शाह वली उल्लाह का रास्ता अपनाकर सन् 1867 में यानी 1857 की क्रांति के दस वर्ष बाद सहारनपुर से 22 मील दूर देवबन्द नाम के एक छोटे-से क़स्बे में, जो किसी भी दृष्टि से मशहूर न था, एक दारुल उलूम (विद्या मंदिर) की स्थापना की, जो दिल्ली मदरसा के तौर तरीक़े पर काम करने वाल था ।

हां, यहां कुछ ऐसे मुसलमान ज़रूर थे, जिनके रक्त में देश-प्रेम की गर्माहट थी । वे देवबन्द के ख़ानदानी, क़दीमी मुसलमान थे और उन्हें हिन्दुस्तान से प्यार था । वे अंग्रेज़ क़ौम को हिक़ारत की निगाहों से देखते थे । उन्हें देश का दुश्मन समझते थे ।

देवबन्द के दारुल उलूम की नींव उनके मन की उज्ज्वल भावनाओं और मस्तिष्क के उच्च विचारों की धरती पर रखी गई थी, किसी रुपयों भरी थैली के बल पर नहीं । यह बात दारुल उलूम के संचालन के लिए बनाए गए उसूलों में से एक ही बताने को काफ़ी है ।

यानी हर ऐसी बात, जिसे सत्य समझा जाए, निर्भीकता के साथ घोषणा की जाए । उसमें न तो संरक्षता और न मित्रता तथा न आर्थिक सहायता का लिहाज़ किया जाए ।

तो देवबन्द दारुल उलूम की स्थापना का लक्ष्य भी अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्त होने के लिए शिक्षा के द्वारा साफ़-सुथरे रास्ते की पहचान थी । सन् 1857 की असफल क्रांति के पीछे भी सन् 1719 की शाह वली उल्लाह की मदरसा योजना थी । यह ठीक है कि 1857 की क्रांति के और भी अनेक कारण थे । फिर भी मुसलमानों में देश-प्रेम का जज़्बा पैदा करने में वली उल्लाही संगठन के विद्वान इमामों का ज़बरदस्त योगदान था ।

यही वजह है कि उस क्रांति में हिन्दुओं के मुक़ाबले भारतीय मुसलमानों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और अंग्रेज़ों के जुल्म के शिकार भी वे ही ज़्यादा हुए । जिससे घबराकर उनका एक वर्ग अंग्रेज-भक्त बना और भारत की आज़ादी की लड़ाई में लापरवाह रहा, अतः भारत के मुसलमानों पर देश-भक्त न होने का लांछन लगाना सही नहीं जंचता । मरता

क्या न करता के मुताबिक़ हर इन्सान अपने बचाव के लिए ग़लत-सही क़दम उठाता ही है । फिर हिन्दुओं में भी ऐसे लोगों की कमी न थी, जो अंग्रेज़ों के पालतू बनकर अपने सगे-संबंधियों के गले कटवाते रहे । ख़ुद सर, रायबाहादुर तथा राय साहब, जागीरदार और अंग्रेज़ हुकूमत के ऊंचे पदों पर बैठकर भी देशभक्त हिन्दुओं को भारी यातनाएं देते रहे ।

बल्कि हिन्दुओं को ही नहीं मुसलमानों को भी अंग्रेज़ ज़ुल्म का शिकार बनाने में अपनी घिनौनी हरकतें, हथकंडों का कमाल दिखाते रहे । ऐसे अंग्रेज़-परस्त हिन्दुओं ने अपने भाई अन्य हिन्दुओं के घर नीलाम करवाए, ज़मीन-जायदादें कुर्क करवाईं और अचरज यह है कि सन् 1747 में अंग्रेज़ों के भारत से चले जाने के बाद वे आज़ादी के दीवाने बनकर सत्ता पर क़ब्ज़ा जमा बैठे ।

हालत यह है कि अब भी उन्हीं की औलाद सत्ता पर एकाधिकार जमाए बैठी है । लोकतंत्र के नाम पर नौकरशाही तंत्र क़ाबिज़ है । यानी दिवाने ख़ास दिवाने आम न होकर आज भी दिवाने ख़ास ही है ।

तो देवबन्द का दारुल उलूम आम आदमी के लिए स्थापित किया गया था, न कि ख़ासुल-ख़ास के लिए । यह बात मौलाना मुहम्मद क़ासिम ने साफ़ तौर पर दारुल उलूम की स्थापना पर ही ज़ाहिर कर दी थी । उन्होंने कहा था– "इस मदरसे का संबंध ज़्यादा साधारण मुस्लिम जनता से रखा जाए, जिससे मुसलमानों में अपने-आप एक संगठन क़ायम हो जाएगा ।"

"मदरसे का कोई स्थाई कोष न बनाया जाए, न किसी राजा, नवाब या सरकार से आर्थिक सहायता ली जाए और न संरक्षण आदि ।"

देवबन्द दारुल-उलूम से प्रथम स्नातक के रूप में मुहम्मदुल हसन निकले, जो महान क्रांतिकारी अंग्रेज़ हुकूमत के लिए भारी सिर दर्द साबित हुए अंग्रेज़ उन्हें भारी ख़तरनाक आदमी की शक्ल में पहचानते थे । संयोग की बात है कि देवबन्द दारुल-उलूम के संस्थापक मौलाना मुहम्मद क़ासिम और प्रथम शिक्षक मुल्ला महमूद तथा प्रथम स्नातक मुहम्मदुल हसन तीनों का ही नाम 'म' से शुरू होता है । इन तीन देश-भक्त क्रांतिकारियों द्वारा उस ज़ुल्मो सितम के माहौल में दारुल उलूम की स्थापना, उसमें शिक्षक बनना और वहां से पढ़-लिखकर अंग्रेज़ हुकूमत को उखाड़ने के लिए प्राणों की बाज़ी लगाना एक ऐसी एतिहासिक घटना है जो अविस्मरणीय रहेगी ।

देवबन्द दारुल उलूम, जो सन् 1867 में स्थापित हुआ था, से प्रथम पांच स्नातक–मौलाना मुहम्मदुल हसन, मौलाना अब्दुल हक़, मौलाना फ़ख़रुल हसन गंगोही, मौलाना फ़तह मुहम्मद थानवी और मौलाना अब्दुल्लाह जलालाबादी थे । जिन्हें 9 जनवरी, 1874 को 'दस्तार फ़ज़ीलत' (विद्वान होने की पगड़ी बांधने) की रस्म पूरी की गई । इस तरह ओर देश-प्रेमी भारतीय मुसलमान देश-प्रेम का सबक़ सिखाने के लिए देवबन्द को केन्द्र बना चुके थे तो दूसरी तरफ़ अंग्रेज़-परस्त सर सय्यद अहमद ख़ां अंजुमने इस्लाम नाम का संगठन और अलीगढ़ में फ़िरक़ा पसन्द मुसलमानों के लिए मुस्लिम यूनीवर्सिटी की स्थापना करके नामवरी की मिसाल क़ायम करने में लगे थे ।

यहां उल्लेख करना असंगत न होगा कि सर सय्यद अहमद ख़ां देवबन्द के मौलानाओं से भी अलीगढ़ मुस्लिम कॉलेज में सहयोग चाहते थे और जब उन्होंने एक सन्देश वाहक को वहां मौलाना रशीद अहमद गंगोही के पास भेजा और उसने सहयोग की बात सामने रखी, तो मौलाना गंगोही का जवाब था–"भाई ! हम तो अपने इस इमाम (मौलाना मुहम्मद क़ासिम) के मातहत हैं । वह जैसा हुक्म देंगे वही मंज़ूर है ।"

फिर जब उस आदमी ने क़ासिम साहब से सहयोग देने की बात कही, तो उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया । इस पर उसने कॉलेज में शामिल होकर उसके दोष दूर करने की बात कही तो उनका जवाब था– "बबूल के दरख़्त की चाहे जितनी टहनियां काटी जाएं, उनमें फिर से कांटे ही निकलेंगे । उसका सुधार तो यही है कि उसे जड़ से उखाड़कर फेंक दिया जाए ।"

यह था मौलाना मुहम्मद क़ासिम का राष्ट्रीय दृष्टिकोण ! लेकिन 1875 में अलीगढ़ में मुस्लिम कॉलेज स्थापित हो गया और कॉलेज में शिक्षा देने के लिए विलायत से अंग्रेज़ प्रोफ़ेसर बुलाकर नियुक्त किए गए । उनकी शिक्षा का मुख्य आधार वहां पढ़ने वाले मुस्लिम छात्रों को यह बताना था कि हिन्दुओं और तुम्हारे जीवन में कोई भी बात, रस्म-रिवाज, सभ्यता–संस्कृति, भाषा मज़हब आदि सांझा नहीं, फिर मुल्क ही सांझा क्यों रहे ! इसलिए मुल्क भी अलग होना बहुत ज़रूरी है । सत्ता में बैठे अंग्रेज़ तो हिन्दू-मुसलमानों को

चीर ही रहे थे, शिक्षा के अमृत में भी वही ज़हर मिलाकर पिलाया जा रहा था । अलीगढ़ मुस्लिम कॉलेज, जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी में तब्दील हो गया था, वास्तव में सन् 1947 में बने पाकिस्तान की आधारशिला थी ।

सन् 1878 में ही देवबन्द दारुल उलूम के संस्थापक मौलाना मुहम्मद क़ासिम का देहान्त हो गया और उनकी जगह हाजी रशीद अहमद गंगोही दारुल उलूम की देखभाल करने लगे । यहां के प्रथम छात्र मौलाना मुहम्मदुल हसन भी अवैतनिक रूप से यहां शिक्षा का काम करते लगे थे ।

सन् 1884-85 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना के बाद देवबन्द मदरसा ने मुसलमानों से साफ़ तौर पर कांग्रेस में शामिल होने की वकालत की थी ।

मुहम्मद बख़्त ख़ां

● संपादन प्रभाग

23 जून, 1857 के आस-पास जब दिल्ली के सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र देश प्रेमी लोगों व सैनिकों के साथ अंग्रेज़-सेना से टक्कर ले रहे थे और सिख सेना द्वारा अंग्रेज़ों का साथ देने के कारण अंग्रेज़ों का हौसला बुलन्द हो गया था, ठीक उन्हीं दिनों रुहेलखंड की क्रांतिकारी सेना की लगाम थामे सेनानी मुहम्मद बख़्त ख़ां दिल्ली पहुंचा और उसने बादशाह ज़फ़र से उस सेना की सेवाएं लेने की प्रार्थना की । सम्राट ने उसकी प्रार्थना मानने के साथ ही, उसे सेनाध्यक्ष भी नियुक्त किया ।

प्रधान सेनापति बनने के बाद मुहम्मद बख़्त ख़ां ने सम्राट से कहा, यदि हमारा कोई भी नागरिक, यहां तक कि राजा ख़ानदान का व्यक्ति भी नगर (दिल्ली) में लूटमार करता पाया गया, तो उसे भी माफ़ नहीं किया जाएगा । सम्राट ने यह बात मान ली और पूरे अधिकार उसे दे दिए ।

तीन जुलाई 1857 को अंग्रेज़ सेनापति बर्नार्ड के नेतृत्व में गोरी फ़ौज और मुहम्मद बख़्त ख़ां के नेतृत्व वाली क्रांतिकारी सेना के मध्य घमासान युद्ध हुआ और अंग्रेज़ सेना को पराजय देखनी पड़ी, अत: बर्नार्ड को भारी धक्का लगा और हैज़ा होने से 5 जुलाई को उसकी मृत्यु हो गई । इस घटना के बाद जनरल रीड ने अंग्रेज़ी सेना की कमान संभाली ।

चौदह जुलाई तक लगातार घमासान युद्ध चलता रहा । उसी दिन क्रांतिकारियों में से किसी की गोली से एक अंग्रेज़ योद्धा चेम्बरलेन की मौत हुई ।

अंग्रेज़ दिल्ली का घेरा ख़त्म करने की तैयारी में थे कि इस बीच अंग्रेज़ अधिकारी वेयर्ड स्मिथ, जनरल विल्सन और सर लारेंस के साथ निकल्सन के नेतृत्व में दो हज़ार अंग्रेज़ी सैनिकों के आने से स्थिति बदल गई । अंग्रेज़ों में उत्साह जागा और दिल्ली का घेरा यथावत् बना रहा ।

सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र ने क़रीब दो दर्जन राजाओं, नवाबों को पत्र भेजे और भारत की आज़ादी के युद्ध में भाग लेने का आह्वान किया, किन्तु सब व्यर्थ गया । इसी बीच क्रांतिकारी सेनाएं आपस में ही मतभेदों में उलझने लगीं । सैनिक अधिक वेतन की मांग करने लगे । सम्राट ज़फ़र ने सेनापति मुहम्मद बख़्त ख़ां से मंत्रणा की तथा जन-सभा में फ़ैसला हुआ कि बिना युद्ध के हम दिल्ली को अंग्रेज़ों के हवाले नहीं करेंगे ।

वेयर्ड स्मिथ, जनरल रीड, निकल्सन तथा दिल्ली में चार मोर्चे बनाए और अलग-अलग मोर्चों का नेतृत्व करने लगे । 14 सितम्बर के घमासान युद्ध में जनरल रीड मारा गया तथा निकल्सन मरणासन्न था । यानी चार मोर्चे खोलने, युद्ध लड़ने के पहले दिन अंग्रेज़ सेना के तीन सेनापति आहत व 66 अधिकारी, 11 सौ सैनिक मारे गए । 24 सितम्बर 1857 तक दिल्ली का तीन चौथाई भाग अंग्रेज़ों के क़ब्ज़े में चला गया ।

सेनापति मुहम्मद बख़्त ख़ां ने सम्राट ज़फ़र को दिल्ली से बाहर सुरक्षित भेजने और युद्ध लड़ने की सलाह दी, लेकिन विलासी और जर्जर सम्राट तैयार न हुआ । अन्तत: ज़फ़र को आत्म समर्पण करना पड़ा और उनके तीन पुत्रों की हत्या कर दी गई । अंग्रेज़ सेना के क़रीब चार हज़ार लोग मारे गए । क़रीब इतने ही क्रांतिकारी सेना के लोग भी मारे गए । आज़ादी के लिए लड़ने वाली सेना ने लगातार 134 दिन तक अंग्रेज़ सेना का मुक़ाबला किया । बेचारे मुहम्मद बख़्त ख़ां की वीरता भी दिल्ली को न बचा सकी, लेकिन अंग्रेज़ों ने उसके रण-कौशल को मुक्त कंठों से सराहा था ।

वली दाद ख़ां

● संपादन प्रभाग

इतिहास में केवल उन्हीं को याद किया जाता है, जिन्होंने अपने देश की आज़ादी के लिए हंसते-हंसते अपने प्राणों का बलिदान कर दिया है । त्यागी व्यक्ति को अपने त्याग का फल एक न एक दिन अवश्य प्राप्त होता है । हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है कि अपने शत्रुओं को पहचानने में असफल रहे, यदि पहचान भी लिया, तो संगठित होकर उन्हें देश से बाहर निकालने का प्रयास नहीं किया । 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय पहली बार हिन्दुओं ने मुसलमानों के सहयोग से ब्रितानियों को भारत से बाहर निकालने का प्रयास किया था ।

1857 के अमर क्रांतिकारियों में वलीदाद ख़ां का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । वे बुलन्दशहर के रहने वाले थे और मालागढ़ से क्रांति का संचालन करते थे । कुछ इतिहासकारों के अनुसार उनका संबंध दिल्ली के राजघराने से था । जो व्यक्ति अपने देश को प्यार करता है, वह अपनी सुख-सुविधा की परवाह नहीं करता ।

वलीदाद ख़ां कुछ कारणों से पहले से ही कम्पनी सरकार से नाराज़ थे । वे अवसर की तलाश में थे । जब 1857 ई॰ में क्रांति प्रारंभ हुई, तो उन्होंने सरकार के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया । अपने थोड़े-से साधनों के आधार पर ही ब्रितानियों के विरुद्ध लड़ाई प्रारंभ कर दी । कुछ लोगों ने उनके देश प्रेम के कार्य की सराहना नहीं की, तथापि वीर पुरुष बिना प्रशंसा की परवाह किए हुए अपने उचित कार्य करते रहते हैं । मालागढ़ वलीदाद ख़ां की क्रांति का प्रमुख केन्द्र था । कुछ आसपास के लोगों का उन्हें समर्थन प्राप्त था । आदमी यदि हिम्मत से काम ले, तो अपने दुश्मन को भी शिकस्त दे ही सकता है । वलीदाद ख़ां ने ब्रितानियों के विरुद्ध जमकर युद्ध लड़ा और गुलावटी की सैनिक चौकी पर अधिकार कर लिया । वलीदाद ख़ां ने आगरा और मेरठ के बीच ब्रितानियों की संचार-व्यवस्था तहस-नहस कर दी । 10 सितम्बर 1857 को गुलावटी के समीप वलीदाद ख़ां ने कम्पनी की सेना के साथ जमकर युद्ध लड़ा, जिसमें ब्रितानियों को वलीदाद ख़ां को पराजित करने में सफलता नहीं मिली ।

इसी बीच मेरठ के कमिश्नर ने सरकार को पत्र लिखा



कि अगर वलीदाद ख़ां की गतिविधियों पर नियंत्रण स्थापित नहीं किया गया, तो उसके दूरगामी परिणाम हो सकते हैं । वलीदाद ख़ां बड़ी तीव्र गति से अपनी शक्ति में वृद्धि कर रहे थे । क्रांतिकारी की नीति के बारे में अच्छी तरह जानते थे । अत: वलीदाद ख़ां ने अपनी सेना को नये सिरे से संगठित किया । उनकी वीरता से मुग़ल सम्राट बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें अलीगढ़ के सूबेदार के पद पर नियुक्त कर दिया ।

वलीदाद ख़ां कम्पनी की सेना से युद्ध करने के लिए तैयार थे । 24 सितम्बर 1857 ई॰ को उनका कम्पनी के सैनिकों से घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें अनेक लोग हताहत हो गए । क्रांतिकारी ब्रितानियों की शस्त्रों से सुसज्जित सेना के समक्ष अधिक समय तक नहीं टिक सके । उन पर ब्रिटिश सैनिक निरन्तर गोलाबारी करते रहे । क्रांतिकारियों को बहुत नुक़सान उठाना पड़ा । क्रांतिकारियों ने भी अनेक अधिकारियों को मौत के घाट उतार दिया, परन्तु अन्त में उनकी पराजय हुई 29 । सितम्बर को ब्रितानियों ने मालागढ़ के दुर्ग पर घेरा डाल दिया, जिसके कारण वलीदाद ख़ां को विवश होकर अपने साथियों के साथ भागना पड़ा । ब्रितानियों का क़िले पर अधिकार हो गया, परन्तु सुरंग फट जाने के कारण लेफ़्टीनेंट होम की मृत्यु हो गई । यह पता नहीं कि वलीदाद ख़ां की मृत्यु कब और कहां पर हुई । इतना सही है कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार के समक्ष अपने घुटने नहीं टेके । अन्य प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेताओं के साथ भी उनका सम्पर्क था । ख़ान बहादुर ख़ां नाना साहब से भी उनकी भेंट हुई थी । वलीदाद ख़ां के त्याग एवं बलिदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता ।

अनाथ लड़कों की पुकार

VOICE OF ORPHAN BOYS

यतीमखाना इस्लामिया गया।

एक दृष्टि में

दीनी और असरी शिक्षा की अपनी तरह की मशहूर रिहाइशी (Residential) पाठशाला

● 98 वर्षों की सेवाएँ ● बहुत से विभाग शिक्षा के पड़ाव ● नर्सरी से मैट्रिक (Matric) ● हिफ्ज का विभाग हिफ्ज के साथ–साथ मैट्रिक ● हर वर्ष बिहार स्कूल बोर्ड परीक्षा का 100 प्रतिशत रिज़लट पत्राचार शिक्षा (DISTANCE EDUCATION) 2015–16 के सत्र के लिए I.A., B.A., M.A. और लाइब्रेरी साईंस (BLIS) में प्रवेश जारी ● (स्टडी सेंटर : मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ से मंजूर शूदा) ● कम्प्यूटर (Computer) की भी शिक्षा ● कफाला स्कीम (KAFALA SCHEME) के तहत एक अनाथ छात्र पर वार्षिक खर्च 16,000/– रूपये प्रतिवर्ष वार्षिक खर्च 24 लाख रूपये से अधिक ● आमदनी के स्रोत : मुस्लिम अवाम के चन्दे ● 75 अनाथ बच्चे जिन का पूरा खर्च इदारा ही उठाता है। ● जिस रूप में संभव हो मदद कर के अल्लाह से बड़ा इनाम प्राप्त करें– सहयोग के रूप उदाहरण स्वरूप ● जकात ● सदकात ● अतियात ● पैदावार की जकात ● कुरबानी की खाल ● एक अनाथ बच्चे का वार्षिक खर्च ● बैंक (BANK) के सूद (INTEREST) की वह रकम जो मुसलमानों के लिए हराम है, गरीब, यतीम तलबा की जहालत दूर करने और तालीम फैलाने के लिए लड़को के दारूल यतामा फंड में दें। ● अपने या किसी बुजुर्ग के नाम पर कमरा या हॉल बनवाना आदि। याद रखें। ● यहाँ हर वर्ष ऑडिट (AUDIT) भी कराया जाता है। ● आप खुद यतीमखाना पहुँच कर बराबरी का व्यावहारिक नमूना अपनी आँखों से देखें कि किस प्रकार अनाथ और माँ–बाप वाले बच्चे मिल–जुलकर रहा करते हैं। नोट (1) इनायत टेक्निकल ट्रेनिंग इंस्टीच्युट (ENEYETH TECHNICAL TRAINING INSTITUTE) की इमारत के निर्माण का कार्य मुकम्मल है और शैक्षणिक कार्य शीघ्र ही आरंभ होने वाला है। (2) खुला स्थान शांतिमय वातावरण इस्लामी लिबास, इस्लामी यूनिफार्म और इस्लामी शिक्षा के साथ–साथ कम खर्च में बिहार बोर्ड के पाठ्यक्रम के साथ स्तरीय शिक्षा। (3) यतीम तलबा जिन के पिता का देहान्त हो चुका है उन के भोजन एवं आवास के साथ–साथ एक बेटे की तरह यहां सारी सहूलत बिल्कुल निःशुल्क दी जाती है। (4) बाहरी छात्रों के लिए अपने खर्च पर होस्टल की भी व्यवस्था है। (5) क़ौम के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से अनुरोध है कि कौम के यतीम बच्चों को इदारा में दाखिल कराने की जहमत गवारह करें और तवज्जा दिलाएँ।

यह इदारा आप से उदार सहायता की अपील करता है।

नोटः– यह इदारा विदेशी मुद्रा के कानून FCRA के तहत भी रजिस्टर्ड है।

Foreign Donors विदेशी चन्दा देने वाले

- अब आप विदेश से BANK A/c No. 300402010000187
- BANK : SWIFT CODE : UBININBBJAM or IFS Code No. : UBIN 0530042
- BANK : Union Bank of India (Main Branch, Gaya) में अपनी रकम भेज सकते हैं।
- चेक या बैंक ड्राफ्ट पर केवल यह लिखें– "THE GAYA MUSLIM ORPHANAGE"

चेक, ड्राफ्ट, मनीऑर्डर या खत भेजने का पता
Hon. SECRETARY, THE GAYA MUSLIM ORPHANAGE
At+P.o : CHERKI-824237, Distt : GAYA (BIHAR) INDIA

INDIAN DONORS भारतीय चन्दा देने वाले

- BANK : UNION BANK OF INDIA (MAIN BRANCH, GAYA)
  Bank IFS Code No. : UBIN 0530042
- CORE BANKING A/C NO. : 300402010010581, : 9955655960, 09801213022
- E-mail : gmocde@yahoo.co.in, Website : www.gmogaya.com
- OLD BOYS ASSOCIATION : www.gmogaya.org
- Bank IFS CODE No. - UBIN0530042 BANK: UNION BANK OF INDIA (MAIN BRANCH, GAYA)

Note: Documentary Film-NAZR-E-ENAYAT जिसमें इदारे का इतिहास है। इंटरनेट यू ट्यूब पर देखें।

नोटः– कोर बैंकिंग वाले हजरात E-mail या डाक से अपना मुकम्मल पता भेज दिया करें ताकि उसी पते पर रकम की रसीद रवाना की जा सके।

अध्यक्ष : डॉ० फ़रासत हुसैन एज़ाज़ी नाज़िम : डॉ० मुहम्मद एहतिशाम रसूल

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के तीन मुस्लिम आंदोलनकारी

हसरत मोहानी, इक़बाल और आज़ाद

● ज़हीर ललितपुरी

हमारे देश की आज़ादी की लड़ाई में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख आदि सभी क़ौमों के लोगों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था और न सिर्फ़ हिस्सा लिया था बल्कि क़ुरबानियां भी दीं। इन आज़ादी के सिपाहियों ने जंग में ख़ास रौल ही अदा नहीं किया बल्कि बहुत भारी क़ीमत अदा की। इस जंग ने हिन्दुस्तानी अवाम को नीचे से ऊपर तक, आम आदमी से लेकर असरदार तबक़ों को एक प्लेटफ़ार्म पर इकट्ठा कर जोड़ने का काम किया और इस एकता ने भारत की ब्रिटिश सरकार के सामने बहुत बड़ी चुनौती खड़ी कर दी थी। बादशाहों और राजाओं, आम किसान और मज़दूरों, धर्मगुरुओं, साधू-संतो, धार्मिक विद्वानों और मौलानाओं को, जंगे आज़ादी में हिस्सा लेने की वजह से, सख़्त सज़ाएं भुगतनी पड़ी। सैंकड़ों जागीरदारों की जागीरें छीन ली गईं और उलेमाओं यानी इस्लामी धर्म गुरुओं को माल्टा के ठंडे इलाक़ों की जेलों में और अन्दमान निकोबार द्वीप समूह के निर्जन स्थानों में सज़ा भुगतने के लिए मजबूर होना पड़ा। मौलाना हसरत मोहानी, डॉ॰ अल्लामा इक़बाल और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद भी इन्हीं आज़ादी के सिपाहियों में से थे, जिन्होंने अंग्रेज़ों से कभी समझौता नहीं किया और दूसरे आज़ादी के सिपाहियों की तरह ख़ुशी-ख़ुशी तकलीफ़ें और सज़ाएं भुगतीं।

(1)

"इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद" का नारा देने वाले आज़ादी के सिपाही : मौलाना हसरत मोहानी

"इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद" का नारा देने वाले आज़ादी के सिपाही, मौलाना हसरत मोहानी का वास्तविक नाम सैयद फ़ज़्लुलहसन और उपनाम हसरत था। चूंकि वे उत्तर प्रदेश के ज़िला उन्नाव के मोहान गांव में पैदा हुए थे, इसलिए मौलाना हसरत मोहानी के नाम से मशहूर हुए। वे भारत की आज़ादी की लड़ाई के सच्चे सिपाही होने के साथ-साथ शायर, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, और ब्रिटिश भारत के सांसद थे। उनका जन्म 1 जनवरी 1875 को हुआ और 1 मई 1951 को उनकी मृत्यु हुई।

होशियार और मेहनती विद्यार्थी और मशहूर शायर

हसरत मोहानी बहुत ही होशियार और मेहनती विद्यार्थी थे। उन्होंने राज्य स्तरीय परीक्षा में टॉप किया था। बाद में उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पढ़ाई की जहां उनके कॉलेज के साथी मौलाना मुहम्मद अली जौहर और मौलाना शौकत अली आदि थे। उन्होंने अपने उस्ताद तसलीम लखनवी और नसीम देहलवी से शायरी की शिक्षा प्राप्त की। उनकी कुछ ख़ास किताबें कुल्लियात हसरत मोहानी (उनकी शायरी का संग्रह), शरहे कलामे ग़ालिब (ग़ालिब की शायरी की व्याख्या), नुकाते सुख़न (उर्दू शायरी पर एक ख़ास किताब), मुशाहदाते ज़िन्दां (जेल के संस्करण) आदि बहुत मशहूर हुईं। गुलाम अली द्वारा गायी गई उनकी ग़ज़ल "चुपके-चुपके रात दिन आंसू बहाना याद है" बहुत मशहूर हुई, जिसे बाद में फ़िल्म निकाह में फ़िल्माया गया।

आज़ादी के बहुत बड़े दीवाने

हसरत मोहनी आज़ादी के बहुत बड़े दीवाने थे और ख़ासकर भारत की आज़ादी से उन्हें बहुत प्यार था। वे बालगंगाधर राव को बड़े सम्मान से तिलक महाराज कहते थे और उनके बहुत बड़े प्रशंसक थे, क्योंकि उन्होंने कहा था कि आज़ादी मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। उनकी पत्नी निशातुन्निसा बेगम, जो हमेशा परदे में रहती थीं, ने भी अपने पति के साथ आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लिया था। मौलाना हसरत मोहानी आज़ादी की लड़ाई में इस तरह घुल मिल गये थे कि उनके लिए इस राह में मिलने वाले दुख-दर्द, राहत-ख़ुशी एक जैसे थे। वे हर तरह के हालात में अपने आप को ख़ुश रखना जानते थे। उन्होंने बहुत थोड़ी-सी आमदनी से, कभी-कभी बिना आमदनी के, गुज़ारा किया। वे अंग्रेज़ों द्वारा कई बार जेल में डाले गये, लेकिन उफ़ तक न किया और अपना रास्ता नहीं बदला। उनकी सबसे बड़ी ख़ासियत यह थी कि वे अंजाम की

फ़िक्र किये बिना जो सच समझते थे कह देते थे । सच की क़ीमत पर वह कोई समझौता नहीं करते थे ।

कांग्रेस से संबंध

मौलाना हसरत मोहानी कॉलेज के ज़माने में ही आज़ादी की लड़ाई में शामिल हो गये थे । किसी तरह का समझौता न करने की आदत और नज़रिये की वजह से उन्हें कॉलेज के दिनों में काफ़ी परेशानियों का सामना करना पड़ा । कॉलेज से निकलने के बाद उन्होंने एक उर्दू मैगज़ीन 'उर्दू-ए-मुअल्ला' निकालना शुरू की जिसमें वे जंगे आज़ादी की हिमायत में सियासी लेख लिखा करते थे । सन् 1904 में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो गये और सूरत सत्र 1907 में प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित रहे । वे कांग्रेस के अधिवेशनों और सत्रों की रिपोर्ट और समाचार अपनी मैगज़ीन उर्दू-ए-मुअल्ला में प्रकाशित करते रहते थे । उन्होंने कलकत्ता, बनारस, मुंबई आदि में आयोजित होने वाले कई कांग्रेसी सत्रों की रिपोर्ट अपनी मैगज़ीन उर्दू-ए-मुअल्ला में प्रकाशित की थीं । सूरत के कांग्रेस सेशन 1907 में जब शान्तिपसन्द लोगों के नरम दल और भारत की पूरी आज़ादी की हिमायत करने वाले गरम दल का विवाद उठ खड़ा हुआ तो, उन्होंने तिलक के साथ कांग्रेस छोड़ दी और वे मुस्लिम लीग की तरह कांग्रेस से भी नफ़रत करने लगे ।

पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव

एक दिलचस्प बात यह है कि मौलाना हसरत मोहानी ने अहमदाबाद में 1921 के सत्र में भारत के पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव रखा, जबकि महात्मा गांधी उस वक़्त इसके लिए तैयार नही थे और अंग्रेज़ों के अधीन होम रूल (स्वायत्ता) के समर्थक थे । इस वजह से मौलाना अपना प्रस्ताव पास कराने में कामयाब नहीं हुए । इसी प्रकार मुस्लिम लीग के अहमदाबाद सेशन में उन्होंने अपने भाषण के दौरान पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पेश किया था हालांकि इसे मंज़ूर कराने में वे कामयाब नहीं हुए । बीसवीं सदी के शुरू में हसरत मोहानी ने अलीगढ़ में सविनय अवज्ञा आंदोलन की हिमायत में स्वदेशी स्टोर शुरू किया । उन्होंने यह स्टोर उस वक़्त शुरू किया जब ब्रिटिश सरकार ने उनकी मैगज़ीन पर पाबंदी लगा दी । मौलाना स्वदेशी आंदोलन के इतने बड़े हिमायती थे कि उन्होंने दिसम्बर की ठंडी रात में भी, अपने साथी मौलाना सुलेमान नदवी के ऑफ़िस में निवास के दौरान, विदेशी कम्बल इस्तेमाल करने से मना कर दिया । मौलाना सुलेमान नदवी ने ख़ुद इस घटना का वर्णन किया ।

"इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद" का नारा

आज भी हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और बंगलादेश में कोई आंदोलन चलता है या मूवमेंट चलता है तो "इन्क़िलाब

क्या आप के पास उर्दू, अरबी, फ़ारसी भाषा में लिखे पुराने दस्तावेज़ हैं ?
क्या आप उन दस्तावेज़ का हिन्दी भाषा में अनुवाद कराना चाहते हैं ?
क्या आप 1865 से 1947 तक का पुराना अभिलेख का मुआयना कराना चाहते हैं ?
यदि हाँ तो सम्पर्क करें :-



अतीक़ अहमद
उर्दू अनुवादक
सम्पर्क सूत्र : 08958399877, 08923712372
निवास एवं कार्यालय : मानसरोवर कॉलोनी फेस-2,
दीप इण्टर कॉलेज के पास, देवरैठ नं. 1, शाहगंज, आगरा 282 010
Email : ahmad.ateeq@ymail.com
नोट : आने से पहले फोन पर समय लें – धन्यवाद

ज़िन्दाबाद'' का नारा उसका ख़ास हिस्सा होता है । हमारे देश की कोई भी सियासी पार्टी या कोई संगठन अपनी मांगों के लिए मुज़ाहरे और प्रदर्शन करती है तो इस नारे का इस्तेमाल आंदोलन में जान फूंक देता है । भारत की आज़ादी की लड़ाई में तो यह नारा उस लड़ाई की जान हुआ करता था और जब भी, जहां भी यह नारा बुलन्द किया जाता था, आज़ादी के दीवानों में जोश का तूफ़ान भर देता था । इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद का यह नारा आज़ादी के अज़ीमुश्शान सिपाही मौलाना हसरत मोहानी का दिया हुआ है । भारत की आज़ादी में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने वाले हिन्दुस्तानी रहनुमाओं और मुजाहिदों की फेहरिस्त में मौलाना हसरत मोहानी का नाम सरे फेहरिस्त (सूची) शामिल है । उन्होंने इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद का नारा देने के अलावा टोटल फ़्रीडम अर्थात पूर्ण स्वराज्य अर्थात भारत के लिए पूरी तरह आज़ादी की मांग की हिमायत की थी ।

ईमानदार और सच्चे मुसलमान

हक़ीक़त में, देशभक्त होने के साथ-साथ, मौलाना हसरत मोहानी बहुत सारी ख़ूबियों के मालिक थे । वे साहित्यकार, शायर, पत्रकार, इस्लामी विद्वान, समाजसेवक और उसूलपरस्त राजनीतिज्ञ थे । वे बहुत क़ाबिल, ईमानदार और सच्चे मुसलमान थे, लेकिन उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी विचारधारा को भी आगे बढ़ाया । वे भारत में कम्युनिस्ट पार्टी के फ़ाउन्डर मेम्बरों में से एक थे । हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बंटवारे के बाद उन्होंने पाकिस्तान के बजाय हिन्दुस्तान में रहना पसन्द किया, किन्तु पाकिस्तान में भी लोग उन्हें उसी सम्मान से देखते हैं जिस तरह हिन्दुस्तान में उन्हें सम्मान दिया जाता है । उनके इन्तिक़ाल के बाद 1951 में मौलाना नुसरत मोहानी ने कराची पाकिस्तान में हसरत मोहानी मेमोरियल सोसायटी, हसरत मोहानी मेमोरियल लाइब्रेरी और ट्रस्ट बनाये गये । उनके वर्सी पर हर साल इस ट्रस्ट और हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के अन्य संगठनों द्वारा उनकी याद में सभायें और विचार गोष्ठियां आयोजित की जाती हैं । कराची पाकिस्तान में हसरत मोहानी कॉलोनी, कोरांगी कॉलोनी हैं और कराची के व्यावसायिक इलाक़े में बहुत बड़े रोड का नाम उनके नाम पर रखा गया है ।

(2)

''सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा'' के रचयिता सर मुहम्मद इक़बाल

दुनिया में शायद ही कोई उर्दू भाषी और हिन्दी भाषी इन्सान होगा जिसने सर मुहम्मद इक़बाल का लिखा हुआ हिन्दुस्तानी क़ौमी तराना ''सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा'' न सुना हो । हालांकि सर इक़बाल दुनिया की अनेक भाषाओं के जानकार थे और उनके कारनामों की लिस्ट बहुत लम्बी है किन्तु सिर्फ़ उनका लिखा हिन्दुस्तानी क़ौमी तराना ''सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा'' उनको याद करने लिए काफ़ी है । शायद ही कोई हिन्दुस्तानी ऐसा होगा जिसने कभी इस नग़मे को गुनगुनाया न हो । हिन्दुस्तान के उन इलाक़ों में जहां उर्दू और हिन्दी जानने वाले लोग रहते हैं शायद ही कोई ऐसा स्कूल, मदरसा या विद्यालय होगा जहां यह तराना न गूंजा होगा ।

विश्व में सम्मान

हिन्दुस्तानी क़ौमी तराने ''सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा'' के रचयिता महान दार्शनिक, वकील, शायर, लेखक और राजनीतिज्ञ सर मुहम्मद इक़बाल भारतीय नागरिक थे । हिन्दुस्तानियों के लिए यह गौरव का विषय है कि जब उनका जन्म सियालकोट में हुआ था सियालकोट भारत में था इसलिए तब वे भारतीय थे और हिन्दुस्तान की आज़ादी के सिपाही थे। जन्म के लिहाज़ से इक़बाल भारतीय मूल के इन्सान हैं, क्योंकि उनका जन्म ब्रिटिश भारत के पंजाब प्रान्त, सियालकोट में 9 नवम्बर 1877 को जो अब पाकिस्तान में है, हुआ था । उनके दादा काश्मीरी पंडित थे । वे काश्मीर के सप्रू मूल के ब्राह्मण थे तथा जब काश्मीर में सिक्खों का शासन था, उनका परिवार पंजाब के लिए पलायन कर गया था ।

सर इक़बाल ने अपने काश्मीरी पंडित होने का ज़िक्र अपने लेखन में अक्सर किया है । यही कारण है कि जितना पाकिस्तानी नागरिक सर इक़बाल का सम्मान करते हैं, उससे अधिक हिन्दुस्तानी उनका सम्मान करते हैं । वास्तव में सर इक़बाल जैसे लोगों को किसी ख़ास राष्ट्र की सीमाओं में क़ैद नहीं किया जा सकता । वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सर्वमान्य व्यक्तित्व के मालिक थे । दक्षिण एशिया और उर्दू जगत में सर इक़बाल को शायर-ए-मशिरक़ अर्थात पूरब का शायर माना जाता है । उन्हें मुफ़क्किर-ए-पाकिस्तान अर्थात पाकिस्तानी चिन्तक तथा हकीमुल उम्मत अर्थात उम्मत के सुधारक के रूप में याद किया जाता है । पाकिस्तान में उनका जन्म 9 नवम्बर इक़बाल डे के रूप में हर वर्ष बड़े

धूमधाम से मनाया जाता है तथा इस दिन वहां सार्वजनिक अवकाश होता है । ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में वे इक़बाल-ए-लाहौरी के नाम से मशहूर हैं और उनकी शायरी वहां की अवाम के द्वारा बहुत पसन्द की जाती है ।

दुनिया के महान लोगों की नज़रों में

केवल मुस्लिम देशों और मुस्लिम जगत में उनकी मान्यता नहीं, बल्कि दुनिया के विभिन्न देशों में उनको सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है । यूनाइटेड स्टेट सुप्रीम कोर्ट के ऐसोसियेट जस्टिस विलियम ओ॰ डगलस के अनुसार उनके विचार अन्तर्राष्ट्रीय पहचान रखते हैं। साबियत रूस के एन॰ पी॰ एनिकोव ने अपनी आत्म-कथा में उनके विचारों को असमानता, भेदभाव के विरुद्ध तथा आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय, वर्गीय और धार्मिक हर क्षेत्र में उल्लेखनीय माना है । शायरी के अलावा सर मुहम्मद इक़बाल मशहूर महान दार्शनिक, वकील, शायर, लेखक और राजनीतिज्ञ भी थे ।

अंग्रेज़ी, उर्दू, अरबी, फ़ारसी, हिन्दी और दुनिया की अन्य ज़बानों के लिट्रेचर में सर मुहम्मद इक़बाल को बहुत इज़्ज़त की नज़र से देखा जाता है । उन्हें उर्दू साहित्य में, उर्दू फ़ारसी दोनों ज़ुबानों का बहुत ख़ास रचनाकार माना जाता है । हिन्दुस्तानी नागरिकों के अलावा पाकिस्तानी, अफ़ग़ानिस्तानी और ईरानी और दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यकारों की नज़रों में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक और सांस्कृतिक शायर माने जाते हैं । हालांकि इक़बाल एक जाने-माने शायर हैं, मगर इसके साथ-साथ वे मौजूदा दौर में उच्चस्तर के मुस्लिम दार्शनिक, चिन्तक भी हैं । उनकी पहली शायरी की किताब असरारे खुदी फ़ारसी में 1915 में प्रकाशित हुई थी और अन्य किताबें रुमुज़े बेखुदी, पयामे मशरिक़ और ज़बूरे अजम हैं । इसके अलावा उर्दू को उनकी सबसे अच्छी देन बांगे दरा, बाले जिबरील, ज़र्बे कलीम व अर्मुग़ाने हिजाज़ हैं ।

क़ौमी तराना और इक़बाल

हिन्दुस्तान के लिए उनकी सबसे बड़ी देन तराना-ए-हिन्द "सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा।" यह तराना लगभग एक सदी से हिन्दुस्तान में लोकप्रिय है । कहा जाता है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने, जब वे यरवदा जेल में बन्द थे, इस तराने को लगभग 100 बार से ज़्यादा गाया था । यह गीत 1950 में सितारवादक रविशंकर द्वारा सेट किया गया था और लतामंगेशकर द्वारा गाया गया था । इसके शेर नं॰ (1) सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा, हम बुलबुलें हैं इसकी ये गुल्सितां हमारा, शेर नं॰ (3) पर्बत वो सबसे ऊंचा हमसाया आस्मां का, वो सन्तरी हमारा वो पासबां हमारा; शेर नं॰ (4) गोदी में खेलती हैं जिसकी हज़ारों नदियां, गुलशन है जिनके दम से रसकेजिनां हमारा, और शेर नं॰ (6) मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना, हिन्दी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्तां हमारा, राष्ट्रप्रेम की जिस स्तर की भावनाओं से ओतप्रोत है, राष्ट्रगान के शेरों की अहमियत रखते हैं ।

फिर भी दुनिया में बहुत कम व्यक्ति ऐसे होंगे, जो एक साथ कई राष्ट्रों के नागरिकों के बीच समान रूप से लोकप्रिय और मान्यता प्राप्त हैं । जिनकी संस्कृति, आचार-विचार, सिद्धांतों और मानदंडों में बुनियादी अन्तर है । सर मुहम्मद इक़बाल ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी थे । ख़ासकर दो ऐसे देशों जिनके बीच जन्मजात दुश्मनी है उन दोनों मुल्कों में इक़बाल उनके अपने बुजुर्ग और साझा सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत के पोषक माने जाते हैं । इस्लाम धर्म और मुस्लिम समाज से संबंध रखने के बावजूद हिन्दुस्तान ही नहीं दुनिया भर में बसने वाले हिन्दु मूल के नागरिक उन्हें अपना ऐतिहासिक और सांस्कृतिक बुजुर्ग मानते हैं । सर मुहम्मद इक़बाल के व्यक्तित्व की यह विशेषता उन्हें दुनिया के महान व्यक्तियों में पहली पंक्ति का व्यक्ति बनाती है ।

(3)

आज के हिन्दुस्तानी रहनुमाओं के लिए एक अनूठी मिसाल मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

हिन्दुस्तान की आज़ादी की मुहिम और आज़ादी के बाद उसकी तरक़्क़ी के लिए की जाने वाली कोशिशों में जिन रहनुमाओं का ख़ास रोल रहा है, उनमें मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का नाम सोने के अक्षरों में लिखने योग्य है । मौलाना आज़ाद भी उन मुस्लिम रहनुमाओं में से एक थे, जिन्होंने बंटवारे के वक़्त पाकिस्तान जाना पसन्द नहीं किया और हिन्दुस्तान में रहकर सच्चे वतनपरस्त की तरह इसकी तरक़्क़ी के लिए जी तोड़ मेहनत और कोशिशें कीं । आज के हिन्दुस्तानी रहनुमाओं के लिए वे एक अनूठी मिसाल हैं । हक़ीक़त में आज हिन्दुस्तान को मौलाना आज़ाद जैसे अच्छे किरदार के मालिक, ईमानदार, विद्वान सेक्यूलर, अम्नपसन्द, इन्साफ़पसन्द अपने वतन और इन्सानियत की

सच्ची ख़िदमत करने वाले और अवाम को सही रास्ता दिखाने वाले रहनुमाओं की ज़रूरत है।

जन्मभूमि मक्का, मगर कार्यस्थल भारत

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, जिनका पूरा नाम अबुल कलाम मुहियुद्दीन अहमद आज़ाद है का जन्म 11 नवम्बर 1888 को तथा मृत्यु 22 फ़रवरी 1958 को हुई थी। मौलाना आज़ाद उन रहनुमाओं में से एक हैं, जिन्होंने हिन्दुस्तान में जन्म नहीं लिया बल्कि हिन्दुस्तान की भलाई के लिए अपना सब कुछ निछावर कर दिया। उनका जन्म धार्मिक, आध्यात्मिक और ऐतिहासिक शहर मक्का, सऊदी अरब में हुआ था। उनके पुर्वज बुद्धिजीवी, विद्वान और बहादुर सैनिक थे, जो मुग़ल बादशाह बाबर के समय में हेरात अफ़ग़ानिस्तान से हिन्दुस्तान आये थे।

उनके पिता मौलाना मुहम्मद ख़ैरुद्दीन बहुत बड़े विद्वान थे, जिन्होंने इस्लाम धर्म और अन्य विषयों से संबंधित दर्जनों किताबें लिखी और उनके सैंकड़ों शिष्य थे। उनकी माता मदीना के शेख़ मुहम्मद ज़हीर वतरी, जो स्वयं एक मशहूर विद्वान थे, की बेटी थीं। आज़ाद के नाना शेख़ मुहम्मद ज़हीर वतरी उनके पिता का बहुत सम्मान करते थे और इस्लामी दुनिया में उनकी इज़्ज़त के क़ायल थे।

हिन्दुस्तान की लड़ाई के समय तक मौलाना ख़ैरुद्दीन अपने परिवार के साथ बंगाल में रहे, मगर बाद में मक्का में बस गये। वहीं पर अपनी पत्नी ज़ुलैख़ा बेगम से मिले और आज़ाद पैदा हुए मगर 1890 में वे फिर भारत आ गये और कलकत्ता में निवास करने लगे। हिन्दुस्तान आने के बाद से अपने इन्तिक़ाल के समय तक मौलाना आज़ाद ने अपने वतन में रहकर आज़ादी की लड़ाई में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सीनियर नेता थे। आज़ादी के बाद भारत सरकार में उन्हें शिक्षा मंत्री बनाया गया। शिक्षा के क्षेत्र में की गयी उनकी सेवाओं को याद रखने के लिए उनके जन्म दिन 11 नवम्बर को राष्ट्रीय शिक्षा दिवस के रूप में मनाया जाता है।

विद्वता, ईमानदारी और चरित्र के धनी

मौलाना आज़ाद अरबी, अंग्रज़ी, उर्दू, हिन्दी फ़ारसी और बंगाली के साथ-साथ कई ज़बानों में मास्टर थे। इस्लाम धर्म, गणित, दर्शन, दुनिया के इतिहास, साइंस आदि की शिक्षा उन्हें बेहतरीन प्रशिक्षित और योग्य शिक्षकों द्वारा घर पर ही दी गयी। इस्लामी शरीअत की विभिन्न विचार धाराओं, हन्फ़ी, मालिकी, शाफ़ई और हंबली फ़िक़्ह का उन्होंने गहराई से अध्ययन किया। वे बहुत ही होशियार विद्यार्थी थे। मौलाना आज़ाद ने 12 साल की उम्र में ही एक पुस्तकालय, अध्ययन कक्ष और वाद-विवाद समिति का संयोजन और संचालन किया। निस्वार्थ समाजसेवी होने के साथ-साथ वे बहुत अच्छे शायर और लेखक थे। 14 साल की उम्र में उन्होंने "मख़ज़न" नामक मशहूर मैगज़ीन में सहयोग किया तथा क्लासरूम में अपने से दोगुनी उम्र के विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे, जब वे मुश्किल से पन्द्रह साल के थे।

सोलह साल की उम्र तक आते-आते, अपने साथियों से नौ साल पहले, वे पारंपरिक शिक्षा के कोर्स के अध्ययन को पूर्ण कर चुके थे। उन्होंने इस्लामी शिक्ष को सिर्फ़ सीखा ही नहीं, बल्कि अपने जीवन में उतारा। वे एक ख़ुदा से डरने वाले सच्चे मुसलमान और पक्के ईमान वाले थे। इस्लामी शिक्षाओं के प्रभाव से उनके व्यक्तित्व में बहुत सारी ख़ास बातें पैदा हो गयी थीं। वे ईमान और अच्छे किरदार के मालिक और अपने वतन के प्रति वफ़ादार थे। उन्होंने अपने वतन की आज़ादी के लिए बहुत सारी परेशानियां उठाईं। आज़ादी के बाद अपनी योग्यता के दम पर हिन्दुस्तान की तरक़्क़ी के लिए कोशिशें कीं। अपने वतन के लिए की गई उनकी सेवाओं के लिए उन्हें सर्वोत्तम नागरिक और भारत रत्न पुरस्कार से सम्मानित किया गया। कहा जाता है कि बहुत पहले, जब उनको भारत रत्न पुरस्कार के लिए प्रस्तावित किया गया तो, उन्होंने खुद सेलेक्शन कमेटी का सदस्य होने के कारण मना कर दिया था।

निर्भीक पत्रकार और आज़ादी के बहादुर सिपाही

सोलह साल की उम्र में मौलाना आज़ाद ने राजनैतिक जर्नल "नैरंगे आलम" निकाल कर पत्रकारिता के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। इसके पूर्व सिर्फ़ 12 साल की उम्र में सन् 1900 ई॰ में "अलमिस्बाह" साप्ताहिक पत्र में एवं 1903 में "लिसानुस्सिदक्" मैगज़ीन में काम कर चुके थे। उन्होंने अंतिम आसमानी किताब क़ुरआन, पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वस्सलम की शिक्षाओं और इस्लामी शरीअत अर्थात विधिविधान के संबंध में बहुत नायाब काम किया। उनकी क़ुरआन की टीका बहुत मशहूर और इस्लामी शिक्षा प्राप्त करने का बहुत अच्छा ज़रिआ है। मुसलमानों में क्रान्ति के प्रति जागृति पैदा करने के लिए

1912 में मौलाना आज़ाद ने उर्दू में एक साप्ताहिक पत्र "अल-हिलाल" के नाम से निकालना शुरू किया। मोर्लेमिन्टो सुधारों के नतीजे में भारत के दो बड़े सम्प्रदायों में जब ख़ूनी संघर्ष शुरू हुआ तो अल-हिलाल ने दोनों सम्प्रदायों के बीच सौहाद्र क़ायम करने में अहम रोल अदा किया। जब अल-हिलाल क्रान्तिकारियों और चरमपन्थियों के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हुए आज़ादी के आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगा, तो तत्कालीन सरकार ने उसे आपत्तिजनक विचारों का अख़बार मानकर प्रतिबन्धित कर दिया। अल-हिलाल पर पाबन्दी लगने के बाद उन्होंने उन्हीं उद्देश्यों को पूरा करने के लिए "अल-बलाग़" नाम का दूसरा अख़बार शुरू कर दिया, जिसमें हिन्दु-मुस्लिम एकता पर आधारित राष्ट्रवादी व चरमपन्थी विचार और लेख प्रकाशित किये जाते थे। सन् 1916 में सरकार ने इस पर भी पाबन्दी लगा दी और मौलाना आज़ाद को कलकत्ता से रांची भेज दिया जहां से वे प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 1920 में रिलीज़ हुए। रिलीज़ होने के बाद मौलाना आज़ाद ने ख़िलाफ़त आन्दोलन की तरफ़ जागृत किया जिसका मक़सद तुर्की में फिर से ख़िलाफ़त क़ायम करना था।

क़ाबिल, वफ़ादार और कट्टर कांग्रेसी

जब गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन शुरू किया तो मौलाना ने उनका समर्थन किया था और 1923 में दिल्ली में वे कांग्रेस में शामिल हो गये थे। गांधी जी के नमक सत्याग्रह आन्दोलन में हिस्सा लेने पर क़ानून तोड़ने के जुर्म में 1930 में गिरफ़्तार कर लिया गया और मेरठ जेल में डेढ़ साल तक रखा गया। मौलाना आज़ाद 1940 में कांग्रेस के प्रसीडेंट बनाये गये और 1946 तक इस पद पर रहे। वे हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बंटवारे के हमेशा विरोधी रहे और इसके नतीजे में होने वाली हिंसा से उन्हें बहुत दुख पहुंचा। वे चाहते थे कि भारत हिन्दु-मुसलमानों के सहयोग से सहअस्तित्व की भावना के साथ एक अखंड राष्ट्र बने। मौलाना आज़ाद पंडित जवाहर लाल की कैबिनेट में 1947 में आज़ाद भारत के पहले शिक्षा मंत्री बने और 1958 तक इस पद पर रहे।

22 फ़रवरी 1958 को जब उनका इन्तिक़ाल हुआ, हिन्दुस्तान की तरक़्क़ी की कोशिशों को बहुत धक्का लगा। आज तक कोई ऐसा रहनुमा दूसरा नहीं हुआ जो उनकी कमी को पूरा कर सकता था। आज भी उनकी सियासी सूझबूझ और रहनुमाई हमारे देश को राह दिखा सकती है। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने जो प्लान बनाये थे, हिन्दुस्तानी अवाम को उसका फ़ायदा आज भी मिल रहा है। मौजूदा हिन्दुस्तान के ख़राब हालात को सुधारने के लिए आज की गंदी सियासत को साफ़ करने के लिए मौलाना आज़ाद जैसे क़ाबिल, कर्मठ और ईमानदार रहनुमाओं की सख़्त ज़रूरत है।

शहज़ादा मिर्ज़ा क़ैसर और मिर्ज़ा महमूद

मिर्ज़ा क़ैसर शाह आलम का बेटा यानी बहादुर शाह ज़फ़र का दादा था। सन् 1857 की प्रथम स्वतंत्रता की लड़ाई के समय वह काफ़ी बूढ़ा था और हथियार चलाना तो दूर, चलना-फिरना भी आसान न था। फिर भी अंग्रेज़ों के पिट्ठू मिर्ज़ा काले की बेसर-पैर की बातों में आकर बूढ़े मिर्ज़ा क़ैसर को पकड़ लिया गया और उस पर ग़दर (स्वतंत्रता संग्राम) का आरोप लगाकर फांसी दे दी गई थी।

इसी प्रकार गठिया के रोग से ग्रस्त अकबर शाह के पोते मिर्ज़ा महमूद शाह, जिसके हाथ-पांव बिलकुल नाकारा हो गये थे और जो एक स्थान से दूसरी जगह जाने में असमर्थ था। यानी उसका सारा शरीर लुंज-पुंज हो गया था, न जाने बदनसीब कैसे ज़िन्दा था, को भी मुख़बिर की चुग़ली के आधार पर गिरफ़्तार कर फांसी दे दी गई थी।

बीमार मिर्ज़ा महमूद शाह की लाश को तुरंत न दफ़नाकर सार्वजनिक स्थान पर लटका दिया गया और दिल्ली के लोग कई दिनों तक उस लटकती हुई लाश को देखते रहे। यद्यपि बूढ़े मिर्ज़ा क़ैसर ने किसी अंग्रेज़ महिला तथा बच्चे की हत्या नहीं की थी और न ही हथियार लेकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध जंग लड़ी थी, फिर भी देशभक्त होने के जुर्म में बूढ़े और बीमार शहज़ादा मिर्ज़ा क़ैसर को फांसी की सज़ा दी गई।

मुद्रक एवं प्रकाशक मुहम्मद अहमद द्वारा दावत ट्रस्ट (रजि०), D-314, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर, नयी दिल्ली-110 025 से प्रकाशित एवं भारत ऑफ़सेट प्रेस, 2035, क़ासिम जान स्ट्रीट, बल्लीमारान, दिल्ली-110 006 से मुद्रित। फ़ोन : 011-26949430, 09818799223
संपादक : डॉ० मुहम्मद अहमद

संस्था की लिखित अनुमति के बिना सम्पूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित है।

JAJNERY INSTITUTE OF TECHNOLOGY

Opposite Vishal Megamart, Pugmil Road, Hazaribag

Ph. : 06546-267724, 9934596238

E-mail : centum.hazaribag@gmail.com, helplinejajnery@yahoo.co.in

AICTE-UGC-DEC APPROVED UNIVERSITY COURSES

REGULAR AND DISTANCE MODE COURSE

COURSES OFFERED

●Diploma Engineering ●MBA ●B.B.A. ●M.C.A. ●B.C.A.
●M.Ed. ●B.Ed. ●M.Sw ●B.Sw ●M.Sc. ●B.Sc. ●M.Com
●M.Sc. (IT) ●B.A. ●M.A. & Other Courses

JAJNERY INTER COLLEGE

Opp, Vishal Mega Mart Hazaribagh

Courses Offred : I.Sc. I.Com I.A

For more information contact at JAJNERY INSTITUTE OF TECHNOLOGY (Centum-JIT)

मुनअम पब्लिक स्कूल

(इंगलिश मिडियम, सी॰बी॰एस॰ई॰, नई दिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त)

महाराजगंज, पो॰ दादपुर, ज़िला हज़ारीबाग, (झारखण्ड)

नामांकण सूचना : एल के जी से कक्षा नवम् तक






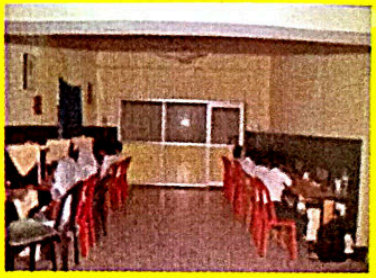
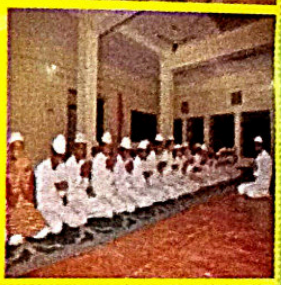

इस्लामी नहज पर आधुनिक शिक्षा का पूर्वी भारत का एकमात्र विद्यालय जिसके छात्रों ने दसवीं एवं बारहवीं के बोर्ड परीक्षा में शानदार कामयाबी हासिल की।

उपलब्ध सहूलियतें

विशाल कैंपस, भव्य इमारतें, छात्र-छात्राओं के लिए अलग-अलग आरामदेह साफ़-सुथरे छात्रावास की व्यवस्था, साइंस एवं कंप्यूटर लैब, ज्ञानवर्धक किताबों से भरपूर पुस्तकालय, स्पोर्ट्स एवं पी॰टी॰ के लिए विशाल खेल मैदान, सभी विषयों के लिए अनुभवी एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की टीम, नमाज़ पंजगाना के लिए ख़ूबसूरत मस्जिद।

नामांकण फ़ार्म मिलने की अंतिम तिथि : 15 मार्च 2015

एस॰एम॰ नईम	साद राशिद ख़ान नदवी	वकील अहमद
एम.ए., बी.एड.ए (अलीग.)	फ़ाज़िल, नदवा, लखनऊ	एम.एस.सी., बी.एड
निदेशक	छात्रावास अधिक्षक	प्राचार्य

विशेष जानकारी के लिए संपर्क करें

मोबाइल : 09431530878/7739748279, वेबसाइट : munammission.org

ई.मेल : hmpt.mission@gmail.com

With Best Compliments From :

DILKUSHA NURSING HOME PVT. LTD

94A, Dilkusha Street, Kolkata-700 017
Phone : (033) 2287 4318, 22803639, 2290 1971
Fax : (033) 2290 1970
E-mail : ddilkusha@gmail.com

- This is a 36 bedded Modern Nursing Home including 6 bedded Elegant INTENSIVE CARE UNIT general surgery LAPAROSCOPIC, GALL BLADDER, APPENDEX AND ORTHOPAEDIC Surgery with latest C-ARM IMAGE INTENSIFIER and also provision for all categories of patients including Maternity and Modern Nursery attached with full fledged DIAGNOSTIC DIVISION equipped with latest U.S.G., X-Ray machines and PATHOLOGY UNIT etc.
- Maxillofacial & Microvascular Reconstruction of the Oro-Facial Region with Radial Forearm Flap. Plastic and Cosmetic Surgery Piles Removal by imported IRC etc. are regularly done. Specialists in all streams including Oncolgy, Urology, Gastroenterology etc.
- Polyclinic, In-house Medicine Shop, 24-hours expert Doctors, RMOs, Matrons, Trained Nursing Staff.
- charges moderate.

Kohinoor
DRESSES

Wholesale Dealer of
Readymade Garments & Hosiery Goods



Address :

Subhash Marg, Jhanda Chowk,
Hazaribagh-825 301
(JHARKHAND)

Bengal Footwear Co.

Kohinoor's

Stockist : Moti, Apollo, Ashoka, Uttam, SSC etc.



ख़ुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तक़दीर से पहले
ख़ुदा बन्दे से ख़ुद पूछे कि बता तेरी रज़ा क्या है ।

Bengal Footwear Co.

39, Rabindra Sarami,
Kolkata-700073

कोलकाता में क़याम के लिए उमदा रिहाइश का मर्कज़



HOTEL AL-FALAH

Ph. : 033-22837901 , Cell : 9836015030
E-mail : hotelal_falah@hotmail.com

A/c Rooms & Non A/c Rooms
With
Attatch Bath Rooms

कोलकाता के शहर के दामन में (पार्क सर्कस) मुनासिब दामों पर रिहाइश का माक़ूल इन्तिज़ाम

एक बार ख़िदमत का मौक़ा ज़रूर दें।

A Well Wisher
Topsia, Kolkata

With Best Compliment From

DR. M. A. PATANKAR

Al-Khaleej Diagnostic Centre









M-2, 2nd Floor, Above SBI Bank
South Extension Part-2, New Delhi-110049
Email : alkhaleejdc@yahoo.com
Tel. No. : 011-26262680-41646577

Posted on 20-21 September 2015
October 2015
E-mail: kantihindimonthly@yahoo.com
Publishing Date: 18.09.2015
Total Pages-116 (With Covers)

कान्ति

RNI 53372/91
DL(S)-01/3147/2015-2017
LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
License No. U (SE)-73/2015-2017

और जो कोई अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) की आज्ञा का पालन करे और अल्लाह से डरे और उसकी सीमाओं का ख्याल रखे, तो ऐसे ही लोग सफल हैं।
(कुरआन, 24:52)

Best compliments from :
PROP. AZIZUR RAHMAN

City Makers



फ्लैट एवं मकान खरीदने के लिए

Tel. : 22851438
22045328

Contact :
City Maker Builder Pvt. Ltd.
6/D, Metro House, Near Regal Cinema,
Kolaba, Mumbai-400001 (Maharashtra)